भगवान महावीरकी

आचार्य परम्परा

: प्रकाशक :

श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्ट,

सोनगढ़-३६४ २५० (सौराष्ट्र)

website :www.kanjiswami.org

Email : contact@kanjiswami.org

भगवानश्रीकुन्दकुन्द-कहानजैनशास्त्रमाला, पुष्प- २३८

ॐ

नमः सद्गुरुवे ।

भगवान महावीरकी
आचार्य परम्परा

卐

: प्रकाशक :

श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्ट,

सोनगढ़-364 250

website : www.kanjiswami.org

Email : contact@kanjiswami.org

प्रथम आवृत्ति

प्रत : १५०० वि. सं. २०६९ ई.स. २०१३

भगवान महावीरकी आचार्य परम्परा (हिन्दी)के

स्थायी प्रकाशन पुरस्कर्ता

श्री दिगम्बर जैन मुमुक्षु महिला समाज

सोनगढ़

इस पुस्तकका लागत मूल्य १३०/- होता है। अनेक मुमुक्षुओंकी आर्थिक सहायसे इस आवृत्तिकी किमत १००/- होती है। उनमेंसे श्री छगनलाल कालीदास बाधर परिवार हस्ते त्रंबकभाई तथा खीमचंदभाईकी ओरसे ५०% आर्थिक सहयोग प्राप्त होनेसे विक्रय-मूल्य ५०/- रखा गया है।

मूल्य : रु. 50=00

मुद्रक :

कहान मुद्रणालय

सोनगढ-३६४२५० (सौराष्ट्र)

विदेहीनाथ श्री सीमंधर भगवान

भरतक्षेत्रके महासमर्थ आचार्य
भगवान कुंदकुंदाचार्यदेव

भगवान कुंदकुंदाचार्यदेव रचित

आचार्यभक्तिः

(आर्या)

देसकुलजाइसुद्धा विसुद्धमणवयणकायसंजुता।
तुम्हं पायपयोरुहमिह मंगलमत्थु मे णिच्चं॥१॥

देश, कुल और जातिसे तथा विशुद्ध, मन, वचन, कायसे संयुक्त हे आचार्य! तुम्हारे चरणकमल मुझे इस लोकमें नित्य ही मंगलरूप हों॥१॥

सगपरसमयविदण्हू आगमहेदुहिं चावि जाणित्ता।
सुसमत्था जिणवयणे विणये सत्ताणुरूवेण॥२॥

वे आचार्य स्वसमय और परसमयके जानकार होते हैं, आगम और हेतुओंके द्वारा पदार्थोंको जानकर जिनवचनोंके कहनेमें अत्यन्त समर्थ होते हैं और शक्ति अथवा प्राणियोंके अनुसार विनय करनेमें समर्थ रहते हैं॥२॥

बालगुरुवुड्ढसेहे गिलाणथेरे य खमणसंजुता।
वट्टावयगा अण्णे दुस्सीले चापि जाणित्ता॥३॥

वे आचार्य, बालक, गुरु, वृद्ध, शैक्ष्य रोगी और स्थविर मुनियोंके विषयमें क्षमासे सहित होते हैं तथा अन्य दुःशील शिष्योंको जानकर सन्मार्गमें वर्ताते हैं--लगाते हैं॥३॥

वदसमिदिगुत्तिजुत्ता मुत्तिपहे ठावया पुणो अण्णे।
अज्झावयगुणणिलया साहुगुणेणावि संजुत्ता॥४॥

वे आचार्य व्रत, समिति और गुप्तिसे सहित होते हैं, अन्य जीवोंको मुक्तिके मार्गमें लगाते हैं, उपाध्यायोंके गुणोंके स्थान होते हैं तथा साधु परमेष्ठीके गुणोंसे संयुक्त रहते हैं॥४॥

उत्तमखमाए पुढवी पसण्णभावेण अच्छजलसरिसा।
कम्मिंधणदहणादो अगणी वाऊ असंगादो॥५॥

वे आचार्य उत्तमक्षमासे पृथिवीके समान हैं, निर्मलभावसे स्वच्छ जलके सदृश हैं, कर्मरूपी ईंधनके जलानेसे अग्नि स्वरूप हैं तथा परिग्रहसे रहित होनेके कारण अग्निरूप हैं॥५॥

गयणमिव णिरुवलेवा अक्खोहा सायरुव्व मुणिवसहा।
एरिसगुणणिलयाणं पायं पणमामि सुद्धमणो॥६॥

वे मुनिश्रेष्ठ---आचार्य, आकाशकी तरह निर्लेप और सागरकी तरह क्षोभरहित होते हैं। ऐसे गुणोंके धर आचार्य परमेष्ठीके चरणोंको मैं शुद्धमनसे नमस्कार करता हूँ॥६॥

संसारकाणणे पुण वंभममाणेहिं भव्वजीवेहिं।
णिव्वाणस्स द्दु मग्गो लद्धो तुम्हं पसाएण।।७।।

हे आचार्य! संसाररूपी अटवीमें भ्रमण करनेवाले भव्य जीवोंने आपके प्रसादसे निर्वाणका मार्ग प्राप्त किया है।।७।।

अविसुद्धलेस्सरहिया विसुद्धलेस्साहि परिणदा सुद्धा।
रुद्दट्टे पुण चत्ता धम्मे सुक्के य संजुत्ता।।८।।

वे आचार्य, अविशुद्ध अर्थात् कृष्ण, नील और कापोत लेश्यासे रहित तथा विशुद्ध अर्थात् पीत, पद्म और शुक्ल लेश्याओंसे युक्त होते हैं। रौद्र तथा आर्तध्यानके त्यागी और धर्म्य तथा शुक्लध्यानसे सहित होते हैं।।८।।

उग्गहईहावायाधारणगुणसम्पदेहिं संजुत्ता।
सुत्तत्थभावणाए भावियमाणेहिं वंदामि।।९।।

वे आचार्य, आगमके अर्थकी भावनासे भाव्यमान अवग्रह, ईहा, अवाय और धारणा नामक गुणरूपी संपदाओंसे संयुक्त होते हैं। उन्हें मैं नमस्कार करता हूँ।।९।।

तुम्हं गुणगणसंथुदि अजाणमाणेण जो मया वुत्तो।
देउ मम वोहिलाहं गुरुभत्तिजुदत्थओ णिच्चं।।१०।।

हे आचार्य! आपके गुणसमूहकी स्तुतिको न जानते हुए मैंने जो बहुत भारी भक्तिसे युक्त स्तवन कहा है वह मेरे लिए निरन्तर बोधिलाभ--रत्नत्रयकी प्राप्ति प्रदान करे।।१०।।

इच्छामि भंते आयरियभत्ति काउसग्गो कओ तस्सालोचेओ सम्मणाणसम्मदंसण-सम्मचरित्तजुत्ताणं पंचविहाचाराणं आयरियाणं आयारादिसुदणाणोवदेसयाणं उवज्झायाणं तिरयणगुणपालणरयाणं सव्वसाहूणं णिच्चकालं अच्चेमि पूजेमि वंदामि णमस्सामि दुक्खक्खओ कम्मक्खओ बोहिलाहो सुगइगमणं समाहिमरणं जिणगुणसंपत्ति होउ मज्झं।

हे भगवन्! मैंने आचार्यभक्ति सम्बन्धी कायोत्सर्ग किया है। उसकी आलोचना करना चाहता हूँ। जो सम्यग्ज्ञान, सम्यग्दर्शन और सम्यक्चारित्रसे युक्त हैं, तथा पांच प्रकारके आचारका पालन करते हैं ऐसे आचार्योंकी, आचारांग, आदि श्रुतज्ञानका उपदेश देनेवाले उपाध्यायोंकी और रत्नत्रयरूपी गुणोंका पालन करनेमें लीन समस्त साधुओंकी मैं निरन्तर अर्चा करता हूँ, पूजा करता हूँ, वन्दना करता हूँ, नमस्कार करता हूँ, उसके फलस्वरूप मेरे दुःखोंका क्षय हो, कर्मोंका क्षय हो, रत्नत्रयकी प्राप्ति हो, सुगतिमें गमन हो, समाधिमरण हो और मेरे लिये जिनेन्द्र भगवान्के गुणोंकी प्राप्ति हो।

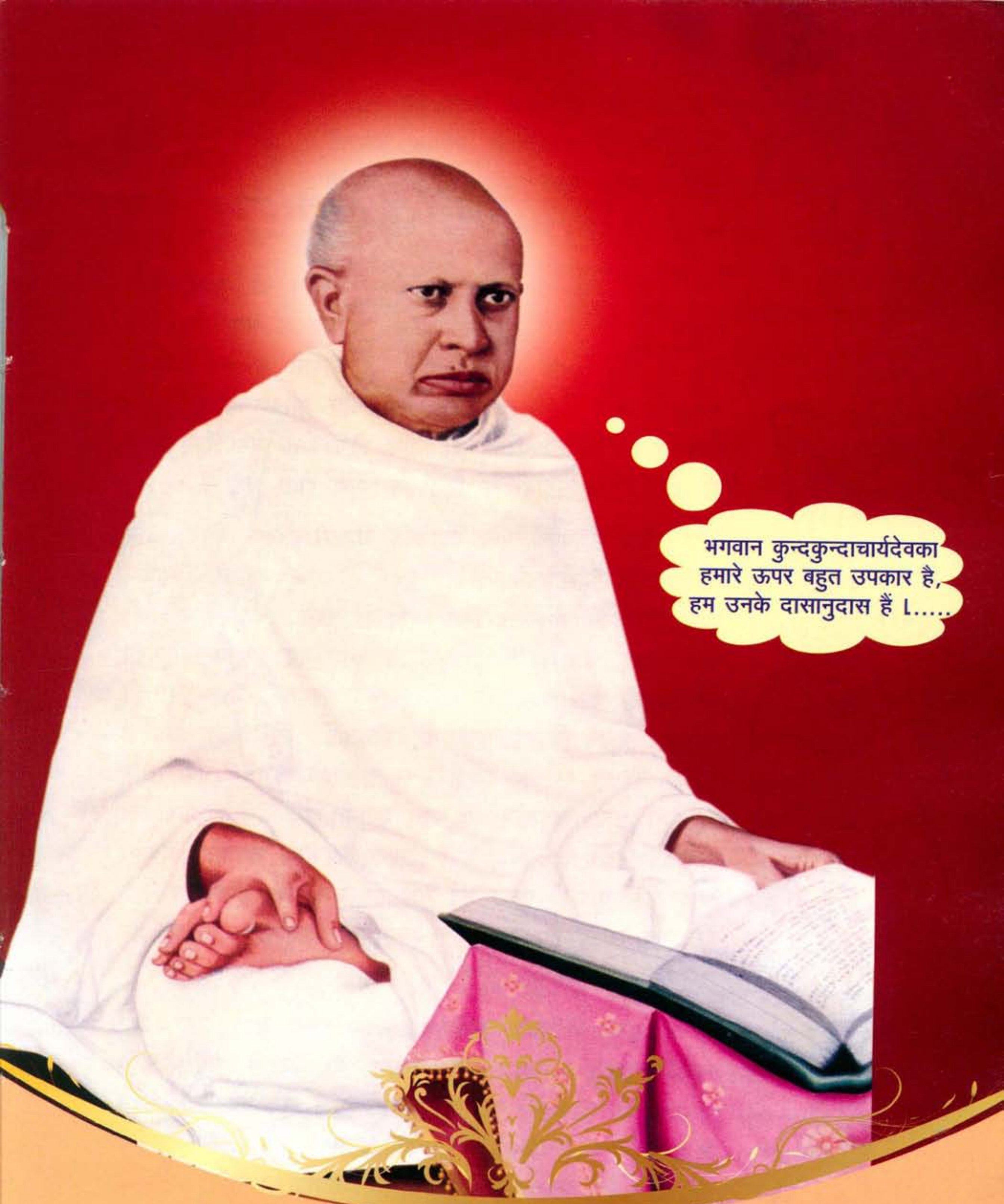

परम पूज्य सद्‌गुरुदेव श्री कानजीस्वामी

प्रकाशकीय निवेदन

जब शासननायक, चरम तीर्थंकर भगवान श्री महावीरस्वामी निर्वाण को प्राप्त हुए तब चतुर्थकालमें ३ वर्ष छ मास १५ दिन शेष रहे थे। उनके पश्चात् केवली, श्रुतकेवली व कई आचार्य भगवंतोंके द्वारा ६८३ वर्ष तक अंग और पूर्वका अंशरूप ज्ञान विद्यमान रहा था। तत्पश्चात् वह ज्ञान क्षीण होता गया, पर उसमें भी प्रायः अध्यात्मज्ञान तो विशेषतया लुप्त होता गया।

उस महत्त्वपूर्ण अध्यात्मज्ञानमय अंशरूप ज्ञानको वीरप्रभु और सीमंधरप्रभुके कृपामृतसे तथा पूर्व संस्कारके बलसे भगवान कुंदकुंदाचार्यदेवने चेतनवंत किया। फिरसे कालदोषवशात् वह ज्ञान क्षीण होता चला। अतः उनके १००० वर्ष बाद आचार्यदेव अमृतचन्द्रजी हुए। उन्होंने आचार्य कुंदकुंद भगवंतकी ज्ञान–गंगा को नवजीवन प्रदान किया। पुनः वह क्षीणताकी ओर जाने लगी व नहींवत सी रह गयी तो आचार्य अमृतचन्द्रदेवके १००० वर्ष पश्चात् पर परम पूज्य सद्गुरुदेव श्री कानजीस्वामी हुए, उन्होंने आचार्यदेव कुंदकुंद भगवंत व आचार्यदेव अमृतचन्द्र भगवंतके समयसार ग्रंथ व अन्यग्रंथोंके भावोंको पाकर पूर्व संस्कारके बल, उन ग्रंथोंके वचनोंके ऐसे अर्थ खोले, कि उन उभय उपकारी आचार्योंका ज्ञानप्रवाह जैन समाजमें पुनः संचारित हुआ।

पूज्य बहिनश्री चंपाबेनने ज्ञानवैराग्यमय हृदय द्वारा उसी मार्गको मुमुक्षु हृदयमें सुदृढ़ बनाया है। जिससे मुमुक्षु हृदय अध्यात्म–गंगाका अपने पुरुषार्थ अनुसार लाभ लेते गये। इस भांति मुमुक्षु हृदय अध्यात्मजलसे आर्द्र होने के साथ–साथ जिन आचार्योंसे यह ज्ञान–गंगा मुमुक्षुओंको मिली, ऐसे आचार्यों व मुनि भगवंतोके प्रति हृदय संवेगित भी बना।

मुमुक्षुओंका आचार्योंके प्रति समर्पण-भावमय हृदय देख, उनके जीवनके संबंधमें यत्किंचित् जानकारी मिले—इस हेतु आत्मधर्म (हिन्दी) में आचार्योंके जीवन–चरित्र संबंधित स्तंभ दिया गया था। मुमुक्षुओंकी ऐसी भावना थी, कि उसमें आये आचार्योंके जीवन चरित्रको यदि योग्य पुस्तकाकार दिया जाय तो मुमुक्षुओंको व युवावर्गको विशेष लाभकर होगा। अतः उन आचार्योंके जीवनचरित्रको लेकर यह **'भगवान महावीरकी आचार्य परम्परा'** नामक पुस्तक प्रकाशित की जा रही है।

इस पुस्तकमें आचार्योंका जीवन–चरित्र संक्षिप्तरूपमें विविध शास्त्रों व जैन इतिहासग्रंथोंके आधारसे तैयार किया गया है।

यह तो स्पष्ट है, कि इस पुस्तकमें बताये आचार्य ही भगवान महावीरस्वामीके शासनमें हुए आचार्य हों, ऐसा नहीं; वरन् जिन आचार्योंके बारेमें हमें यत्किचित् मिला उसे यहाँ दर्शाया गया है।

भगवान महावीरस्वामीके निर्वाण पश्चात् ६८३ वर्ष तककी परम्परा जहाँ भी मिलती है, वहाँ अक्सर मात्र '६२ वर्षमें इतने, पश्चात् १०० वर्षमें इतने'....आचार्य हुए' इस भांति ही मिलती है। उसे लौकिक राजाओंके समयानुसार व्यवस्थित मिलान कर, उनके आचार्यपदवीका काल दर्शाया गया है।

भगवान महावीरस्वामीके निर्वाणके ६८३ तककी परम्परा आगमोंमें मिलती है, वह तो तद्नुसार दर्शाई गई है। तत्पश्चात् मूलसंघ विच्छेद होकर नये--नये नन्दी, सेन आदि संघ, गण उपगणमें बँट जानेसे तथा प्रत्येककी अपनी-अपनी परम्परा होनेसे, आचार्योंकी कोई स्पष्ट एक परम्परा नहीं बन पानेसे, भगवान महावीरस्वामीके निर्वाणके ६८३ वर्ष पश्चात्की स्पष्ट परम्परा यहाँ नहीं दर्शाई है, पर उनका मात्र आचार्य पदवीका काल ही दर्शाया है।

भारतवर्षमें वीर निर्वाण, विक्रम संवत, शक संवत, ईस्वी आदि कई प्रकारके संवत् प्रचलित हैं। यह प्रथा आजसे ही नहीं

वरन् प्राचीनकालसे है। उस समय जैन समाजमें ईसुकी ईस्वीसन् प्रचलित नहीं थी, पर अन्य संवत्का ही प्रचलन था। उसमें भी उत्तर भारत, मध्य भारत, दक्षिण भारत आदि प्रदेशवार अलग-अलग संवत्का प्रचलन था। इस तरह दक्षिण भारतमें 'शक संवत्'का ही प्रचलन था। अतः उधरके आचार्योंके बारेमें शक् संवत् न लिखकर संक्षिप्तमें 'संवत्' ही लिखा जाता था। उस अनुसार इस पुस्तकमें श्री कुंदकुंदादि दक्षिणस्थ आचार्योंके बारेमें शक संवत् ही लौकिक इतिहासानुसार सुव्यवस्थित बैठती है। जैसे ग्रंथोंमें मिलता है, कि 'भगवान कुंदकुंदाचार्यदेव संवत् ४९में विदेह पधारे थे, तो वह संवत् शक संवत् गिननेसे ही इतिहास सुव्यवस्थित बैठता होनेसे, ऐसा इस पुस्तकमें दर्शाया गया है। वर्तमानमें जैन समाजमें भी ईस्वीसन् ही अधिक प्रचलित होनेसे आचार्योंके आचार्यपदवीका समय इस पुस्तकमें 'इस्वीसन्'में ही दर्शाया गया है।

आचार्योंके कौटुम्बिक जीवन वृत्तांत अक्सर किवदंतीयाँ या पश्चात्वर्ती आचार्योंके ग्रंथोंके आधारसे लिखा गया है।

प्रत्येक आचार्योंकी कुल आयुके बारेमें अक्सर कहीं भी नहीं मिलता, पूर्व आचार्यों व उत्तरवर्ती आचार्योंके ग्रंथोंमें आई उनकी कृतियों द्वारा, मात्र उनका आचार्यपदका काल बिठाया जाता है। जैसे कुन्दकुन्दाचार्यदेवका समय ई.स. १२७ से १७९ (अर्थात् ५२ वर्ष) बताया गया है; वह उनका आचार्यकाल है, न कि उम्र; क्योंकि उनकी उम्र करीब ९६ वर्ष की थी। ऐसा सभी आचार्योंके समयके संबंधमें ध्यान रहे।

इस पुस्तकमें अलग–अलग गण–गच्छ–संघके आचार्योंमें से जिनका जीवन हमें यत् किंचित् मिला उनका ही जीवन चरित्र दिया गया है। अतः ऐसा नहीं समझना चाहिये, कि 'दिगम्बर जिनधर्ममें इतने ही आचार्य हैं', परन्तु हमें जिस आचार्योंके जीवनके बारेमें जानकारी मिली उस अनुसार वह दर्शाया है।

यह पुस्तक प्रथमानुयोगकी शैलीका होनेपर भी मूलतः ऐतिहासिक है। अतः हकीकतोंके बारेमें विभिन्न इतिहासकारोंके भिन्न मत हो सकते हैं। अतः अभ्यास करनेके बाद जो हकीकतें तर्कपूर्ण लगी हैं उन हकीकतोंको इस पुस्तकमें स्थान दिया गया है। अतः इस विषयके बारेमें मतभेद होना स्वाभाविक है।

इस पुस्तक प्रकाशन में मदद–कर्ता सभीके हम आभारी हैं।

इस पुस्तकके सुंदर चित्र जयदेवभाई अग्रावत द्वारा तैयार किये गये हैं व मुद्रणकार्य कहान–मुद्रणालयने किया है।

पूज्य बहिनश्री जन्मशताब्दी महोत्सव
सोनगढ़
वी. नि. २५३९
वि.सं. २०६९
दि. २२-८-२०१३

साहित्यप्रकाशनसमिति,
श्री दि० जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट,
सोनगढ (सौराष्ट्र)

प्रशममूर्ति पूज्य बहिनश्री चंपाबेन

अनुक्रमणिका

क्रम	विषय	आचार्य पदवी काल (ई.स.में)	पृष्ठ
*	भगवान महावीरस्वामी	ई.स. पूर्व 597-527	1
*	हमारे जीवन पथदर्शक दिगम्बर जैन आचार्य भगवंतका सामान्य स्वरूप	—	8
1	भगवान महावीर पश्चात् 683 वर्ष तककी परम्परा	ई.स. पूर्व 527 से ई.स. 156	14
2	भगवान श्री गौतमस्वामी	ई.स. पूर्व 527 से पूर्व 515	17
3	अन्तिम केवली भगवंत श्री जम्बूस्वामी	ई.स. पूर्व 503 से पूर्व 465	22
4	भगवान आचार्यदेव श्री भद्रबाहुस्वामी (प्रथम)	ई.स. पूर्व 394 से पूर्व 365	28
5	आचार्य श्री प्रौष्ठिल अपरनाम चन्द्रगुप्त (प्रथम)	ई.स. पूर्व 355 से पूर्व 336	32
6	मुनिवर श्री 'चाणक्य' अपरनाम 'कौटिल्य'	ई.स. पूर्व 355 से पूर्व 336	36
7	आचार्यदेव श्री भद्रबाहु (द्वितीय) तथा चन्द्रगुप्त (द्वितीय)	ई.स. पूर्व 35 से ई.स. 12	40
8	श्री गुणधर आचार्य	प्रथम शताब्दी पूर्वपाद	45
9	आचार्यदेव श्री शिवार्य अपरनाम शिवकोटि	प्रथम शताब्दी पूर्वपाद	47
10	आचार्यदेव श्री अर्हद्बलि अपरनाम गुप्तिगुप्त	ई.स. 38-66	49
11	भगवान श्री धरसेनाचार्यदेव	ई.स. 38-106	51
12	आचार्यदेव श्री माघनन्दि	ई.स. 48-87	55
13	श्री आचार्यदेव पुष्पदंत व आचार्य भूतबलि	ई.स. 66-106	58
14	परमागमश्री षट्खंडागमका उद्‌गमस्थान		63
15	आचार्य शुभनंदि व आचार्य रविनंदि	प्रथम शताब्दी मध्यपाद	67
16	आचार्य बप्पदेव	प्रथम शताब्दी मध्यपाद	68
17	आचार्यदेव श्री आर्यमंक्षु और नागहस्ति	ई.स. 73-123	69
18	आचार्यदेव श्री जिनचन्द्रस्वामी	ई.स. 87-127	73
19	आचार्यदेव श्री कुंदकुंदस्वामी	ई.स. 127-179	74
20	आचार्यदेव श्री वट्टकेरस्वामी	ई.स. 127-179	81
21	आचार्यदेव स्वामी कार्तिकिय अपरनाम कुमारस्वामी	द्वितीय शताब्दी मध्यपाद	83
22	आचार्यदेव श्री समन्तभद्रस्वामी	ई.स. 138-185	85
23	आचार्यदेव श्री यतिवृषभ	ई.स. 143-173	92

क्रम	विषय	आचार्य पदवी काल (ई.स.में)	पृष्ठ
24	आचार्यदेव श्री गृद्धपिच्छ उमास्वामी	ई.स. 179-243	94
25	आचार्यदेव श्रीदत्तजी	चतुर्थ शताब्दी मध्यपाद	99
26	आचार्यदेव श्री पूज्यपादस्वामी अपरनाम देवनन्दि	पाँचवीं शताब्दी मध्यपाद	101
27	आचार्यदेव श्री वज्रसूरि अपरनाम वज्रनन्दि	ई.स. 442-464	103
28	आचार्यदेव श्री यशोभद्र	छठवीं शताब्दी मध्यपाद	104
29	आचार्यवर श्री जोईन्दु अपरनाम योगीन्दु	छठवीं शताब्दी उत्तरार्ध	105
30	आचार्यदेव श्री पात्रकेसरी या पात्रस्वामी	छठवीं-सातवीं शताब्दी	106
31	आचार्य ऋषिपुत्र	छठवीं-सातवीं शताब्दी	109
32	आचार्य श्री सिद्धसेन : दीक्षा नाम कुमुदचंद्राचार्य	ई.स. 568	111
33	आचार्यदेव श्री मानतुंग स्वामी	ई.स. 618-650	113
34	आचार्यदेव श्री प्रभाचन्द्र आचार्य (द्वितीय)	सातवीं शताब्दी	116
35	आचार्यदेव श्री अकलंक भट्ट	ई.स. 620-680	117
36	आचार्यदेव श्री रविषेणस्वामी	ई.स. 677	123
37	आचार्यदेव श्री जटासिंहनन्दि अपरनाम जटाचार्य	सातवीं-आठवीं शताब्दी	125
38	आचार्य श्री शान्त अथवा शान्तिषेण	सातवीं शताब्दी	127
29	आचार्यदेव श्री जिनसेनस्वामी (प्रथम)	ई.स. 748-818	129
40	आचार्यदेव श्री काणभिक्षु	आठवीं शताब्दी मध्यपाद	132
41	मुनिपुंगव वादीभसिंह	ई.स. 770-860	133
42	श्री एलाचार्य	ई.स. 770	135
43	आचार्य श्री वीरसेन स्वामी	ई.स. 770-827	137
44	आचार्य श्री जयसेनाचार्यदेव (चतुर्थ/पंचम)	ई.स. 770-827	140
45	आचार्य श्री विद्यानन्दस्वामी	ई.स. 776-840	143
46	आचार्य श्री अनन्तकीर्तिजी	आठवीं शताब्दीका उत्तरार्ध	146
47	आचार्य श्री कुमारनन्दि	आठवीं नौंवी शताब्दी	147
48	आचार्य श्री महावीरदेव	ई.स. 800-830	148
49	आचार्यवर श्री जिनसेन (द्वितीय)	ई.स. 818-878	149
50	आचार्यदेव श्री दशरथस्वामी	ई.स. 820-870	152
51	आचार्यदेव श्री गुणभद्रस्वामी	ई.स. 898	153
52	आचार्यदेव श्री अमृतचन्द्रदेव	ई.स. 905-955	156
53	आचार्यदेव श्री अमितगति (प्रथम)	ई.स. 923-963	162

क्रम	विषय	आचार्य पदवी काल (ई.स.में)	पृष्ठ
54	आचार्यदेव श्री अभयनन्दि सिद्धान्तचक्रवर्तीदेव	ई.स. 930-950	163
55	श्री देवसेनाचार्य	ई.स. 933-955	164
56	आचार्यदेव श्री इन्द्रनन्दि	ई.स. 939	165
57	आचार्यदेव श्री कनकनन्दि सिद्धान्तचक्रवर्तीदेव	ई.स. 939	166
58	आचार्यदेव श्री सोमदेवसूरि	ई.स. 943-968	167
59	आचार्यदेव वीरनन्दी सिद्धान्तचक्रवर्तीदेव	ई.स. 950-990	168
60	आचार्यदेव श्री प्रभाचन्द्र (चतुर्थ)	ई.स. 950-1020	169
61	आचार्यदेव श्री (बृहद्) अनन्तवीर्य	ई.स. 975-1025	172
62	आचार्यदेव श्री पद्मनंदिनाथ (प्रथम)	ई.स. 977-1043	173
63	आचार्यदेव नेमिचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्तीदेव	ई.स. 981	198
63	आचार्यदेव श्री जयसेन (षष्ठम्)	10-11वीं शताब्दी	181
64	आचार्यदेव श्री अमितगति (द्वितीय)	ई.स. 983-1023	183
65	आचार्यदेव श्री माणिक्यनन्दिजी	ई.स. 1003-1028	184
66	आचार्यदेव श्री शुभचन्द्रदेव	ई.स. 1003-1068	186
67	आचार्यदेव श्री वादिराजसूरि	ई.स. 1010-1065	192
68	श्री रामसेनाचार्य	11 वीं शताब्दी उत्तरार्ध	196
69	आचार्यदेव श्री पद्मनंदि (द्वितीय)	11 वीं शताब्दी उत्तरार्ध	197
70	नेमिचन्द्र सिद्धान्तिदेव(मुनि)	ई.स. 1068	198
71	आचार्यदेव श्री वसुनन्दि	ई.स. 1068-1118	199
72	आचार्यदेव श्री ब्रह्मदेवजी	11 वीं शताब्दी अंतीमपाद	200
73	आचार्यदेव श्री जयसेनजी (सप्तम्)	11-12 वीं शताब्दी	202
74	आचार्यदेव श्री जिनचन्द्रजी	11-12 वीं शताब्दी	204
75	आचार्यदेव श्री लघु अनन्तवीर्य	बारवीं शताब्दी मध्यपाद	205
76	श्री पद्मप्रभमलधारीदेव मुनिवर	बारहवीं शताब्दी मध्यपाद	207
77	आचार्यदेव श्री अभिनव धर्मभूषण यति	ई.स. 1358-1418	210
78	आचार्यदेव श्री श्रीधराचार्यदेव	14वीं शताब्दी मध्यपाद	212
*	भगवान महावीरस्वामी पश्चात् 25वीं शताब्दीमें जिनधर्म	20वीं शताब्दी मध्यपाद	213
*	मुनिराज भक्ति		215
*	परिशिष्ट		216

इस
हस्ते
विक्रय

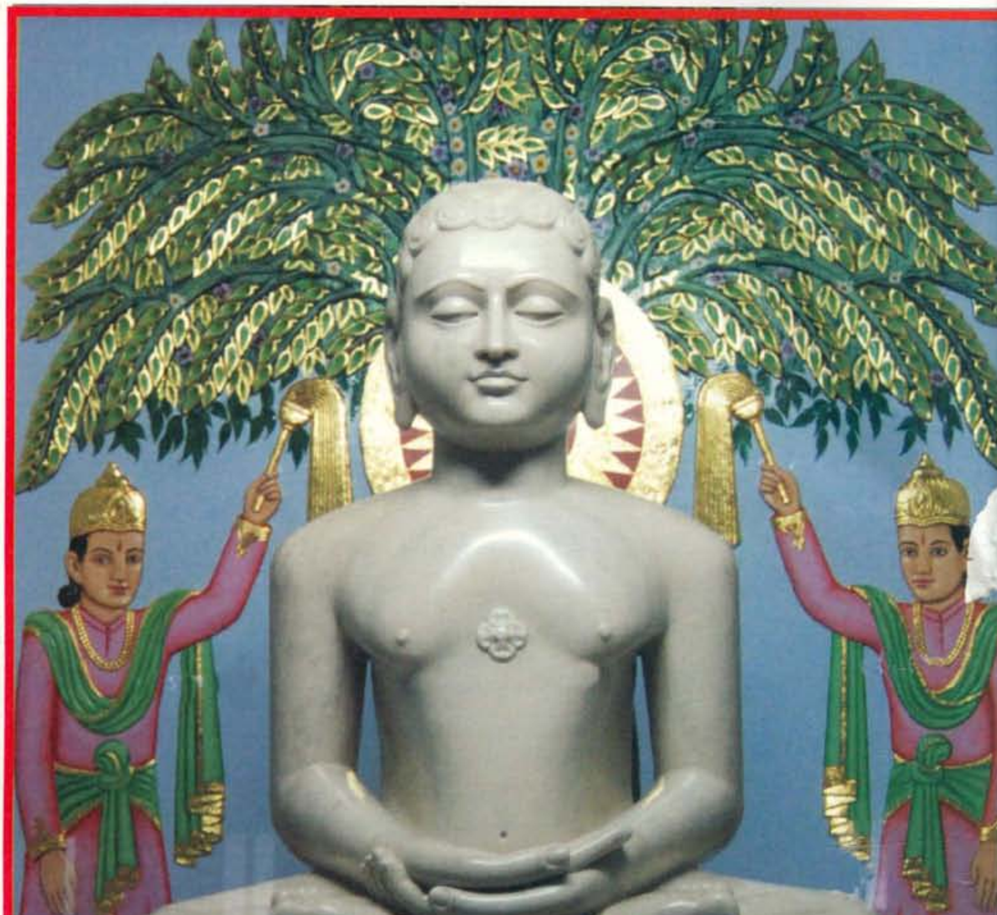

शासननायक भगवान श्री महावीरस्वामी

भगवान महावीरस्वामी

भरतक्षेत्रकी वर्तमान चौबीसीके तेईसवें तीर्थंकर भगवान पार्श्वनाथके मोक्षगमनके पश्चात् मात्र एकसौ वर्षके भीतर ही जिनेन्द्रवाणीमेंसे प्रवाहित हुई ज्ञानगंगाका प्रवाह अति मंद हो गया। समग्र भारतवर्षमें विपरीत मतावलम्बीयोंका प्रभुत्व स्पष्टरूपसे स्थापित हो गया। अन्य मतके पाखंडीयोंने भरतक्षेत्रकी जनताके मानस पर अपना आधिपत्य जमा लिया था।

ऐसे दुःषम वातावरणमें भरतक्षेत्रके चौवीसवें तीर्थंकर भगवान महावीरस्वामीका जन्म ा। भरतक्षेत्रके भव्य जीवोंका भाग्य पुनः जागृत हुआ। जो भूमि सम्यक्त्वविहिन वीरान जैसी हो गई थी; वह पुनः भगवान महावीरके आगमनसे पल्लवीत हो गई।

जम्बूद्वीप–भरतक्षेत्रके मगध (बिहार) देशमें कुण्ड़लपुर नामक एक नगर था, जो उस समय वाणिज्य-व्यवसायके द्वारा उत्कर्षकी चरम सीमा पर था। उसमें बड़े-बड़े धनाढ्य सेठ लोग रहा करते थे। कुण्ड़लपुरका शासन-सूत्र महाराज सिद्धार्थके हाथमें था। सिद्धार्थ शूर-ीर होनेके साथ-साथ बहुत गम्भीर प्रकृतिके पुरुष थे। लोग उनकी दयालुता देखकर कहते, के ये चलते-फिरते दयाके सागर हैं। उनकी मुख्य रानीका नाम प्रियकारिणी (त्रिशला) ा।

अच्युत स्वर्गके इन्द्रकी आयु छः माह बाकी रह गई, तबसे महाराज सिद्धार्थके र प्रतिदिन रत्नोंकी वर्षा होने लगी। अनेक देवियाँ आकर (त्रिशला) प्रियकारिणीकी सेवा करने लगी। इन सब कारणोंसे महाराजा सिद्धार्थको निश्चय हो गया, कि अब हमारे नाथ-वंशमें किसी प्रभावशाली जगवन्द्य महापुरुषका जन्म होनेवाला है।

अषाढ़ शुक्ला षष्ठीके दिन उत्तराषाढ़ नक्षत्रमें रात्रिके पिछले प्रहरमें रानी त्रिशलाने सोलह स्वप्न देखे और

स्वप्न देखनेके बाद अपने मुँहमें प्रवेश करते हुए एक हाथीको देखा। उसी समय उस इन्द्रने अच्युत स्वर्गके पुष्पोत्तर विमानको छोड़कर रानी त्रिशला माँके गर्भमें प्रवेश किया। प्रातः होते ही रानीने स्नान कर पतिदेव महाराज सिद्धार्थसे स्वप्नोंका फल पूछा। उन्होंने अवधिज्ञानसे विचार कर कहा—हे प्रिये, तुम्हारे गर्भसे नव माह बाद तीर्थंकर पुत्रका जन्म होगा। वह सारे संसारका कल्याण करेगा—लोगोंको आत्महितके मार्ग पर लगायेगा। पतिके वचन सुन त्रिशला हर्षके मारे फूली न समाती थी। उसी समय चारों निकायके देवोंने आकर भावी तीर्थंकर महावीरके गर्भावतरणका उत्सव किया तथा उनके माता और पिताका उचित सत्कार किया।

गर्भकालके नौ माह पूर्ण होने पर चैत्र शुक्ला त्रयोदशीके दिन उत्तरा फाल्गुनी नक्षत्रमें प्रातः समय त्रिशलाके गर्भसे भगवान वर्द्धमानका जन्म हुआ। उस समय अनेक शुभ शकुन हुए थे। उनकी उत्पत्तिसे देव, दानव, मृग और मानव ही नहीं वरन् नारकी तकको हर्ष हुआ था। चारों निकायके देवोंने आकर जन्मोत्सव मनाया था। उस दिन इन्द्रने बालक वर्द्धमानको मेरु पर्वत पर ले जाकर अति भक्तिवश जन्माभिषेक किया व ताण्डव नृत्यादि व आनंद नाटकादि किये। उस समय कुण्ड़लपुर अपनी सजावटसे स्वर्गको भी पराजित कर रहा था। देवराजने उस बालकका नाम 'वर्द्धमान' रक्खा था। जन्मोत्सवकी विधि समाप्त कर देव लोग अपने-अपने स्थान पर चले गये। राज-परिवारमें बालक वर्द्धमानका बहुत प्यारसे लालन-पालन होने लगा।

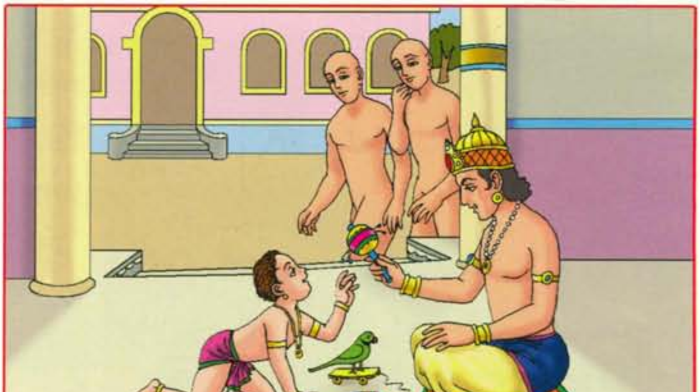

एक बार संजय और विजय नामके दो चारणमुनियोंको किसी पदार्थमें सन्देह उत्पन्न हुआ था, परन्तु भगवानके जन्मके

बाद ही वे उनके समीप आये और उनके दर्शनमात्रसे ही उनका सन्देह दूर हो गया। इसलिए उन्होंने बड़ी भक्तिसे कहा था, कि यह बालक सन्मति तीर्थंकर होनेवाला है, अर्थात् उन्होंने उनका नाम 'सन्मति' रखा था।

वह बालक द्वितीयाके इन्दुकी भाँति दिन-प्रतिदिन बढ़कर कुमार-अवस्थामें प्रविष्ट हुआ। कुमार वर्द्धमानको जो भी देखता था, उसकी आँख हर्षके आँसुओंसे तर हो जाती थीं। मन आनन्दसे गद्गद् हो जाता था और शरीर रोमाञ्चित हो जाता था। इन्हें अल्पकालमें ही समस्त विद्यायें स्वतः प्राप्त हो गई थीं। बालक वर्द्धमानके अगाध पाण्डित्यको देखकर अच्छे-अच्छे विद्वानोंको भी दाँतों तले अंगुलियाँ दबानी पड़ती थीं। विद्वान होनेके साथ-साथ वे शूरता, वीरता और साहस आदि गुणोंके अनन्य आश्रय थे।

किसी एक दिन इन्द्रकी सभामें देवोंमें यह चर्चा चल रही थी, कि इस समय सबसे अधिक शूरवीर श्रीवर्धमानस्वामी ही हैं। यह सुनकर एक संगम नामका देव उनकी परीक्षा करनेके लिए आया। आते ही उस देवने देखा कि देदीप्यमान आकारका धारक बालक वर्द्धमान, बाल्यावस्थासे प्रेरित हो, बालकों जैसा वेश धारण करनेवाले तथा समान अवस्थाके धारक अनेक देवोंके साथ बगीचेमें एक वृक्ष पर चढ़े हुए क्रीड़ा करनेमें तत्पर हैं। यह देख संगम नामका देव उन्हें डरानेकी इच्छासे किसी बड़े साँपका रूप धारण कर उस वृक्षकी जड़से लेकर

स्कन्ध तक लिपट गया। सब बालक उसे देखकर भयसे काँप उठे और शीघ्र ही डालियोंसे जमीन पर नीचे कूदकर जिस किसी तरह भाग गये, सो ठीक ही है, क्योंकि महाभय उपस्थित होनेपर महापुरुषके सिवाय अन्य कोई ठहर नहीं सकता। जो लपलपाती हुई सो जिह्वाओंसे अत्यन्त भयंकर दिख रहा था। ऐसे उस सर्प पर चढ़कर कुमार महावीरने निर्भय हो उस समय इस प्रकार क्रीड़ा की जिस प्रकार कि वे माताके पलंग पर किया करते थे। कुमारकी इस क्रीड़ासे जिसका हर्षरूपी सागर उमड़ रहा था, ऐसे उस संगम देवने भगवानकी स्तुति की और उनका 'महावीर' नाम रखा।

इस भांति कुमारके वीर, अतिवीर आदि नाम भी पड़े।

जब धीरे-धीरे उनकी आयुके तीस वर्ष बीत गये और उनके शरीरमें यौवनका पूर्ण विकास हो गया, तब एक दिन महाराज सिद्धार्थने उनसे कहा—'प्रिय पुत्र! अब तुम पूर्ण युवा हो गये हो, तुम्हारी गम्भीर और विशाल आँखें, तुम्हारा उन्नत ललाट, प्रशान्त वदन, मन्द मुस्कान, चतुर वचन, विस्तृत वक्षस्थल और धुटनों तक लम्बी तुम्हारी भुजायें तुम्हें प्रत्यक्ष महापुरुष सिद्ध कर रही हैं। अब तुम्हारे अन्दर खोजने पर भी वह चंचलता नहीं पाता हूँ, जो बाल्यावस्थामें थी। अब यह समय तुम्हारे राज-कार्य संभालनेका है। मैं अब वृद्ध हो गया हूँ और कितने दिन तक तुम्हारा साथ दे सकूँगा? मैं तुम्हारा विवाह कर तुम्हें राज्य देकर संसारकी झंझटोंसे बचना चाहता हूँ। पिताके वचन सुनकर महावीरका प्रफुल्ल मुखमण्डल सहसा गम्भीर हो गया। मानो, किसी गहरी समस्याके सुलझानेमें लग गये हों। कुछ देर बाद उन्होंने कहा–'पूज्य पिताजी! आपकी आज्ञाका पालन मुझसे नहीं हो सकेगा। भला, जिस झंझटोंसे आप स्वयं बचना चाहते हैं, उसी झंझाटोंमें आप मुझे क्यों फंसाना चाहते हो? अरे! मेरी कुल आयु बहत्तर वर्षकी है, जिसमें आज तीस वर्ष व्यतीत हो चुके हैं। अब अवशिष्ट अल्प जीवनमें मुझे स्वरूपमयदशा प्राप्त करने हेतु बहुत कुछ कार्य करने बाकी है, तो मैं कैसे यह बोझ संभालूँ? अब आप ही कहें, कि 'मेरा विचार क्या बुरा है?' राजा सिद्धार्थने बीचमें ही कुमारको टोक कर कहा—'पर ये कार्य तो गृहस्थाश्रममें रहते हुए भी हो सकते हैं।' तब महावीरने उत्तर दिया—'जी नहीं पिताजी! यह मुझ पर केवल आपका व्यर्थ मोह है। थोड़ी देरके लिए यह भूल जाइये, कि 'महावीर आपका पुत्र है'। फिर देखिये आपकी यह विचार-धारा परिवर्तित हो जाती है या नहीं? बस, पिताजी! मुझे आज्ञा दीजिये, जिससे मैं जंगलमें आत्मज्योतिका घनत्व प्राप्त कर सकूँ और अपना कल्याण कर सकूँ।' क्या विचार था और क्या हुआ? सोचकर सिद्धार्थ महाराज विक्षुण्ण वदन हो चुप रहे।

जब पिता-पुत्रके प्रश्नोत्तरका संवाद त्रिशला रानीके कानोंमें पड़ा, तब वह पुत्रमोहसे व्याकुल हो उठी। उसके पाँवके नीचेकी जमीन खिसकने लगी। आँखोंके सामने अंधेरा छा गया। वह मूर्च्छित ही हो रही थी, कि बुद्धिमान वर्द्धमानकुमारने चतुराई भरे मधुर शब्दोंमें उसे धैर्य बंधाया। उनके सामने उसने अपने समस्त कर्तव्य प्रकट कर दिये–अपने उच्च आदर्श विचार सामने रख दिये एवं संसारके दूषित वातावरणसे उन्हें परिचित करा दिया। तब रानी त्रिशलाने अश्रु-सिक्त आँखोंसे भगवान महावीरकी ओर देखा। उस समय उसके चेहरे पर उन्हें आत्मकल्याणकी दिव्य झलक दिखाई दी। उसकी लालसा रहित सरल मुखाकृतिने समस्त विमोहको दूर कर दिया। महावीरको देखकर उसने अपनेको धन्य माना और कुछ देर तक अनिमेष दृष्टिसे उसकी ओर देखती रही। फिर कुछ देर बाद उसने महावीरसे स्पष्ट स्वरमें कहा–'हे देव! जाओ, हर्षसे जाओ। अपना आत्मकल्याण करो। अब मैं आपको पहचान सकी। अब लग रहा है, कि न मैं आपकी माता हूँ, आप तो एक आराध्य देव हैं और मैं हूँ आपकी एक क्षुद्र सेविका। मेरा पुत्र-मोह बिलकुल दूर हो गया है।'

जातिस्मृतिज्ञान प्रकट हो जानेसे व माताके उक्त वचनोंसे महावीर स्वामीके विरक्त हृदयको और भी आलम्बन मिल गया। उन्होंने स्थिर-चित्त होकर संसारकी परिस्थितिका पूर्ण विचार किया और वनमें जाकर दीक्षा लेनेका दृढ़ निश्चय कर लिया। उसी समय धवल वस्त्र पहने हुए लौकान्तिक देवोंने आकर उनकी स्तुति की और उनके दीक्षा धारण करनेके विचारोंकी सराहना की। अपना कार्य पूरा कर लौकान्तिक देव अपने स्थानों पर वापस चले गये। उनके जाते ही असंख्य देव-गण नियोगरूप जय-घोष करते हुए आकाशमार्गसे कुण्ड़लपुर आये। वहाँ अगहन वदी दशमीके दिन हस्त नक्षत्रमें संध्याके समय कुमार वर्धमानने 'ॐ नमः सिद्धेभ्यः' कहकर वस्त्राभूषण उतार दिये। पंच मुष्टियोंसे अपने केश उखाड ड़ाले। इस तरह बाह्य और अभ्यंतर परिग्रहोंका त्याग कर वे आत्मध्यानमें लीन हो गये। विशुद्धताके बढ़नेसे अप्रमत्तदशा सह उन्हें मनःपर्ययज्ञान प्राप्त हो गया। 'दीक्षाकल्याणक'का उत्सव समाप्त कर देव लोग अपने-अपने स्थानों पर चले गये।

एक दिन वे जृम्भिका गाँवके समीप ऋजुकूला नदीके किनारे मनोहर वनमें सागोन वृक्षके नीचे पत्थरकी शिला पर विराजमान थे। वहीं पर शुक्ल-ध्यानके प्रतापसे उनके घातियाकर्मोका क्षय होकर वैशाख शुक्ला दशमीके दिन हस्त नक्षत्रमें संध्याके समय उन्हें 'केवलज्ञान' उत्पन्न हो गया। देवोंने आकर 'ज्ञानकल्याणक'का उत्सव किया। इन्द्रकी आज्ञासे धनपति कुबेरने 'समवसरणकी रचना की'। 'केवलज्ञान' प्राप्त होने पर भी छयासठ दिन तक उनकी दिव्य-ध्वनि नहीं खिरी।

इन्द्रने अवधिज्ञानसे जान लिया कि अभी सभाभूमिमें कोई गणधर नहीं है और बिना गणधरके तीर्थङ्करकी वाणी नहीं खिरती। साथमें अवधिज्ञानसे यह भी जाना, कि गुणावा ग्राममें (अपरकथानुसार गौतमवंशीय) इन्द्रभूति नामका जो ब्राह्मण है, वही भगवानका गणधर होगा। इसलिये इन्द्रभूतिको लानेके लिए इन्द्र गौतमके ग्रामको गया। इन्द्रभूति वेद-वेदांतोंका महान ज्ञाता था। उसे बड़ा अभिमान था। इन्द्रभूतिने नये शिष्यकी ओर देखकर कहा– 'तुम कहाँसे आये हो? किसके शिष्य हो? वेषधारी इन्द्रने कहा—'मैं सर्वज्ञ भगवान महावीरका शिष्य हूँ।' इन्द्रभूतिने महावीरके साथ 'सर्वज्ञ' और 'भगवान' विशेषण सुनकर व्यंग्य करते हुए कहा—'ओ सर्वज्ञके शिष्य! तुम्हारे गुरु यदि सर्वज्ञ हैं, तो अभी तक कहाँ छिपे रहे? क्या मुझसे शास्त्रार्थ किये बिना ही वे 'सर्वज्ञ' कहलाने लगे हैं?' इन्द्रने कहा—'क्या आप उनसे शास्त्रार्थ करनेको उत्सुक हैं?' इन्द्रभूतिने कहा–'अवश्य।' इन्द्रने कहा—'पहिले आप मुझसे शास्त्रार्थ कर देखिये, फिर मेरे गुरुसे करियेगा। मेरा प्रश्न है

(स्रग्धरा)

त्रैकाल्यं द्रव्यषट्कं नवपदसहितं जीवषट्-काय-लेश्याः।
पञ्चान्ये चास्तिकाया व्रत-समिति-गति-ज्ञान-चारित्रभेदाः॥
इत्येतन्मोक्षमूलं त्रिभुवनमहितैः प्रोक्तमर्हद्भिरीशैः।
प्रत्येति श्रद्दधाति स्पृशति च मतिमान् यः स वै शुद्धदृष्टिः॥

कहिये महाराज! इस श्लोकका अर्थ क्या है?'

जब इन्द्रभूतिको 'द्रव्यषट्कं' 'नवपद सहितं' 'लेश्या' आदि शब्दोंका अर्थ प्रतिभासित नहीं हुआ, तब वह चिढ़कर बोला—'तुझसे क्या शास्त्रार्थ करूँ? तेरे गुरुसे ही शास्त्रार्थ करूँगा। वह पाँचसौ शिष्योंके साथ भगवान महावीरके पास जानेको उद्यत हो गया। इन्द्र भी आगे चलकर उन्हें मार्ग बतलाने लगा। ज्योंही इन्द्रभूति समवशरणके पास आया और उसकी दृष्टि मानस्तंभ पर पडी, त्योंही उसका अभिमान चूर हो गया। वह समवसरणके भीतर गया। वहाँ भगवानकी दिव्य विभूति देखकर उसने अपने-आपको बहुत ही क्षुद्र अनुभव किया। समवसरणके वैभवसे गद्‌गद् होकर इन्द्रभूतिने कहा 'भगवान! मुझे भी अपने चरणोंमें स्थान दीजिये।' ऐसा कहकर उसने अन्तरंग आत्म-पवित्रता प्राप्त कर वहीं जिन-दीक्षा धारण कर ली। उसके बाद पाँच सौ शिष्योंने भी जैन-धर्म स्वीकार कर यथाशक्ति व्रत विधान ग्रहण किये।

भगवान महावीरका विहार, बिहार प्रान्तमें अधिक हुआ है। राजगृहके विपुलाचल पर्वत पर कई बार उनके आनेके कथानक मिलते हैं। इस तरह समस्त भारतवर्षमें जिन-धर्मकी आत्मकल्याणी वाणी बरसाते-बरसाते जब उनकी आयु बहुत थोड़ी रह गई, तब वे पावापुर आये और वहाँ योग-निरोध कर आत्म-ध्यानमें लीन हो विराजमान हो गये। वहीं पर उन्होंने सूक्ष्म-क्रिया प्रतिपाति और व्युपरत क्रिया निवृत्ति नामक शुक्लध्यानके द्वारा समस्त अघातिया कर्मोंका नाश कर कार्तिक कृष्णा अमावस्याके दिन प्रातःकालके समय करीब बहत्तर वर्षकी अवस्थामें मोक्षश्रीको प्राप्त किया। देवोंने आकर निर्वाणक्षेत्रकी पूजा की और उनके गुणोंकी स्तुति की। भगवान महावीर जब मोक्ष गये थे, तब चतुर्थकालके ३ वर्ष ८ माह १५ दिन बाकी रह गये थे। उनकी आयु ७१ वर्ष ३ माह २५ दिनकी मानी है, उसका विभाग इस तरह है :—

गर्भकाल	९ मास ८ दिन,
कुमारकाल	२८ वर्ष ७ मास १२ दिन,
छद्मस्थकाल	१२ वर्ष ५ मास १५ दिन,
केवलीकाल	२९ वर्ष ५ मास २० दिन—
कुल	७१ वर्ष ३ माह २५ दिन हुए।

मुक्त होने पर चतुर्थकालके बाकी रहे ३ वर्ष ८ माह १५ दिन।

महावीरस्वामी नयनपथगामी भवतु मे(नः)।

हमारे जीवन पथदर्शक दिगम्बर जैन
आचार्य भगवंतका सामान्य स्वरूप

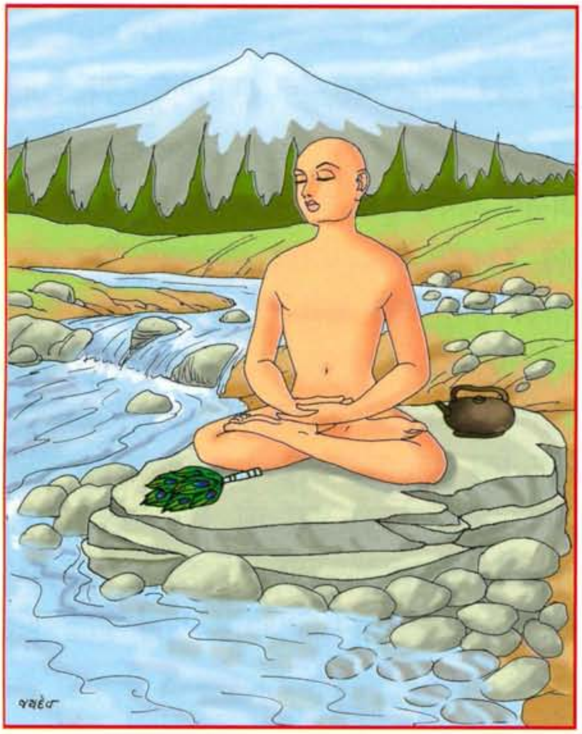

हमारे आचार्य भगवंत स्वयम्‌के जीवनसे यह परम सत्य बताते हैं कि 'हे जगतके जीव! तुम्हारे सुखका एकमात्र उपाय निज परमात्मस्वरूप तत्त्वका आश्रय है। सम्यग्दर्शनसे लेकर सिद्ध तककी सर्व भूमिकाएँ उसमें समा जाती हैं; क्योंकि निज परमात्मस्वरूप तत्त्वका जघन्य आश्रय सो सम्यग्दर्शन है; वह आश्रय मध्यम कोटिकी उग्रताको धारण करने पर जीवको देशचारित्र, सकलचारित्र और पूर्ण आश्रय होने पर केवलज्ञान तथा सिद्धत्व प्राप्त करके जीव कृतार्थ होता है। इस प्रकार निज परमात्मस्वरूप तत्त्वका आश्रय ही सम्यग्दर्शन है, वह ही सम्यग्ज्ञान है और वह ही सम्यक्‌चारित्र है; वही सत्यार्थ प्रतिक्रमण, प्रत्याख्यान, आलोचना, प्रायश्चित्त, सामायिक, भक्ति, आवश्यक, समिति, गुप्ति, तप, संवर, निर्जरा, धर्म-शुक्लध्यान आदि सब कुछ है।

सभी आचार्य, उपाध्याय, साधुका जीवन निम्नानुसार होता है।

(१) परमसंयमी महापुरुष होनेसे त्रिकालनिरावरण निरंजन परम पंचमभावकी भावनामें परिणमित होनेके कारण ही समस्त बाह्यव्यापारसे विमुक्त; (२) ज्ञान, दर्शन, चारित्र और परम तप नामकी चतुर्विध आराधनामें सदा अनुरक्त; (३) बाह्य-अभ्यंतर समस्त परिग्रहके

ग्रहण रहित होनेके कारण निर्ग्रंथ; तथा (४) सदा निरंजन निज कारणसमयसार स्वरूपके सम्यक् श्रद्धान, सम्यक् परिज्ञान और सम्यक् आचरणसे प्रतिपक्ष ऐसे मिथ्या दर्शन, मिथ्या ज्ञान और मिथ्या चारित्रका अभाव होनेके कारण निर्मोह; —ऐसे, परमनिर्वाणसुन्दरीकी सुन्दर माँगकी शोभारूप कोमल केशरके रज-पुंजके सुवर्णरंगी अलङ्कारको (–केशर-रजकी कनकरंगी शोभाको) देखनेमें कौतूहलबुद्धिवाले वे समस्त साधु होते हैं (अर्थात् पूर्वोक्त लक्षणवाले, मुक्तिसुन्दरीकी अनुपमताका अवलोकन करनेमें आतुर बुद्धिवाले समस्त साधु होते हैं)।

ऐसे साधु भगवंत निरंतर उपदेश देते हैं कि,

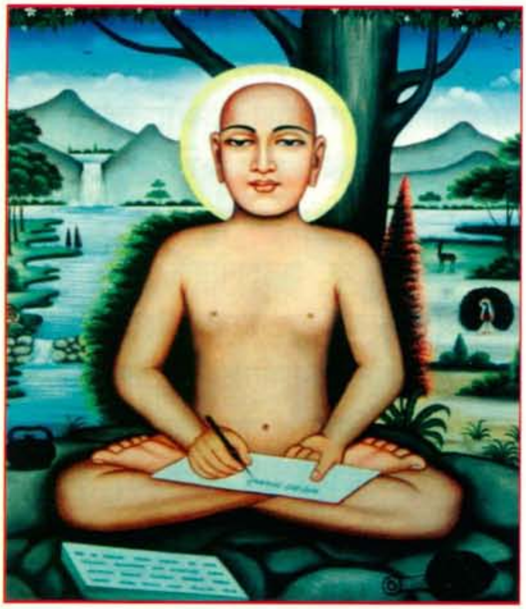

वीतरागं वीतरागं जीवस्थ
निजस्वस्वरूपो वीतरागं।
मुहूर्मुह मुर्णाति वीतरागं,
स गुरुपदं भासदि सदा॥

अर्थ : 'जीवका निजस्वरूप वीतराग है', ऐसा बार बार उपदेश देते हैं, वह ही गुरुपदवीसे शोभित होता है।

भावार्थ : अट्ठाईस मूलगुण, बाईस परीषह, पंचाचार आदि सहित विराजमान, परमाणुमात्र बाह्य परिग्रह नहीं है और अंतरंगमें भी परमाणुमात्र परिग्रहकी इच्छा नहीं है, अनेक उदासीनभावोंसे विराजमान है और निज जातिस्वरूपको साधते हैं, सावधान हो समाधिमें लीन होते हैं। संसारसे उदासीन परिणाम किये हैं, ऐसे जो जैन साधु हैं; अपनेको तो वीतरागरूप अनुभवते ही हैं और मनको स्थिरीभूत करके जब किसीको उपदेश भी देते हैं तो, अन्य सब छोड़कर जीवके एक निज वीतरागस्वरूपको ही बार बार कहते हैं। उनके अन्य कुछ अभ्यास नहीं है, यही एक अभ्यास है। स्वयं भी अंतरंगमें स्वयंको वीतरागरूप अभ्यास करते हैं और बाह्यमें भी जब बोलते हैं, तब 'आत्माका वीतराग स्वरूप' है, यही वचन बोलते हैं। ऐसा वीतरागका उपदेश सुनते ही निकट-भव्यको निःसंदेहरूपसे निज वीतरागस्वरूपकी सुधि होती है। इसमें संशय नहीं है। जिस साधुके वचनमें ऐसा वीतरागका ही कथन है, उस जैन साधुको ही 'निकटभव्य' गुरु कहते हैं; क्योंकि अन्य कोई पुरुष

तत्त्वका ऐसा उपदेश नहीं कहता है। अतः इस पुरुषको ही गुरुकी पदवी शोभायमान होती है, अन्यको शोभायमान नहीं होती। यह निःसंदेहरूपसे जानना।

आचार्य, उपाध्याय व मुनिराजका बाह्यरूप सभीका एक स्वरूप है। ऐसे आपके सामान्य स्वरूप संबंधित आचार्यकल्प पंडित टोडरमलजी बताते हैं कि—

जो विरागी होकर, समस्त परिग्रहका त्याग करके, शुद्धोपयोगरूप मुनिधर्म अंगीकार करके—अंतरंगमें तो उस शुद्धोपयोग द्वारा अपनेको आपरूप अनुभव करते हैं, परद्रव्यमें अहंबुद्धि धारण नहीं करते, तथा अपने ज्ञानादिक स्वभाव ही को अपना मानते हैं, परभावोंमें ममत्व नहीं करते, तथा जो परद्रव्य व उनके स्वभाव ज्ञानमें प्रतिभासित होते हैं, उन्हें जानते तो हैं, परन्तु इष्ट-अनिष्ट मानकर उनमें राग-द्वेष नहीं करते; शरीरकी अनेक अवस्थाएँ होती हैं, बाह्य नाना निमित्त बनते हैं, परन्तु वहाँ कुछ भी सुख-दुःख नहीं मानते; तथा अपने योग्य बाह्य क्रिया जैसे बनती है वैसे बनती है, खींचकर उनको नहीं करते; तथा अपने उपयोगको बहुत नहीं भ्रमाते हैं, उदासीन होकर निश्चलवृत्तिको धारण करते हैं; तथा कदाचित् मंदरागके उदयसे शुभोपयोग भी होता है—उससे जो शुद्धोपयोगके बाह्य साधन हैं, उनमें अनुराग करते हैं, परन्तु उस रागभावको हेय जानकर दूर करना चाहते हैं; तथा तीव्र कषायके उदयका अभाव होनेसे, हिंसादिरूप अशुभोपयोग परिणतिका तो अस्तित्व ही नहीं रहा है; तथा ऐसी अन्तरंग अवस्था होने पर बाह्य दिगम्बर सौम्यमुद्राधारी हुए हैं, शरीरका सँवारना आदि विक्रियाओंसे रहित हुए हैं, वनखण्डादिमें वास करते हैं, अट्ठाईस मूलगुणोंका अखण्डित पालन करते हैं; बाईस परीषहोंको सहन करते हैं, बारह प्रकारके तपोंको आदरते हैं, कदाचित् ध्यानमुद्रा धारण करके प्रतिमावत् निश्चल होते हैं, कदाचित् अध्ययनादिक बाह्य धर्मक्रियाओंमें प्रवर्तते हैं, कदाचित् मुनिधर्मके सहकारी शरीरकी स्थितिके हेतु, योग्य आहार-विहारादि क्रियाओंमें सावधान होते हैं।

ऐसे जैन मुनि हैं, उन सबकी ऐसी ही अवस्था होती है।

इसी भांति पूज्य सद्गुरुदेव श्री कानजीस्वामी आचार्यादिका सामान्य स्वरूप बताते हुए कहते हैं कि—

मुनिदशा होने पर सहज ही निर्ग्रन्थ दिगम्बरदशा हो जाती है। मुनिकी दशा तीनों काल नग्न दिगम्बर होती है। यह कोई पक्ष या सम्प्रदाय नहीं है, किन्तु अनादि सत्य वस्तुस्थिति है।

शंका :–मुनिदशामें वस्त्र हों तो आपत्ति क्या है? वस्त्र तो परवस्तु हैं, वे कहाँ आत्माको बाधक होते हैं?

समाधान :–वस्त्र तो परवस्तु है और वे कहीं आत्माको बाधक नहीं है, यह बात तो सच है; परन्तु वस्त्र ग्रहण करनेकी जो बुद्धि है, वह रागमय बुद्धि ही मुनिदशाको रोकनेवाली है। अन्तरंग रमणता करते-करते मुनियोंको इतनी उदासीन दशा सहज ही हो जाती है, कि वस्त्र ग्रहण करनेका विकल्प ही नहीं उठता।

अहो! धन्य वह मुनिदशा! मुनिराज कहते हैं, कि हम तो चिदानन्दस्वभावमें झूलनेवाले हैं, हम इस संसारके भोगके लिए अवतरित नहीं हुए हैं। हम तो अब अपने आत्मस्वभावकी ओर झुकते हैं। अब हमारा स्वरूपस्थित होनेका समय आ गया है। अन्तरके आनन्दकन्दस्वभावकी श्रद्धा सहित, उसमें रमणता करने हेतु जागृत हुए, उस भावमें अब भंग नहीं पड़ेगा। अनन्त तीर्थंकर जिस पथ पर विचरे उसी पथके हम पथिक हैं।

मुनिको कोई क्रम-प्रक्रम नहीं होता—मुनि किसी कार्यका भार सिरपर नहीं लेते। 'पाठशालाका ध्यान रखना पड़ेगा; चन्दा इकट्ठा करनेके लिए तुम्हें जाना पड़ेगा; तीर्थके लिए पैसा लाना होगा।'—ऐसे किन्हीं भी कार्योंकी जिम्मेवारी, मुनि अपने सिर पर नहीं लेते। किसी प्रकारका बोझ, मुनि सिरपर नहीं रखते।

मुनिराजको चलते-फिरते, खाते-पीते चैतन्यपिण्ड पृथक् हो जाता है और वे अतीन्द्रिय आनन्दामृतरसका वेदन करते हैं। नींदमें भी उन्हें क्षणभर झपकी आती है और क्षणभर जागते हैं; क्षणभर जागते हैं, तब उनके अप्रमत्तध्यान हो जाता है, सहजरूपसे स्वरूपमें लीन हो जाते हैं।—इस प्रकार मुनिराज बारम्बार प्रमत्त-अप्रमत्तदशामें झूलते रहते हैं। ऐसी मुनिराजकी निद्रा है; वे सामान्य मनुष्योंकी भांति घण्टों तक निद्रामें घोरते(गहरी नींद) नहीं रहते। मुनिराज अंतर्मुहूर्तसे अधिक काल तक छठवें गुणस्थानमें रहते ही नहीं। मुनिराजको पिछली रात्रिमें क्षणभर झपकी आती है, इसके सिवा उनको अधिक निद्रा ही नहीं आती—ऐसी उनकी सहज अंतरदशा है।

इसी भांति पूज्य बहिनश्री चंपाबहिन भी आचार्यादिका सामान्य स्वरूप बताते हुए कहती हैं, कि—

धन्य वह निर्ग्रन्थ मुनिदशा! मुनिदशा अर्थात् केवलज्ञानकी तलहटी। मुनिको अंतरमें चैतन्यके अनंत गुण-पर्यायोंका परिग्रह होता है; विभाव बहुत छूट गया होता है। बाह्यमें

श्रामण्यपर्यायके सहकारी कारणभूतपनेसे देहमात्र परिग्रह होता है। प्रतिबंध-रहित सहज दशा होती है; शिष्योंको बोध देनेका अथवा ऐसा कोई भी प्रतिबंध नहीं होता। स्वरूपमें लीनता वृद्धिंगत होती है।।

अखण्ड द्रव्यको ग्रहण करके प्रमत्त-अप्रमत्त स्थितिमें झूले वह मुनिदशा। मुनिराज स्वरूपमें निरंतर जागृत हैं, मुनिराज जहाँ जागते हैं, वहाँ जगत सोता है, जगत जहाँ जागता है, वहाँ मुनिराज सोते हैं। 'निश्चयनयाश्रित मुनिवरो, प्राप्ति करे निर्वाणनी'।।

समाधिपरिणत मुनिराज हैं वे ज्ञायकका अवलंबन लेकर विशेष-विशेष समाधिसुख प्रकट करनेको उत्सुक हैं। मुनिवर श्री पद्मप्रभमलधारिदेव कहते हैं, कि मुनि 'सकलविमल केवलज्ञान-दर्शनके लोलुप' हैं। 'स्वरूपमें कब ऐसी स्थिरता होगी, जब श्रेणी लगाकर वीतरागदशा प्रकट होगी? कब ऐसा अवसर आयेगा, जब स्वरूपमें उग्र रमणता होगी और आत्माका परिपूर्ण स्वभावज्ञान—केवलज्ञान प्रगट होगा? कब ऐसा परम ध्यान जामेगा, कि आत्मा शाश्वतरूपसे आत्मस्वभावमें ही रह जायगा?' ऐसी भावना मुनिराजको वर्तती है। आत्माके आश्रयसे एकाग्रता करते-करते, वे केवलज्ञानके समीप जा रहे हैं। प्रचुर शान्तिका वेदन होता है। कषाय बहुत मन्द हो गया है। कदाचित् कुछ ऋद्धियाँ—चमत्कार भी प्रकट होते जाते हैं; परन्तु उनका उनके प्रति दुर्लक्ष्य है। 'हमें ये चमत्कार नहीं चाहिये। हमें तो पूर्ण चैतन्यचमत्कार चाहिये। उसके साधनरूप, ऐसा ध्यान—ऐसी निर्विकल्पता—ऐसी समाधि चाहिये, कि जिसके परिणामसे असंख्य प्रदेशोंमें प्रत्येक गुण उसकी परिपूर्ण पर्यायसे प्रकट हो, चैतन्यका पूर्ण विलास प्रकट हो।' इस भावनाको मुनिराज आत्मामें अत्यन्त लीनता द्वारा सफल करते हैं।।

सभी मुनिभगवंतोंका ऐसा स्वरूप होता है।

उनमेंसे आचार्यदेवका सामान्य स्वरूप कहते हैं, कि वे ज्ञान, दर्शन, चारित्र, तप और वीर्य नामक पांच आचारोंसे परिपूर्ण; स्पर्शन, रसन, घ्राण, चक्षु और श्रोत नामकी पाँच इन्द्रियोंरूपी मदांध हाथीके दर्पका दलन करनेमें दक्ष, समस्त घोर उपसर्गों पर विजय प्राप्त करते हैं।। अतः गुणगंभीर ऐसे लक्षणोंसे लक्षित आचार्य भगवंत होते हैं।।

जो पंचाचार परायण हैं, अकिंचनताके स्वामी हैं, जो ज्ञायकभावकी लब्ध या उपयोगरुप अनुभूतिसे सकल वीतराग चारित्रवंत होते हैं। जो महा पंचास्तिकायकी स्थितिको समझाते हैं, विपुल अचंचल योगमें जो स्थिर हैं, जिनके गुण उछलते हैं, आचार्योंकी

भक्तिक्रियामें कुशल हैं, उन्हें हम भवदुःखराशिको भेदनेके लिए पूजते हैं। जिनके कर्मोंके उदयके अभावसे, अपने आत्माकी शुद्ध स्वाभाविकता इतनी अधिक होती है, कि 'पानीमें लकीर'की भांति अल्प संज्वलन कषाय ही रह गया है।

उनमें सम्यग्दर्शन-सम्यग्ज्ञान-सम्यक्चारित्रकी अधिकतासे, प्रधान पद प्राप्त करके, संघमें नायक हुए हैं; तथा जो मुख्यरूपसे तो निर्विकल्प स्वरूपाचरणमें ही मग्न हैं और कदाचित् धर्मके लोभी अन्य याचक-जीव उनको देखकर राग अंशके उदयसे करुणाबुद्धि हो तो उनको धर्मोपदेश देते हैं, जो दीक्षाग्राहक हैं, उनको दीक्षा देते हैं, जो अपने दोषोंको प्रकट करते हैं, उनको प्रायश्चित्त विधिसे शुद्ध करते हैं।

ऐसे आचरण करानेवाले आचार्य भगवंतोंको हमारा नमस्कार हो।

इस भांति सभी दिगम्बर आचार्य होते हैं, फिर भी अलग-अलग प्रत्येक आचार्योंमें विध-विध कुछ विशेषताएँ होती हैं।

अतः आचार्योंका उक्त सामान्य स्वरूप मुख्यरूपसे ध्यानमें रखकर यहाँ आगे मात्र प्रत्येक आचार्योंकी विशेषता ही प्रत्येक आचार्योंके जीवन-चरित्रमें दर्शाई गई है; यह ध्यान देने योग्य है।

आचार्योंका आन्तरिक जीवन जो हमारे जीवनमें आदर्श बनाने योग्य है, वह ही महत्त्वपूर्ण है, फिर भी बाह्य जीवनकी विशेषतासे निखरती उनके आन्तरिक आत्मिक जीवनकी विशेष महत्ताको ध्यानमें रख, हम भी अपना जीवन वैसे ही संवारे, इसी हेतु यहाँ भगवान महावीरकी परम्पराके मूलसंघ अन्तर्गत उनकी अनेक शाखाओंमें हुए, आचार्योंका तथा मुनिराजोंका जीवन परिचय विविध इतिहासकारोंकी लेखनीको ध्यानमें रखते हुए, यहाँ दिया जाता है।

वैसे यहाँ जिन आचार्योंका जीवन परिचय दिया गया है, उतने ही मूलसंघमें आचार्य नहीं हैं। अन्य भी कई आचार्य हुए हैं; परन्तु जिनका परिचय—उनकी कृतियाँ या अन्य आचार्योंने अपनी कृतिमें उनकी की गई महात्म्यताका वर्णन, उसके बलसे उन्हींका जीवन दिया है; परन्तु जिनका वर्णन नहीं मिलता है, उन्हें यहाँ नहीं लिया है।

अतः सभी सम्यक् रत्नत्रयधारक आचार्योंके जीवनको 'निश्चय-व्यवहार मोक्षमार्गके प्रणेतारूप' लक्ष्यमें लेकर, हम उन्हें अपने जीवनके आदर्श समझ अपना जीवन संवारे यही भावना है।

भगवान महावीर पश्चात् ६८३ वर्ष तककी परम्परा

भगवान महावीरस्वामीके निर्वाणकाल पश्चात् ३ वर्ष ८ महिने और १५ दिन तक चतुर्थकाल रहा। तत्पश्चात् वर्तमान पञ्चमकाल शुरू हुआ। तबहीसे दिगम्बर आचार्योंकी परंपरा गिनी जाती है। अर्थात् उसमें चतुर्थकालका उक्तकाल भी आ जाता है। उसे ही वीर निर्वाण संवत कहते हैं।

इस भांति यहाँसे भगवान महावीर पश्चात् कुन्दकुन्दाचार्यदेव तककी आचार्य परम्परा दिखाई जा रही है। तत्पश्चात् अन्य आचार्योंका जीवनचरित्र बताते समय उनका काल ही दिखाया जाएगा, क्योंकि कुन्दकुन्दाचार्यदेव पश्चात् ऐसी कोई स्पष्ट परम्परा जैन इतिहासमें नहीं मिलती है। इतिहासकारोंके अनुसार अंग-अंशका ज्ञान वी.नि. पश्चात् ६८३ वर्ष तक रहा। अतः यहाँ वी.नि. सं. ६८३ तककी परम्परा दिखाई है।

(१) तिलोयपण्णत्ति, (२) इन्द्रनन्दि श्रुतावतार, (३) श्रीधर कृत श्रुतावतार, (४) धवला टीका, (५) हरिवंशपुराण आदिमें आई मूलसंघके आचार्योंकी पट्टावलीयोंको ध्यानमें रखकर व लौकिक इतिहासकारोंनुसार जिस-तिस समयमें हुए राजाओंके समयके साथ मिलान करके यह पट्टावली विद्वानोंने तैयार की है।

(१) महावीर भगवानके पश्चात् आचार्यदेव अर्हद्बली तककी परम्परा मूलसंघ कही जाती है।

(२) आचार्यवर अर्हद्बलिके पश्चात् 'मूलसंघ'को विच्छेद कर 'नन्दि' आदि नये संघ शुरू हुए। उसमें आचार्य अर्हद्बलिके आचार्यकालका १० वर्ष तो मूलसंघमें रहा बाकीका १८ वर्ष नये संघमें रहा।

(३) वी.नि. पश्चात् ६८३ वर्ष तक अंग-अंशधारियोंकी परम्परा चलती रही तत्पश्चात् अस्त हो गई।

(४) आचार्य माघनन्दि प्रथम चार वर्ष नन्दिसंघके पट्ट पर रहे। तत्पश्चात् पदभ्रष्ट हो जानेसे पुनः नवीन दीक्षा धारणकर समाधिमरण तक ३५ वर्ष तक विद्यमान रहे।

(५) (आचार्य भूतबली व आचार्य यतिवृषभसे आगे उनकी परम्परा नहीं चलती है। मात्र भगवान कुंदकुंदाचार्यदेवकी ही परम्परा चलती है व उनके पश्चात् बहुधा सभी आचार्य स्वयंको उनकी परम्परामें रहनेमें ही अपना भाग्य समझते हैं।)

क्रम	नाम	अपरनाम	कुलवर्ष	वी.नि.सं.	समुदितकाल
१	गौतम	इन्द्रभूति गणधर	१२	०-१२	
२	सुधर्मा	लोहार्य-१	१२	१२-२४	
३	जम्बू		३८	२४-६२	भगवान महावीरस्वामी
४	विष्णु	नन्दि	२६	६२-८८	निर्वाण पश्चात्
५	नन्दिमित्र	नन्दि	२८	८८-११६	६२ वर्ष केवली
६	अपराजित		३४	११६-१५०	१०० वर्ष श्रुतकेवली
७	गोवर्धन		३०	१५०-१८०	१८३ वर्ष ११ अंग
८	भद्रबाहु (प्रथम)		४२	१८०-२२२	१० पूर्वधारी
९	विशाखाचार्य	विशाखदत्त	१०	२२२-२३२	२२० वर्ष ११ अंगधारी
१०	प्रोष्ठिल	चन्द्रगुप्त मौर्य	१९	२३२-२५१	११८ वर्ष १० से ८
११	क्षत्रिय		१७	२५१-२६८	अंगधारी
१२	जयसेन(प्रथम)		२१	२६८-२८९	६८३ वर्ष
१३	नागसेन		१८	२८९-३०७	
१४	सिद्धार्थ		१७	३०७-३२४	
१५	धृतषेण		१८	३२४-३४२	
१६	विजय	विजयसेन	१३	३४२-३५५	
१७	बुद्धिलिंग	बुद्धिल	२०	३५५-३७५	
१८	देव	गंगदेव, गंग	१४	३७५-३८९	
१९	धर्मसेन	धर्म, सुधर्म	१६	३८९-४०५	
२०	क्षत्र		१२	४०५-४१७	
२१	जयपाल	यशपाल	१३	४१७-४३०	
२२	पाण्डु		१२	४३०-४४२	
२३	ध्रुवसेन	द्रुमसेन	१२	४४२-४५४	
२४	कंस		१४	४५४-४६८	
२५	सुभद्र		६	४६८-४७४	
२६	यशोभद्र	अभय	१८	४७४-४९२	
२७	भद्रबाहु (द्वि.)	यशोबाहु जयबाहु	२३	४९२-५१५	
२८	लोहाचार्य-२	लौहार्य-२	५० सब की समकालिन	५१५-५६५	
२९	विनयदत्त		२०	५६५-५८५	१ अंगधारी
३०	श्रीदत्त नं १		२०	५६५-५८५	१ अंगधारी
३१	शिवदत्त		२०	५६५-५८५	१ अंगधारी
३२	अर्हदत्त		२०	५६५-५८५	१ अंगधारी

भगवान महावीरस्वामीकी आचार्य परम्परा

अंगांशधारीयोंकी परम्परामें

लोहाचार्य २(वी. नि. ५१५-५६५)

- गुणधर
  - —
  - —
  - आर्यमंक्षु (६००-६५०)
  - नागहस्ति (६२०-६८७)
  - यतिवृषभ (६५०-७००)
- अर्हद्बलि (वी. नि. ५६५-५९३)
  - धरसेन (५६५-६३३)
    - पुष्पदन्त (५९३-६३३)
    - भूतबली (५९३-६८३)
  - माघनन्दि (५९३-६१४)
    - नन्दिसंघ बलात्कारगण
    - जिनचन्द्र (६४५-६५४)
    - पद्मनन्दि (कुन्दकुन्द) (६५४-७०६)

(16)

भगवान श्री गौतमस्वामी

मंगलं भगवान् वीरो, मंगलं गौतमो गणी।
मंगलं कुन्दकुन्दार्यो, जैन धर्मोस्तु मंगलम्॥

हमारे प्रत्येक मंगलाचरणमें भगवान् महावीरके नामके पश्चात् यदि किसी का भी नाम लिया जाता है, तो वह 'गौतमस्वामी'का है।

निज आत्माकी साधनामें रत हमारे आचार्यवरके अलिप्तताकी यह देन है, कि उन्होंने स्वयंके बारेमें कहीं तनिक भी नहीं लिखा। फिर भी उनके पश्चात् होनेवाली आचार्यों परम्परासे जो कुछ भी आपके जीवन संबंधित जानकारी मिलती है, वह अति अल्प है। इसमें हमारा हतभाग्य ही कारण है।

गणधरदेव गौतमस्वामी, भगवान महावीरके प्रमुख शिष्य ही नहीं, अपितु भगवान महावीरके □ ११गणधरोंमें मुख्य गणधर थे। आपका नाम इन्द्रभूति था। आपके दो भाई अग्निभूति व वायुभूति भी भगवान महावीरके गणधर थे। आप १२ अंग (-समस्त श्रुतज्ञान)के ज्ञाता थे अर्थात् सम्यग्दर्शनपूर्वक मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान तथा मनःपर्ययज्ञानके धारी थे। बुद्धिलब्धि, औषधि-लब्धि आदि अनेक लब्धियाँ प्रगटी होने पर भी वे जानते थे, कि इन सब लब्धियोंसे आत्मानुभवरूप लब्धि कोई अचिंत्य महात्म्यवाली है और केवलज्ञानरूप लब्धिके सामने ये लब्धियाँ कुछ भी नहीं है।

प्रसिद्ध कथानुसार आपका जीव पूर्वभवोंमें भरतक्षेत्रमें आए काशी देशकी वाराणसी नगरीके राजा विश्वलोचनकी गुणशील, रूपवंत, पतिके प्रति अति स्नेह रखनेवाली नेत्र-विशाला नामक रानी था। किसी कारणवश उसका मन चंचलतासे भर आनेसे अपनी दो दासीयोंके साथ राजमहल आदिका त्याग कर काम-वांछासे लंपटतावश पर पुरुष रमणता करने हेतु गाँव-गाँव घूमने लगी तथा मांसाहार व मदिरापान तक करने लगी। ऐसे स्वेच्छाचारपूर्वक भ्रमण करती ये तीनों अवंती देशमें (उज्ञैनी नगरी) पहुँची। वहाँ अचल-ध्यानी-मौनी, शान्त, तप-संयमके धारी सम्यक्त्वरत्नत्रयधारी महातपस्वी मुनि भगवंतको आहार पर जाते देख,

□ भगवान महावीरके ११ गणधर :—१. इन्द्रभूति, २. अग्निभूति, ३. वायुभूति, ४. शुचिदत्त, ५.सुधर्म, ६. मांडव्य ७. मौर्यपुत्र, ८. अकंपन, ९. अचल, १०. मेवार्य, ११. प्रभास।

उनका बहुत अविनय किया। मुनि भगवंत अन्तराय जान जंगलमें चले गए। वहाँ रात्रिको तीनोंने मुनि भगवन्त पर विविध प्रकारके उपसर्ग किए। पर करुणामयी मुनिराज आत्मध्यानमें अचल रहे।

वे तीनों इस बुरे व अति घिनावने भावोंके फलमें गलित कुष्ट रोगी होती हुई पाँचवी नरकमें गई। १७ सागर तक वहाँ दुःखी होती हुई, वहाँसे निकलकर उन पापोंके फलमें अनुक्रमसे तीनोंने बिल्ली, शूकर (सुअरी), कूकर (कुत्ती), कुर्कट आदि भवोंको धारण किया। अतः ज्ञानी कहते हैं, कि जिनदेव, जिनशासन, जिनधर्म व जिनगुरुकी निंदा, उन पर उपसर्ग, परिषह आदिके भावोंका फल अत्यंत दुर्गति होनेसे उसे नहीं करना चाहिए। करना तो दूर रहा, पर ऐसा कराना या उसका मन, वचन या कायासे अनुमोदन तक भी नहीं करना चाहिए।

उन तीनों कुर्कटने अवन्ति देशके उज्ञैयनी नगरीके एक गाँवमें किसानके घर कन्याके रूपमें जन्म लिया। उनके जन्म होते ही किसानका धन-धान्य नाश हो गया। माता मर गई। पड़ोसी सब मर गए। ज्यों-ज्यों वे बड़ी होती गईं, त्यों-त्यों जहाँ वे जाती वहाँ सब गाँव ऊजड़ होते गए। कोई उन्हें रखना नहीं चाहता था। इस तरह वे भूखी, प्यासी भ्रमण करती पहुपपुर नगर पहुँची। वहाँ किसी विशुद्ध परिणामके फल स्वरूप उनको अवधिज्ञानी महा चारित्रके धारक मुनि भगवंतके दर्शन हुए। उन्हें उनका सत्-उपदेश सुननेको मिला। वहाँ अपने पूर्व भवोंका वृतांत सुनकर, किए पापोंके पश्चातापस्वरूप आँखोंसे अश्रु बह निकले। उन्होंने मुनि भगवन्तसे अपने भवदुःखसे मुक्तिका उपाय पूछा। मुनि भगवंतने द्रव्य-गुण-पर्याय, सात तत्त्व सहित सम्यग्दर्शन-सम्यग्ज्ञान व एकदेश-सकलदेश चारित्रका स्वरूप समझाया। बड़े रुचिपूर्वक मुनिभगवंतका उपदेश सुन उन्होंने अणुव्रत अंगीकार किए। अन्तमें समाधिमरण पूर्वक तीनों जीव पंचम स्वर्गमें गए।

वहाँ अवधिज्ञान द्वारा धर्मसे यह संपदा पाई जानकर देवगतिके भोगोंको भोगते हुए वहाँ देव-शास्त्र-गुरुके भक्तिमय जीवनको पूर्ण करके, मगध देशके द्विजपुर गांवके [1]काश्यप गोत्रीय ब्राह्मण पंडित शाडिल्लकी दो पत्नीयोंकी कोखसे तीनोंने पुत्रके रुपमें जन्म लिया। एकका नाम [1]गौतम, दूसरेका नाम [2]गर्ग व तीसरेका नाम [3]भार्गव रखा गया। तीनोंने अति

१. कहीं कहीं काश्यप गोत्रीयकी जगह गौतम गोत्रीय भी आता है।
२. कहीं कहीं गौतमकी जगह इन्द्रभूति नाम आता है।
३. कहीं कहीं गर्गकी जगह अग्निभूति नाम आता है।
४. कहीं कहीं भार्गवकी जगह वायुभूति नाम आता है।

अल्प आयुमें वेद-वेदांत, व श्रुति, स्मृति, काव्य, भाषा, तर्क आदिका ज्ञान पूर्ण कर, स्वयंके ५०० शिष्यों सहित गौतमग्राम (गुणावा ग्राम)में एक महाविद्यालय खोला। वहाँ वे लोगोंको अनेकान्त विद्यासे विरुद्ध एकान्त ज्ञानस्वरूप वेद-पुराणको पढ़ाने लगे।

उन्हीं दिनों वैशाली गणराज्यके कुण्डलपुर ग्राममें माता प्रियकारिणीकी कोखसे तीर्थंकरदेव महावीर प्रभुने जन्म लिया था। भगवान महावीरने उग्र शुक्लध्यानरूपी तप द्वारा, निज आत्माकी अत्यंत विशुद्धताकी श्रेणी आरूढ़ करके, चार घातिया कर्मोंको नाश करके, ऋजुकूला नदीके किनारे पर, ४२ वर्षकी उम्रमें, वैशाख शुक्ला १०को केवलज्ञान प्राप्त किया। इन्द्रने भगवानका ज्ञानकल्याणक महोत्सव बड़े धूम-धामसे मनाया। भगवान मौनरूपसे समवसरण सहित विहार करते-करते राजगृही नगरीके विपुलाचल पर्वत पर श्रावण कृष्णा-एकमको पधारे। केवलज्ञान होनेके पश्चात् ६६ दिन तक भगवानकी वाणी नहीं खिरी, परन्तु भव्यजीव चातक पक्षीकी भांति भगवानकी वाणीकी चाहमें वहीं बैठे रहे। तीर्थंकरके तीर्थ प्रवर्तनका योग ऐसा ही होता है, कि केवलज्ञान होने पर भगवानकी वाणी भव्योंके भाग्यवश खिरती है, फिर भी वाणी न खिरनेसे इन्द्रसे रहा नहीं गया। उसने अवधिज्ञानसे जाना, कि भगवानकी वाणी झिलने योग्य श्रोता नहीं है। अतः भगवानकी वाणी नहीं खिर रही है। उसने साथमें अवधिज्ञानसे यह भी जाना, कि ऐसा योग्य श्रोता और कोई नहीं परन्तु वेदपाठी गौतम ही है।

इन्द्रने गौतमको समवसरणमें लानेके लिए एक युक्ति रची। वह वामन ब्राह्मणका

गौतमकी सभामें इन्द्र

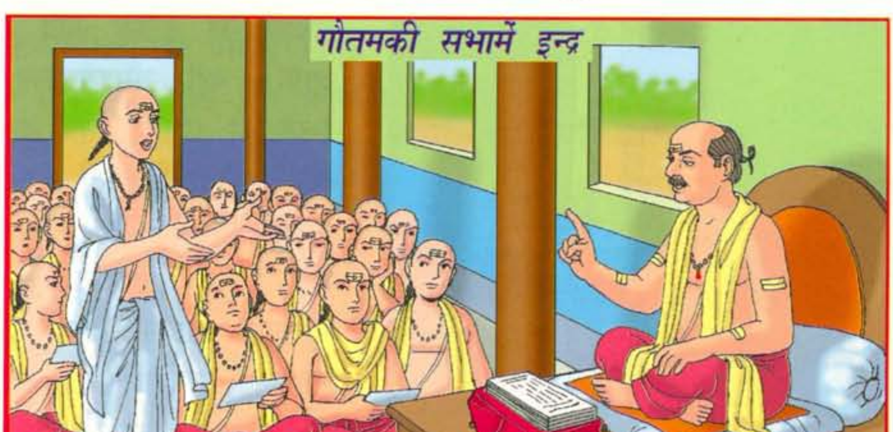

रूप बनाकर गौतमके महाविद्यालयमें गया। वहाँ जाकर उसने विनयपूर्वक कहा, कि 'मैं महावीरका शिष्य हूँ। मुझे एक श्लोकका अर्थ समझना है। मेरे गुरु फिलहाल मौनमें हैं। अतः मैं उसका अर्थ आपसे समझने आया हूँ।'

इस पर गौतमने बड़े प्रेमसे श्लोक पूछा। तब ब्राह्मणवेषधारी इन्द्रने कहा :—

(स्रग्धरा)

त्रैकाल्यं द्रव्यषट्कं नवपदसहितं जीवषट्-काय-लेश्याः।
पञ्चान्ये चास्तिकाया व्रत-समिति-गति-ज्ञान-चारित्रभेदाः॥
इत्येतन्मोक्षमूलं त्रिभुवनमहितैः प्रोक्तमर्हद्भिरीशैः।
प्रत्येति श्रद्दधाति स्पृशति च मतिमान् यः स वै शुद्धदृष्टिः॥

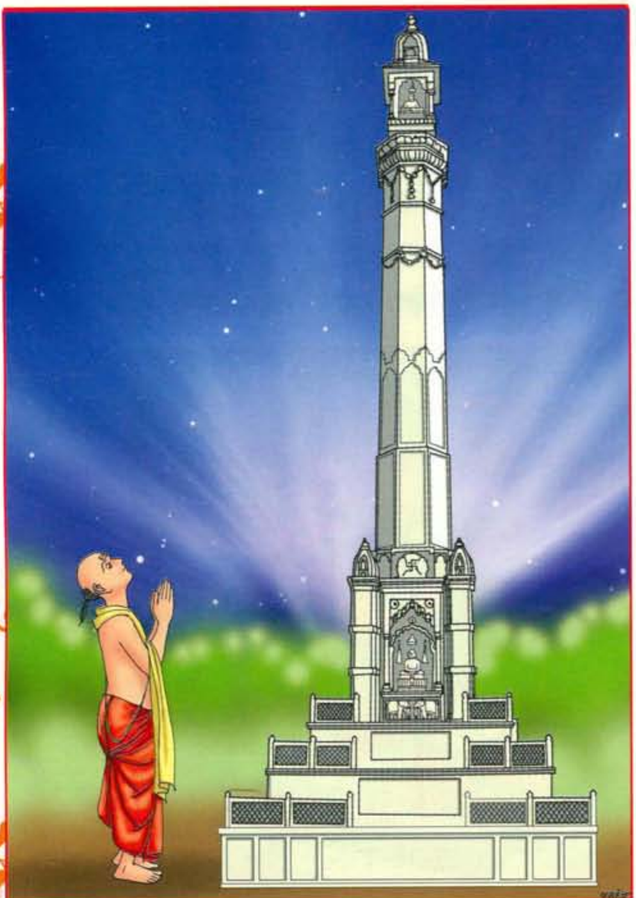

गौतमका मानस्तंभ दर्शन

उक्त काव्य सुनकर गौतम आश्चर्यान्वित होकर, श्लोकका अर्थ नहीं समझ पानेसे, उक्त वामनरूपी इन्द्रको शिष्य बनानेके चक्करमें, अभिमानसे उसने इन्द्रको कहा, इसका अर्थ तूं नहीं समझेगा, तेरे गुरु कहाँ हैं? वहीं चल, उनको ही समझाउँगा, कहकर वह इन्द्रके साथ समवसरणमें आया। वहाँ समवसरणका मानस्तंभ देखते ही उसका मान दूर हो गया और (गृहीत) मिथ्यात्व तक छूट गया। चातक पक्षीकी भाँति भगवानकी वाणी सुनने हेतु, भगवानकी महिमायुक्त भाववाही भक्ति करते हुए, उसने भगवानके समवसरणकी आठवीं भूमिमें प्रवेश किया। भगवानको देखकर उसे सर्वज्ञत्व व जीवके अस्तित्वकी श्रद्धा बृहद्रूपसे जम गई। उन्होंने वहीं सम्यक्त्वसहित संयमपना अंगीकृत किया। भगवानकी दिव्यध्वनि खिरी,

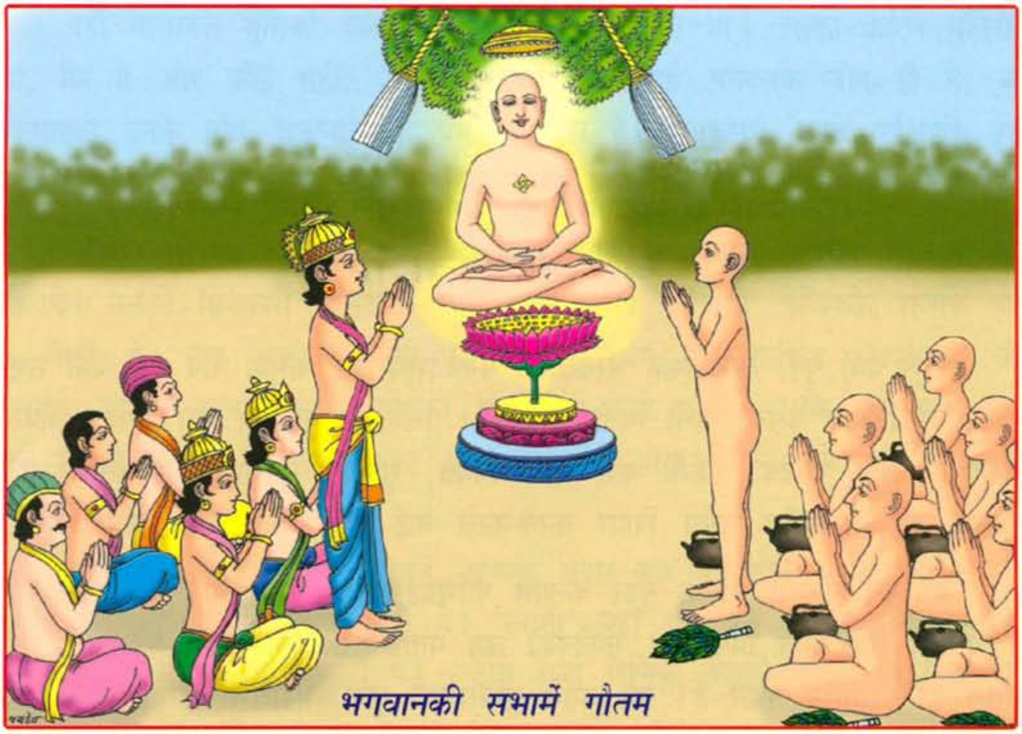

भगवानकी सभामें गौतम

जिसका वे रसपान करने लगे अर्थात् [1]श्रावण कृष्णा-१को समवसरणमें सभी भगवानकी दिव्यध्वनिका रसपान करने लगे।

इस तरह गौतमस्वामी, भगवान महावीरस्वामीके प्रमुख गणधर बने, बारह अंगोंकी रचना करके समस्तश्रुतको आगम निबद्ध किया तथा कार्तिक कृष्णा (गुज. आश्विन कृष्णा) अमावस्याके दिन—ही–जिस दिन भगवानका निर्वाण हुआ उस ही दिन—आपको केवलज्ञान हुआ। आपने गुणावानगरसे निर्वाण प्राप्त किया।

इस तरह गौतमस्वामी अपने परिणामोंके फलसे दुर्गतिमें भ्रमण करती नेत्र-विशाला कुलटा स्त्रीसे, अपने विशुद्ध भावोंसे उच्चगतिको पाकर, भगवान महावीरके प्रमुख गणधर बनकर, निर्वाणको प्राप्त कर, सिद्ध भगवान बन गए। यह ही बताता है, कि जीव कालके आधारित नहीं, वरन् अपने बुरे भावोंसे दुर्गति व भले भावोंसे सुगति प्राप्त करता है व आत्मशुद्धिके भावोंसे मोक्षको पाता है। अतः हमें भी अपने भावोंके फल विचारकर हितरूप भावमें लगना चाहिए।

आपका काल वी.नि. ०-१२ अर्थात् ई.स. पूर्व ५२७-५१५ है।

गणधरभगवान गौतमप्रभुको श्रद्धा व भक्तिभावसे कोटि-कोटि वंदन करते हैं।

---

१. यह घटना श्रावण कृष्णा-१ को घटी होनेसे उस दिन भगवान महावीरका प्रथम उपदेश प्राप्त होनेके कारण, उस दिनको 'वीरशासन जयंती'के रूपमें मनाया जाता है।

पञ्चमकालके प्रारंभमें हुए अन्तिम केवली भगवंत

श्री जम्बूस्वामी

बहुत वर्षों पूर्व, जम्बूद्वीपके भरतक्षेत्रके मगधदेशमें वृद्ध नामक गाँव था। वहाँ राष्ट्रकूट नामक एक वैश्य व उसकी पत्नी रेवती रहती थी। उनके दो पुत्र थे; बड़ा भगदत्त अपरनाम भावदेव व छोटा भवदेव। किसी कारणवश भगदत्त, सुस्थित मुनिराजसे भगवती जिनदीक्षा अंगीकार कर, गाँव-गाँव ससंघ विहार करते-करते कई वर्ष पश्चात् उसी गाँवमें पधारे।

भवदेवने नागश्री नामक सुंदर कन्यासे पाणिग्रहण कर लिया था। वह उसमें मोहित था। नागश्री उसे बहुत प्रिय थी। भवदेवको जब पता चला, कि उसके बड़े भाई भगदत्त मुनिराज इसी जंगलमें पधारे हैं। तब उसने मुनिराजकी पूजा, प्रदक्षिणा करके उनका उपदेश सुना। उनके उपदेशसे आर्द्र हुए परिणाम देख, मुनिराजने उसे मुनिधर्म अंगीकार करनेका उपदेश दिया। भवदेवका जीव नागश्रीमें अटका हुआ था, फिर भी भाईके उपदेशवश उन्होंने मुनिदीक्षा अंगीकार की, परंतु मनमें नागश्री बसी होनेसे वे भावलिंगरूप सम्यक् मुनि न बन सके। वे सभी मुनि भगवंत वर्षों पश्चात् उसी गाँवमें ससंघ पधारे। उस गाँवमें भवदेव मुनिने एक जिनमंदिरमें [१]सुव्रता आर्यिकासे जाकर नागश्रीके बारेमें जानना चाहा। सुव्रता अर्जिका उनके अन्तरके परिणाम समझकर, उनको उत्तम मुनिधर्म व उसकी गरिमा समझाने लगी। भवदेवने आदरसे सुव्रता आर्यिकासे सब धर्मचर्चा सुनी, अतः उन्होंने आर्द्र परिणामी हो, नागश्रीका मोह छोड़ वापस मुनिराजके पास आकर नई दीक्षा ग्रहण की।

तत्पश्चात् विशुद्ध परिणामी चारों प्रकारकी आराधना द्वारा भवदेवका जीव महेन्द्र स्वर्गमें सामानिक देव हुआ। भवदेवका जीव महेन्द्र स्वर्गसे चयकर वीतशोक नगरमें राजा महापद्म व उसकी पत्नी वनमालासे सम्यग्दृष्टि शिवकुमार नामक राजकुमार हुआ। अच्छे परिणामोंके फलस्वरूप वह कुमार साथीयोंके साथ क्रीड़ा करने नगरमें आ रहा था, वहाँ उसे मंत्रीसे ज्ञात हुआ, कि उपवनमें सागरदत्त मुनिराज पधारे हैं। यह सुन शिवकुमार उनके दर्शनार्थ गये।

---

१. भवदेवने दीक्षा ग्रहण कर ली है, ऐसा जान उसकी पत्नी नागश्री अर्जिकाके पास जाकर आर्यिका बन गई। दीक्षा पश्चात् अर्जिकाका नाम सुव्रता रखा गया।

वहाँ सागरदत्त मुनिको देख उन्हें सहज प्रेम आ रहा था। उसका कारण मुनिराजसे जाना, कि वे और कोई नहीं, उनके पूर्वभवके बड़े भाई भगदत्तके जीव ही हैं, अतः राजकुमारको उनके प्रति अनायास ही प्रेम आ रहा है। राजकुमार अपने पूर्वभवके वृत्तांत जान, मुनिराजसे दीक्षा ग्रहण करके कठिन तपके बल ब्रह्मस्वर्गके विद्युन्माली देव हुये।

भगवान महावीर स्वामीके कालमें ही राजा श्रेणिककी राजगृही नगरीमें अर्हदास नामक श्रेष्ठी थे। उनकी प्रियकारी जिनदासी नामा पत्नी थी। वे राजा श्रेणिकके राज्यके जाने-माने श्रेष्ठी थे। उन श्रेष्ठीकी पत्नी जिनदासीके गर्भमें विद्युन्मालीदेव (भवदेवका जीव) ब्रह्मस्वर्गसे चयकर आया। तभी माताको पांच शुभ स्वप्न आये। उसके फलस्वरूप माता-पिताने निर्णय किया, कि उनका यह पुत्र चरमशरीरी होगा। जन्म लेने पर उसका नाम जम्बूस्वामी रखा गया।

जंबूस्वामी दिन दूने रात चौगुने, पुण्यके भंडार सह बड़े होते गये। इसी भाँति वे नगरजनों व माता-पिताको प्रसन्न करते थे। 'स्वामी' जहाँ भी जाते अपनी बुद्धि, चातुर्य व यशोगान-प्रभासे सबको आनंद देते थे। उन्होंनें राजा श्रेणिक तकको प्रसन्न कर दिया था।

एकबार 'स्वामी' कुमार अवस्थामें थे। तब राजा श्रेणिक मुनिवंदना हेतु जंगलमें गए हुए थे। तब उनका मानीता(सम्मानिय) हाथी पागल हो गया था। सारा नगर उस पागल हाथीको देख सहम-सा गया था। तब बच्चोंके साथ खेलते हुए चुटकीमें 'स्वामी'ने हाथीको

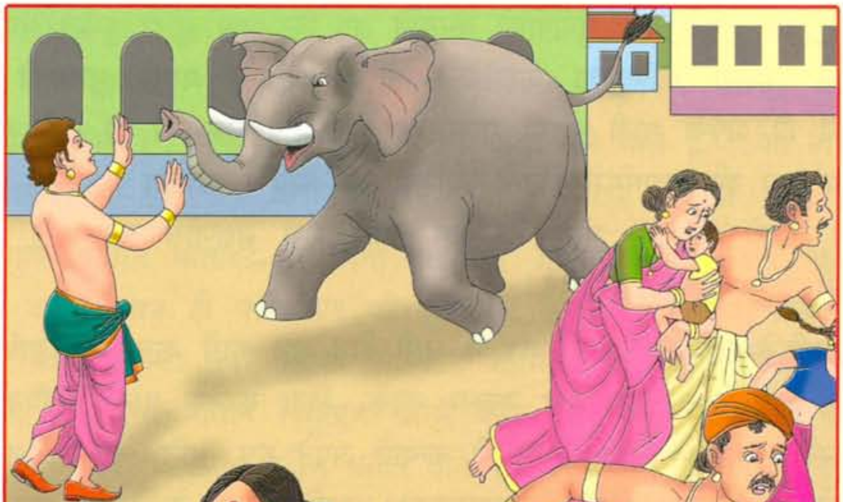

जम्बूस्वामी द्वारा पागल हाथीको वशीभूत करना

वशमें कर लिया और अपने घर पर लाये। माता-पिताको वंदन कर राजाके पास गये। राजा श्रेणिक 'स्वामी'के ऐसे कौतुकसे बहुत ही प्रसन्न हुए।

उसी भांति 'स्वामी'ने राजा श्रेणिकके बड़े मुश्किल लगते कार्य भी पूर्ण किये। एक बार एक विद्याधर राजाको भी हराकर राजा श्रेणिकको बहुत ही प्रसन्न किया। राजा श्रेणिक हमेशां उन्हें राजदरबारमें अर्धसिंहासन प्रदान करते थे।

उन्हीं दिनों इसी नगरके चार श्रेष्ठी अपनी-अपनी धनश्री, कनकश्री, विनयश्री व रूपश्री नामवाली रूपवंती-गुणवंती व उत्तम लक्षणोंवाली कन्याएँ जम्बूस्वामीको प्रदान करनेके हेतु आये। पिता अर्हदासने श्रेष्ठीओंकी बात पत्नीसे कही तो दोनोंने यह बात स्वीकार कर ली व जम्बूस्वामीके साथ चारों कन्याकी सगाई कर दी गई।

एकबार सुधर्मास्वामी महामुनिराजके पास धर्मश्रवण करते हुए सम्यग्दृष्टि 'स्वामी' ज्ञान-वैराग्यकी प्रचुरताको प्राप्त हुए। परंतु माता-पिताको 'स्वामी'के प्रति तीव्र मोहके वशीभूत जान स्वामीकी भगवती जिनदीक्षा लेनेकी भावना होने पर भी दीक्षा नहीं ले सके। उनका भावी प्रबल जान मुनिराजने उन्हें मात्र श्रावकके व्रतादि दिये। वे घरमें उदास रहते थे व राजदरबारमें धर्मप्रिय बातें करते थे।

वापस वैराग्यकी उग्रता होने पर 'स्वामी'ने भगवती जिनदीक्षाकी हठ ली। नगरजनोंको बहुत दुःख हुआ। अर्हदास श्रेष्ठीने चारों कन्याओंके यहाँ यह बात कहलवा दी। चारों श्रेष्ठी बहुत दुःखी चित्त अपनी चारों पुत्रीयोंको समझाने लगे कि अन्य सुन्दर युवान श्रेष्ठी राजकुंवर जैसे युवकसे तुम्हारा पाणिग्रहण करायेंगे—पर वे कुलवन्त घरकी गुणवन्ती कन्याओंने जम्बूस्वामीको ही अपना भावी स्वामी माना था। अतः वे एक की दो नहीं हुई। उन्होंने पितासे कहलवाया की 'स्वामी'से विनती कीजिये, कि मात्र पाणिग्रहण कर कल सुबह दीक्षा ग्रहण कर लें तो भी हमें मंजूर है। हम हमारे शुभ लक्षणोंसे तथा रूप व नयनोंके कटाक्षबाणोंसे उनके मनको हर लेंगे।

'स्वामी'ने यह स्वीकार किया। वे उसी दिन उन चारों कन्याओंसे पाणिग्रहण कर आये। आये हुए महेमानोंका योग्य सत्कार करके, विदा करनेके पश्चात् रात्रिको सुगन्धित शैया पर 'स्वामी' आये। पीछेसे चारों ही कन्याएँ अपने रूप, बुद्धि, नयनोंके कटाक्ष द्वारा, वचनसे ताने आदि देकर विविध श्रृंगाररसयुक्त कथादिसे एक के पश्चात् एक, स्वामीको रीझाने लगी। ज्ञान, वैराग्यकी तीक्ष्ण असिधारासे व रानीयों द्वारा कही गई श्रृंगाररसयुक्त कथाओंको स्वामीने बुद्धि व चातुर्यसे उन्हीं कथाओंको ज्ञान-वैराग्यरूप कथामें परिवर्तित करके

रानीयोंके सभी प्रयास निष्फल किये जिससे रानीयाँ भी स्वयं ज्ञान-वैराग्यवंत बनती गई।

योगानुयोग उसी रात्रिको अर्हदास श्रेष्ठीके घरसे धन चुराने हेतु, चोरी विद्यामें कुशल राजपुत्र–विद्युतप्रभ नामा चोर, उनके घर आया। उसने अदृश्य विद्यासे घरके दरवाजे खोल

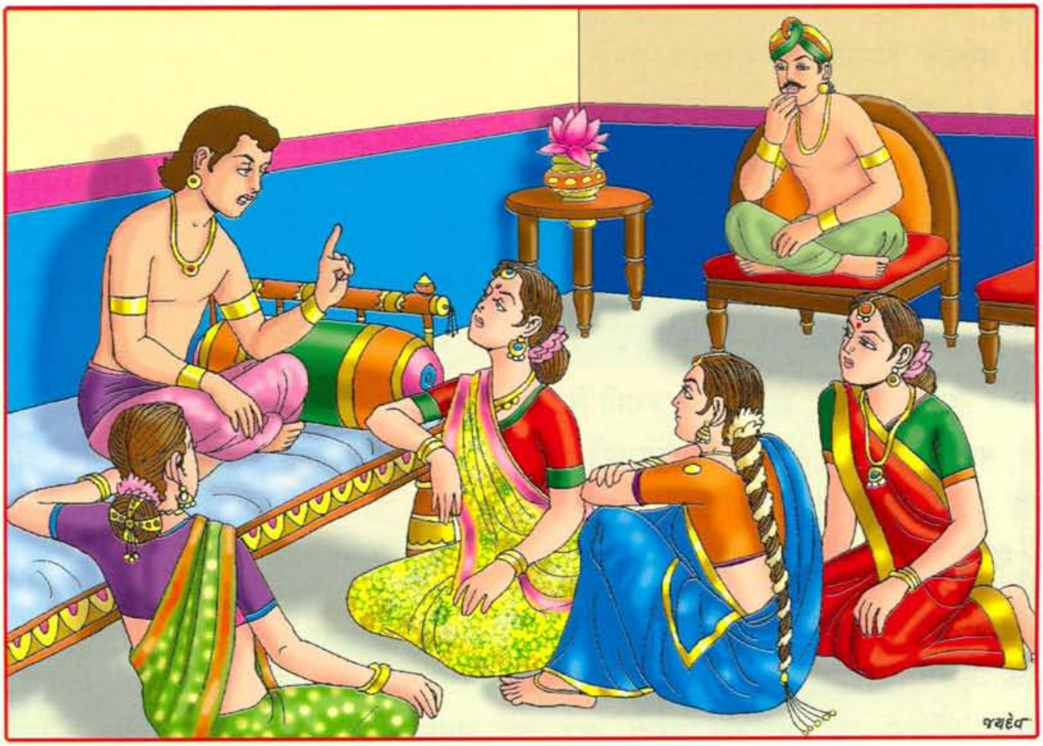

रात्रिमें जम्बूस्वामीके साथ उनकी चार रानियाँ व विद्युतप्रभ चोरका वार्तालाप

कर घरमें प्रवेश किया। ''सुबह होते ही 'स्वामी', दीक्षा लेने वाले हैं'' यह व्यथा माताको अन्दरोन्दर खाये जा रही थी। अतः वे ठीक तरह सो नहीं पा रही थी।

विद्युत्प्रभ चोरने माताकी यह व्यथा देख उसे अपना परिचय दिया। माताने अपनी सारी व्यथा कही। आज ही पाणिग्रहण की हुई चार कन्याएँ 'स्वामी'को सब भांति मना रही हैं, पर स्वामी उनकी सब बातोंको वैराग्य व शांतरसमें मग्न कर रानियों पर वैराग्यका रंग चढ़ा रहे हैं। अतः माताने विद्युत्प्रभ चोरसे कहा, कि 'आप बुद्धिशाली चोर होनेसे, किसीका मन चुरानेमें भी आप प्रवीण प्रतीत होते हैं। यदि आप 'स्वामी'को कुछ समझायें व इस भरे घरको चार चांद लगायें तो कितना सुन्दर हो। आपको जो धन चाहिए वह सभी ले लीजिए। धनभंडारकी चाबीयाँ तुम्हें देती हूँ। सभी धन तुम्हारा है। पुत्र बिनाके धनको धिक्कार है। पुत्र बिना इस धनका मैं क्या करूँगी'?

अपनी होनहार भली होनेसे, किसी भांति विद्युत्प्रभ चोरने इस बातको स्वीकार किया। माँ ने पुत्रके कक्षका दरवाजा खटखटाया। अनायास माँको आया जान 'स्वामी' आश्चर्यान्वित हुए, उन्होंने माँको कहा, कि 'आनेके बजाय मुझे बुला लिया होता तो मैं स्वयम् आ जाता!!' ऐसा कहते माँने विद्युत्प्रभका परिचय उसके 'दूरके मामा'के रूपमें देकर, तेरी भगवती जिनदीक्षाके समाचार सुन, तुझसे मिलने आये हैं, यदि स्वीकृति हो तो उन्हें भेज दूँ। माँके विनित शब्द समझकर 'स्वामी'ने माँको ढाढ़स बंधाते हुए बड़े विनयसे माँ व मामाके चरणस्पर्श किये। रानीयोंने भी उसी भाँति चरणस्पर्श किये।

चारों रानीयों सह विद्युत्प्रभने कई कथायें कहकर 'स्वामी'का मन हरनेका प्रयत्न किया। पर उलटा 'स्वामी'ने उन्हें विविध अन्य कथाओं द्वारा चारों पत्नीयों व विद्युत्प्रभके हृदयको ज्ञान-वैराग्यसे भर दिया।

इतनेमें सुबह हो गई। 'स्वामी'ने चारों पत्नीयाँ, विद्युत्प्रभ व उसके अनेक साथी तथा माता-पिता संग दीक्षा हेतु जंगलकी ओर प्रयाण किया। नगरवासी राजा श्रेणिक आदि सभी हृदयमें भगवती जिनदीक्षाकी अद्भुत महिमा सह 'स्वामी'को अश्रुसह विदा दी। कई तो उनके साथ मुनिदीक्षा लेने भी चल दिये।

सभी गौतमस्वामीके शिष्य सुधर्मास्वामीके पास पहुँचे व 'स्वामी' सहित विद्युत्प्रभ व उसके ५०० साथी तथा पिता आदि कुछ लोगोंने मुनिदीक्षा ग्रहण की। चारों पत्नीयाँ व माताने अर्जिका व्रत अंगीकार किया तथा कई नगरजनोंने श्रावकके व्रत अंगीकार किये।

जिस दिन गौतमस्वामीका निर्वाण हुआ। उसी दिन सुधर्मास्वामी केवली हुए। जम्बूस्वामी उनके प्रमुख शिष्य हुए। १२ वर्ष पश्चात् सुधर्मास्वामीने निर्वाण प्राप्त किया व जम्बूस्वामीको उसी दिन केवलज्ञान हुआ। अन्दाजित ४० वर्ष तक केवलीके रूपमें 'भव'नामके शिष्यको उपदेश देते हुए सम्मेदशिखरसे मथुरा तक विहार कर उन्होंने सत्यमार्गका प्रकाश किया। तत्पश्चात् वे मथुरासे मोक्ष पधारे।

आपका काल वी.नि. २४-६२ वर्ष (ई.स. पूर्व ५०३ से ई.स. पूर्व ४६५) तक माना जाता हैं, क्योंकि भगवान महावीरस्वामी पश्चात् ६२ वर्ष तक केवली भगवंत विद्यमान थे तथा आप अन्तिम केवली भगवंत थे।

अन्तिम केवली श्री जम्बूस्वामीको कोटि कोटि वंदन।

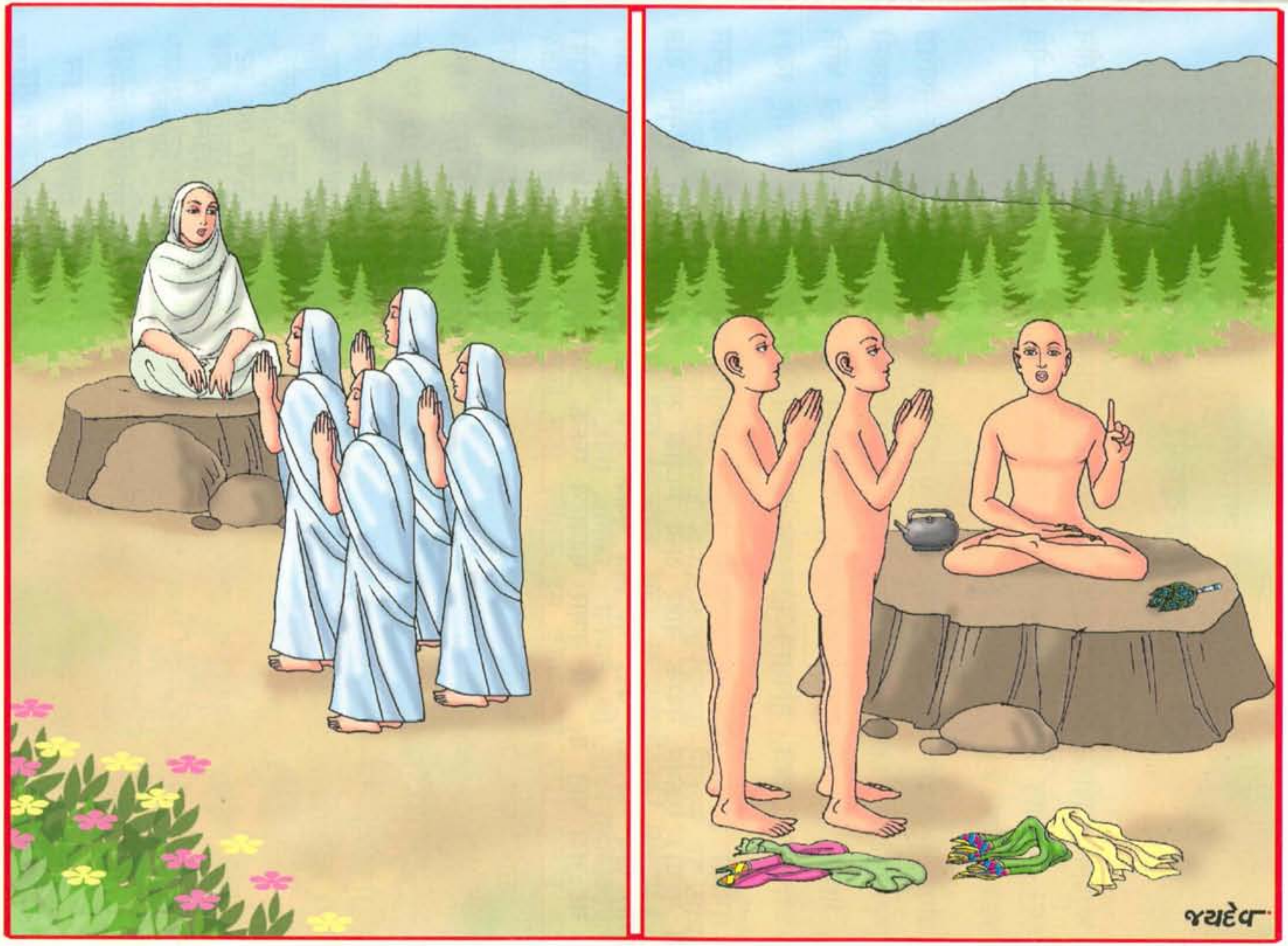

जम्बूस्वामी, विद्युत्प्रभ एवं चार रानियोंका दीक्षा ग्रहण

भगवान आचार्यदेव

श्री भद्रबाहुस्वामी (प्रथम)

भगवान महावीरके निर्वाण पश्चात् गौतमस्वामी, सुधर्मास्वामी व जम्बूस्वामी नामक तीन केवली हुए। तत्पश्चात् विष्णु, नन्दिमित्र, अपराजित, गोवर्धन तथा भद्रबाहु (प्रथम)—ऐसे पाँच श्रुतकेवली हुए हैं।

पाँचवे श्रुतकेवली भद्रबाहुस्वामीके बारेमें ऐसा माना जाता है, कि वे सुख-संपत्तिसे भरपूर पुण्ड्रवर्द्धनदेशके कोटपुर शहरमें पिता शशिशर्मा पुरोहित व माता सोमश्रीके भाग्यशाली पुत्र थे। आपके जन्म पर माता-पिताने उत्सव किया था। पुत्र बिलकुल कामकुमारकी भाँति तेजस्वी, देदीप्यमान, उन्नत, सुविशाल भालयुक्त था। माता-पिताने पुत्रका नाम भद्रबाहु रखा।

सभीको विनोद प्राप्त कराता हुआ बालक दिनोंदिन वृद्धिगत होता हुआ, कुमार अवस्थामें पहुँचा। एकबार नगरके बाहर अन्य मित्रोंके साथ वह बटा (गोल गेंदनुमा ठोस वस्तु–गोली) खेल रहा था। कोई भी मित्र एकके ऊपर एक बटे चढ़ाते-चढ़ाते मात्र तीन-चार ही बटे चढा पाते थे; वहाँ कुमार भद्रबाहुने एकके ऊपर एक ऐसे १४ बटे चढाये।

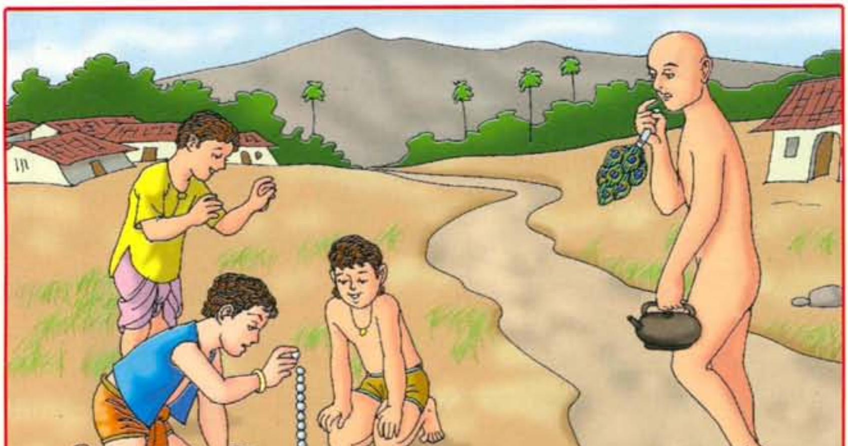

बालक भद्रबाहु द्वारा एकके ऊपर एक बटे चढ़ाना व आचार्य गोवर्धनस्वामीका बालकके इस कौतुक पर नजर पड़ना

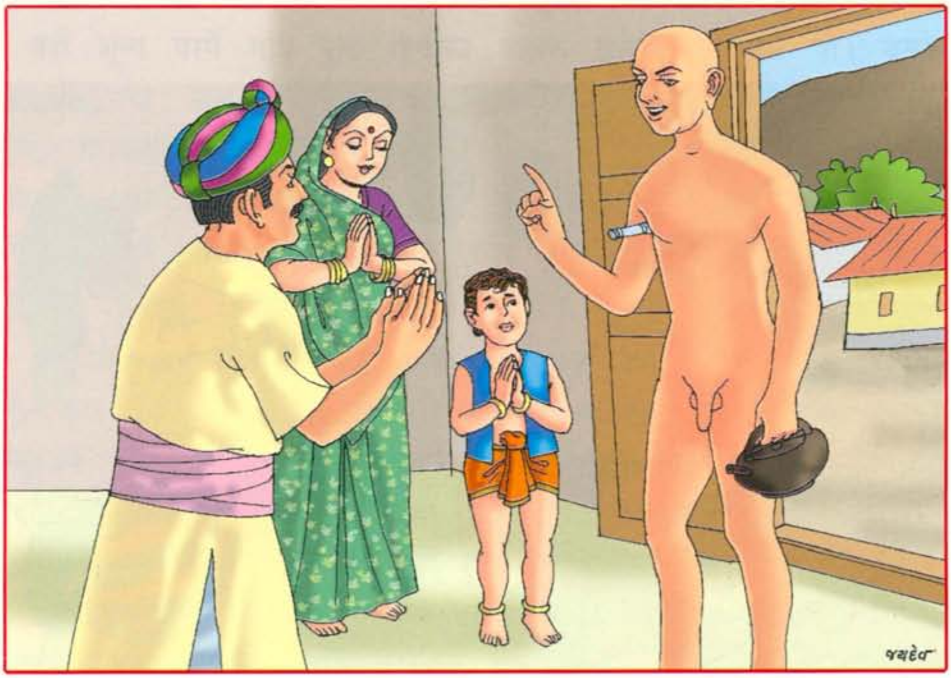

भद्रबाहुके माता-पिताके वहाँ आहारके समय माता-पिताके निवेदन पर आचार्य गोवर्धनस्वामी द्वारा भद्रबाहुके भावी श्रुतकेवलीत्वकी घोषणा।

उसी समय चातुर्मास शुरू होता जानकर, भगवान श्री गोवर्धनस्वामीआचार्य ससंघ उसी गाँवमें पधारे हुए थे। उनकी नजर कुमारके इस कौतुक पर पड़ी। उन्होंने यह कौतुक देख ज्ञानकी विशेष निर्मलतासे जाना, कि यह कुमार १४ पूर्वका ज्ञाता अंतिम श्रुतकेवली होगा। दूसरे दिन गोवर्धनस्वामी आहार हेतु शहरमें पधारे। भाग्योदयसे यह आहार भद्रबाहुके घर पर ही हुआ, पश्चात् माता-पिताके नम्र निवेदन करने पर आचार्य गोवर्धनस्वामीने बताया- कि 'भद्रबाहु होनहार श्रुतकेवली होगा'। नम्र भद्रबाहु चातुर्मास होनेसे रोजाना मुनिभगवंतके पास जंगलमें जाता व चंद दिनोंमें वह व्याकरण, गणित, न्याय व स्याद्वाद विद्यामें ऐसा तो पारंगत हो गया कि उसकी कीर्ति राजदरबार तक पहुँच गई। इतनी छोटी उम्रमें इतना ज्ञान जानकर राजाने भी प्रसन्न होकर उन्हें रोजाना राजदरबारमें आनेका निवेदन किया। एकबार राजदरबारमें जिनधर्म विरोधी कोई वादी वाद करने आया, उसको भद्रबाहुने चंद ठोस न्यायोंसे जिनधर्मकी यथार्थ प्रतीत करा दी।

युवावयमें माता-पिताने भद्रबाहुके विवाहकी बात रखी तब चतुर्गति भ्रमणसे भयभीत भद्रबाहु श्रुतकेवली गोवर्धनस्वामीसे भगवती दीक्षा धारण करके, निज आत्महितमें लग गए व द्वादशांगके ज्ञाता हो गए।

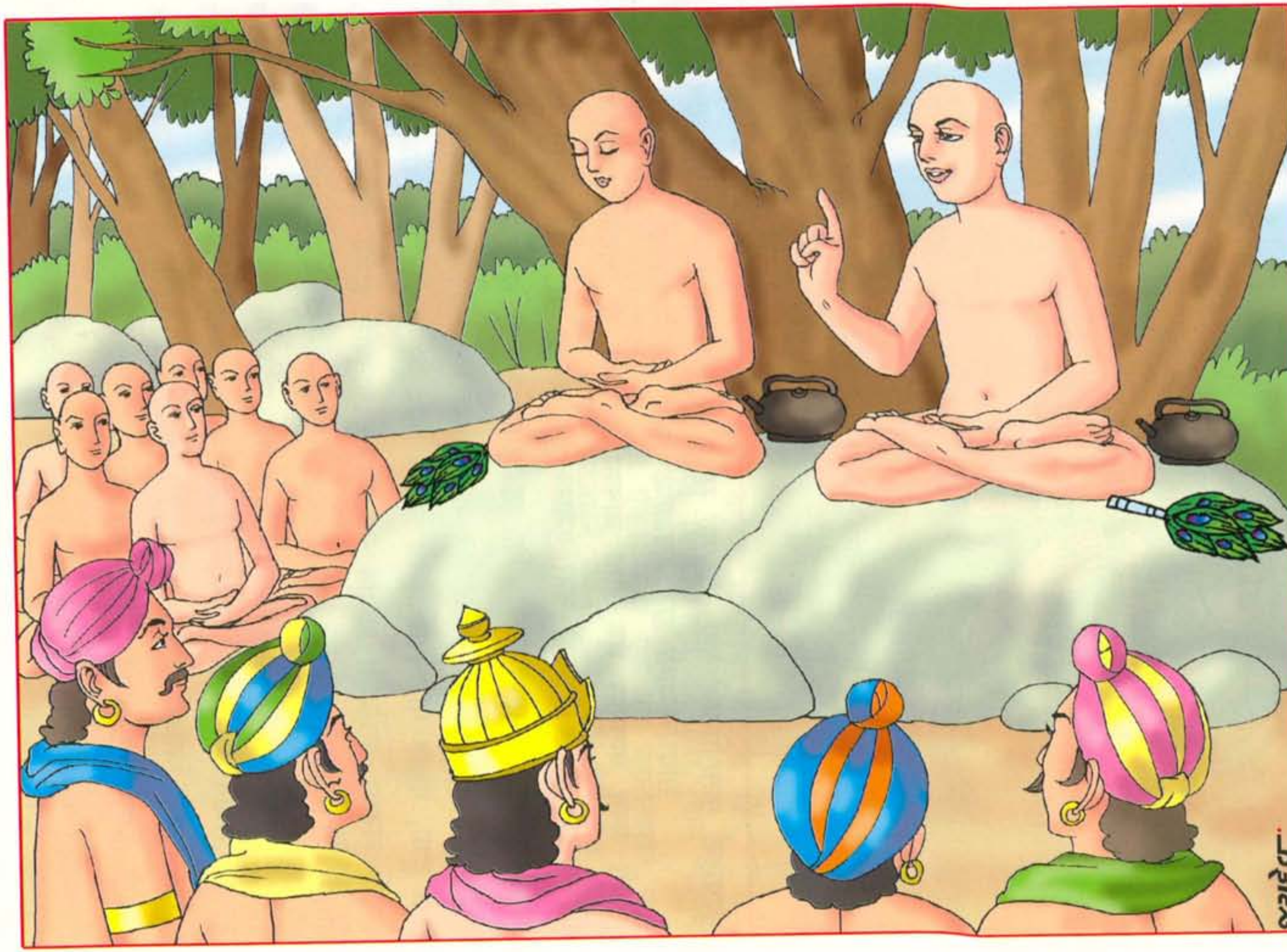

आचार्य गोवर्धनस्वामी द्वारा मुनिराज भद्रबाहुको आचार्यपदवी ।

एक दिन उज्जयनी नगरीमें भगवान भद्रबाहुस्वामी जिनदास शेठके घर आहार लेने पधारे, वहाँ शून्य घरमें मात्र कुछ दिनोंका बालक झूलेमें झूल रहा था। उसके मुँहसे अनायास ही 'गच्छ, गच्छ'—जैसी ध्वनिसा आचार्यदेवको महसूस हुआ। शिशुकी भाषा द्वारा व झूलेमें, बालककी बालसहज हाथ आदिकी क्रियासे ही आचार्यदेवने निमित्तज्ञानसे जाना, कि दक्षिणकी ओर १२ वर्षका दुर्भिक्ष नहीं होगा, पर उत्तरमें अति भयानक १२ वर्षका दुर्भिक्ष होगा। वे अन्तराय जानकर वहाँसे पलट गए। भद्रबाहु आचार्यने संघमें यह सब बातें बताकर इस ओर मुनिधर्मका निर्वाह न जानकर, दक्षिणकी ओर जानेका आदेश दिया।

यह जान सभी श्रेष्ठी श्रावक आचार्यदेवके पास आये, व उनसे अनुनय-विनय करने लगे और कहा, कि यहाँके श्रेष्ठी पूर्णरूपसे समृद्ध-धन-धान्ययुक्त हैं, जैनी या अन्य किसीको भी अकालमें बाधा नहीं होगी। १२ वर्ष तो देखते ही देखते पूरे हो जायेंगे; अन्यथा, विना मुनि भगवंतोके तो हमारा जीना ही दुष्कर हो जाएगा आदि अनेक प्रकारसे निवेदन किया। पर आचार्य भगवंत एकसे दो नहीं हुए। तब श्रावकोने संघके अन्य मुनीन्द्रोंसे अर्ज की तो स्थूलीभद्रादि कुछेक १२५०० मुनि उत्तर भारतमें रुक गये व [१]चन्द्रगुप्तादि १२५०० मुनि भगवंत भद्रबाहुस्वामीके साथ कर्णाटक देशकी ओर विहार कर गए।[२] इस तरह सद्गुरु—ऐसे महासमर्थ आचार्य भगवंतकी आज्ञा न स्वीकारनेके फलस्वरूप, उत्तरमें रहा संघ धीरे-धीरे शिथिलताकी ओर धसता गया व परिणामस्वरूप श्वेतांबर मतकी उत्पत्तिकी नींव बनता गया। अतः गुरुआज्ञाको अपने हितके लिए, विनयी आत्मार्थी जीवोंको अवश्य शिरोधार्य करना चाहिए। वर्तमानमें भद्रबाहुस्वामी व चंद्रगुप्त मुनि भगवंतकी समाधि श्रवणबेलगोलाके चंद्रगिरि पर्वत पर बनी हुई है।

कई इतिहासकारोंके मत अनुसार उक्त भद्रबाहु भगवंतके अलावा मूलसंघकी पट्टावली अनुसार नौ अंगके ज्ञाता दूसरे भद्रबाहु भगवंत हुए हैं जिनको, परम्परामें क्रमशः आचार्यदेव लोहाचार्य, अर्हद्बली, माघनन्दि, जिनचन्द्र व कुंदकुंददेवके गुरु बताये जाते हैं। भद्रबाहु स्वामी भगवंत(प्रथम) एक महान द्वादशांगके ज्ञाता, प्रखर प्रबुद्ध आचार्य हो गये हैं, जो उनकी आन्तरिक आत्मपरिणतिकी प्रचुर निर्मलताको सूचित करती है।

आपका काल ई.स. पूर्व ३९४-३६५ माना जाता है।

१२ अंग-१४ पूर्वके ज्ञाता प्रथम भद्रबाहुस्वामीको कोटि-कोटि वंदन।

---

१. भद्रबाहु आचार्य द्वारा जब राजा चंद्रगुप्तने निकृष्टकालके सम्बन्धमें जाना, तब उन्हें वैराग्य हो गया। अतः वहाँके मुकुटबंधी राजा चंद्रगुप्तने आचार्य भद्रबाहुजीसे भगवती जिनदीक्षा धारण कर ली।

२. कुछ इतिहासकारोंके मतानुसार उस समय उज्जैनमें १२००० मुनिभगवंतोंका संघ था उसमेंसे कुछ भाग वहाँ रहा व कुछ भाग दक्षिणकी ओर प्रस्थान कर गया।

भगवान आचार्य

श्री प्रौष्ठिल अपरनाम चन्द्रगुप्त (प्रथम)

भारतीय इतिहासके प्रकाशस्तंभ रूप मौर्यवंशके प्रथम सम्राट चन्द्रगुप्त(चन्द्रसे रक्षित)को ही माना जाता है।

आपके कौटुम्बीकजन, माता-पिता आदिके विषयमें विशेष जानकारी ज्ञात नहीं हुई है, फिर भी आप बचपनसे ही खेल खेलमें अन्य बच्चोंके साथ स्वयम् राजा बन अन्य बालकोंको उसका अनुचर बनाना, न्याय करना आदि खेल खेलते थे। इससे इतना स्पष्ट है, कि आप शत्रुओंको नष्ट करनेमें पटु वीर योद्धा थे। आप मोरियवंशके होनेसे 'चन्द्रगुप्त मौर्य' कहलाये। ये क्षत्रियकुलके थे, परंतु साथमें उनका जैन मतानुयायी होना भी इतिहाससे प्रतीत होता है।

आप चाणक्यकी मददसे पाटलिपुत्र (हाल पटना)के, पूर्व उत्तरवर्ती सीमान्त प्रदेशोंसे लगाकर अवन्तिपुर (हाल उज्जैन) तक फैले मगधराज्यके सम्राट बने थे। आपका शासनकाल बहुत ही ऐतिहासिक महत्त्व रखता था। आपने आपके समयमें वर्तमान एशियाके कई इलाकोंके साथ व युनान आदि देशोंके साथ भी संधि व्यापार चलाया था। आपने सम्राट सिकन्दर जैसोंके हृदयको झकझोर देनेवाले लडाकू राजा पुरु आदिके साथ मित्रता की थी।

इतना होनेके बावजूद भी जिनागम 'तिलोयपण्णत्ति' अनुसार जिन्होंने जिनेन्द्र भगवती मुनिदीक्षा धारण की, ऐसे आप अन्तिम मुकुटधारी राजा थे। आपके बाद कोई भी मुकुटधारी राजा दीक्षित नहीं हुए।

आपके समयमें इस हुण्डावसर्पिणीकालके पञ्चम श्रुतकेवली भद्रबाहु स्वामी (प्रथम) उज्ञैनी नगरीमें पधारे थे। वे आहार लेने नगरमें पधारे, उस समय एक सूने घरमें मात्र कुछ दिनोंके बच्चेकी अवाज व करतूतोंसे अपने अष्टांग निमित्तज्ञान द्वारा भगवान भद्रबाहु स्वामी (प्रथम)ने जाना, कि उत्तर भारतमें १२ वर्षका भीषण अकाल पड़ेगा, कि जिससे सारे मगधमें कहीं भी मुनिचर्या यथायोग्य नहीं चल सकेगी। अतः भद्रबाहुस्वामी अपने १२५०० मुनिराजोंके संघ सहित दक्षिणके समुद्रतटीय इलाकोंकी ओर विहार कर गये।

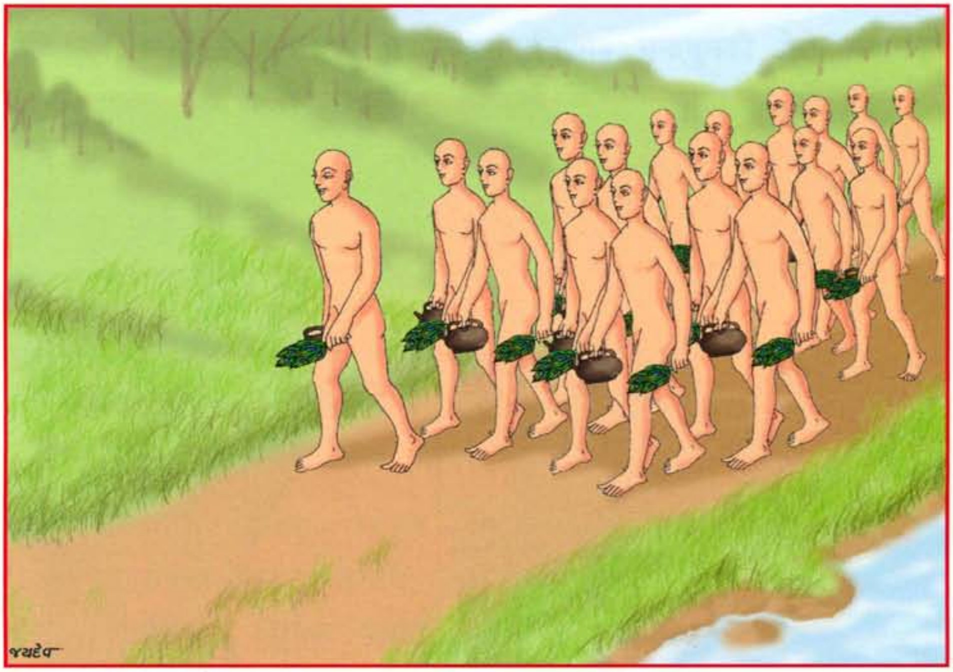

आचार्य भद्रबाहु(प्रथम)के साथ मुनिराज प्रौष्ठिल सह मुनिसंघका दक्षिणकी ओर विहार

उस समय सम्राट चन्द्रगुप्त भी भविष्यकी ऐसी दुर्दशा देख अत्यंत वैरागी हो, आचार्यदेव भद्रबाहुसे भगवती जिनदीक्षा (दीक्षा नाम प्रौष्ठिल) धारण करके, अपने गुरु भगवानके साथ ही दक्षिण पथकी ओर विहार कर गये।

रास्तेकी गहन अटवीमें आकाशवाणीके आधार पर भद्रबाहु स्वामीने अपनी आयु अल्प जान विशाखाचार्यको संघका भार सोंपकर उन्हें आगे दक्षिणदेश जानेका आदेश दिया। उस समय मुनिराज चन्द्रगुप्त अपने गुरुकी सेवामें वहीं रहे। वे जिस अटवीमें थे, वहाँ आहारकी विधि मिलना अत्यंत कठिन था। इतिहासकारोंके अनुसार उस समय, उस भयानक अटवीके व्यंतर देवताने प्रौष्ठिल—चन्द्रगुप्त मुनिके तपश्चर्याकी कई परीक्षाएँ की, जिससे कई दिनों तक आपको आहारका योग नहीं हुआ, फिर भी आप शान्तभावसे अपने आत्मध्यान–स्वाध्यायमें लीन रहे व अपने गुरुकी यथायोग्य वैयावृत्त्य करते रहे। आखिर एक दिन आपको आहारका योग मिल गया। तत्पश्चात् आचार्यश्री भद्रबाहुस्वामी (प्रथम)ने वहीं समाधि-मरण लिया। आप उनके चरण-चिह्नको आदर्श बनाकर वहीं महान तपश्चर्या करते रहे।

इतनेमें दुष्कालके १२ वर्ष पूर्ण हुए। विशाखाचार्यको ससंघ वापस पाटलीपुत्रकी ओर जाते समय, मार्गमें चन्द्रगुप्त मुनिराज मिले। मुनिराज चन्द्रगुप्तने आचार्यदेवकी यथायोग्य

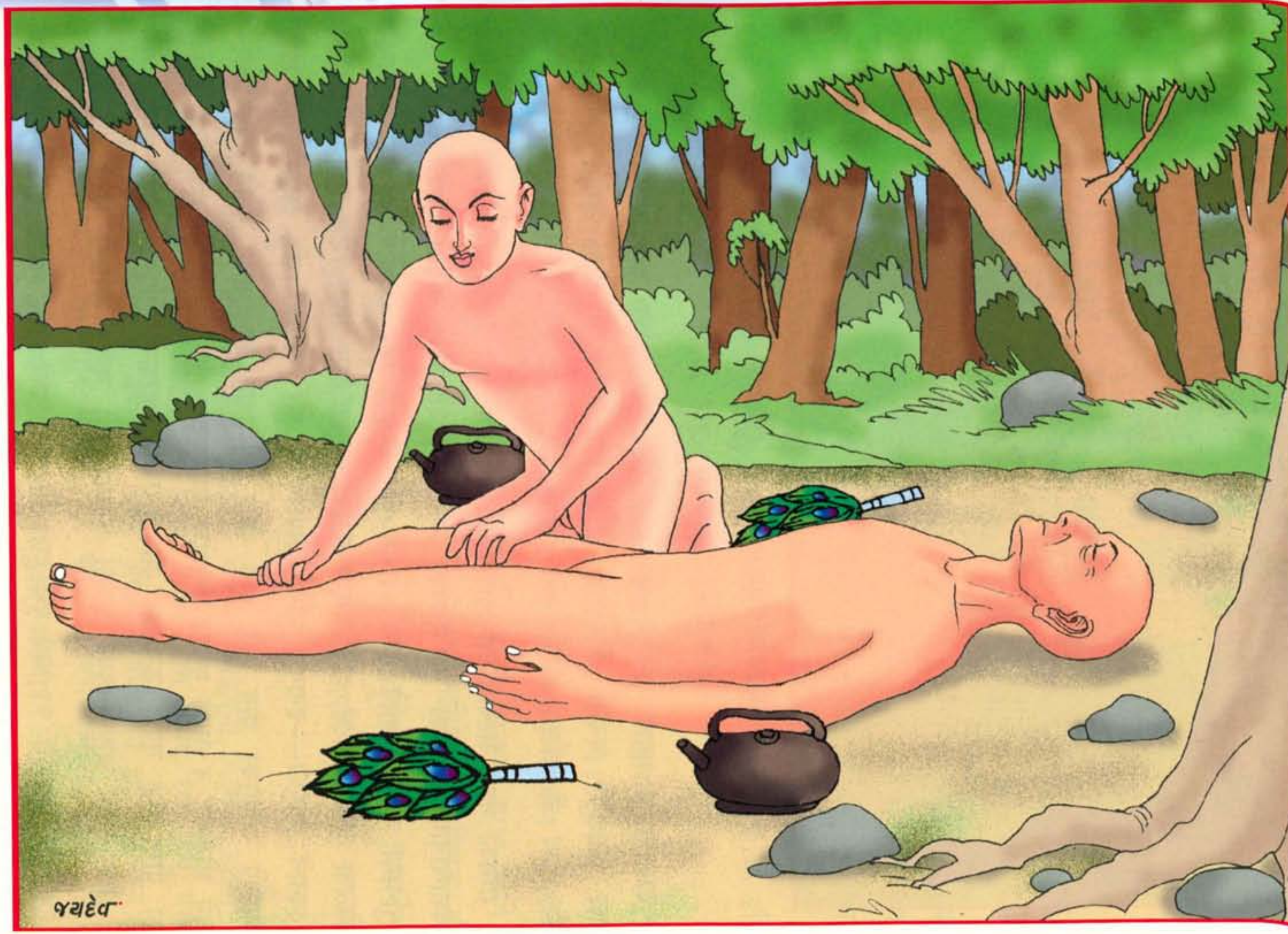

मुनिराज प्रोष्ठिल द्वारा आचार्य भद्रबाह (प्रथम)की वैयावृत्य

वंदना आदि की, परंतु विशाखाचार्य व संघके मुनिपुंगव चन्द्रगुप्तको ऐसे भयानक जंगलमें १२ वर्ष तक रहकर साधना व महाव्रतोंका पालन असम्भव समझ उनको भ्रष्ट मुनि समझ बैठे।

तत्पश्चात् चन्द समयमें ही आचार्यदेवको ज्ञात हो गया, कि चन्द्रगुप्त यहाँ यथार्थ कान्तार–चर्यासे महातपस्वीरूप रहे हैं–अतः संघके सामने आपके तपकी भूरी-भूरी प्रशंसा की।

तत्पश्चात् मुनिराज चन्द्रगुप्तको ज्ञात हुआ, कि जहाँ अटवीमें आहारका योग हुआ था, वह जिनमन्दिरों, श्रावक-श्राविकाओंसे सुशोभित नगरी नहीं, परंतु मात्र व्यंतरदेवकृत रचना थी, कि जो आपकी तपश्चर्यासे प्रसन्न होकर व्यंतरदेवने रची थी।

परंतु देव-रचना अर्थात् देवकृत आहार लेनेसे आपने स्वयं ही आचार्यवर विशाखाचार्यसे आलोचना कर केशलोच आदि द्वारा नवीन दीक्षा धारण की। उन्होंने भद्रबाहुस्वामीके देहपरिवर्तन करनेके पश्चात् करीब १२ वर्षतक निरन्तर तपश्चर्या करते हुए अन्तमें वहीं समाधिमरण अंगीकार किया। यह स्थान कोई और नहीं, पर वर्तमान 'श्रवणबेलगोल' ही है, जो उस समय भयानक अटवी था। वह जगह आज भी आचार्य भद्रबाहु (प्रथम) व मुनिराज चन्द्रगुप्त(प्रथम)की समाधिस्थलके रूपमें प्रसिद्ध है।

आपके समयमें कोई लेखित ग्रंथ रचना नहीं होती थी, इसलिए आपने कोई ग्रंथ रचना नहीं की। फिर भी आपकी महान तपश्चर्या व अकेले (अटूले) भयंकर बनमें १२ वर्षसे भी अधिक काल तक गुरुभक्तिमें संलग्नता ही, हम सबके लिये एक अनुकरणीय आदर्श है।

आपका दीक्षा नाम 'प्रौष्ठिल' व राज्यशासनका 'चन्द्रगुप्त' नाम–ऐसा प्रतीत होता है।

आपका काल ई.सन् पूर्व ३५५–३३६के बीच माना जाता है। कुछ लोगोंकी मान्यता ऐसी है, कि आप ही भगवान भद्रबाहु (प्रथम)के शिष्य विशाखाचार्य थे, परन्तु आपका जंगलमें गुरु-भक्तिसह रहना और ससंघ दक्षिण-पथकी ओर जाना, दोनोंका सुमेल नहीं होनेसे आप स्वयं विशाखाचार्य नहीं होंगे–ऐसा भी इतिहासकारोंका मानना है। जो कुछ भी हो आप एक महान गुरु-भक्त व हमारे लिए परम आदर्श तपस्वी थे, इसमें कोई विकल्प नहीं है।

महान गुरुभक्त प्रौष्ठिल आचार्यदेवको कोटि कोटि वंदन

भगवान मुनिवर

श्री 'चाणक्य' अपरनाम 'कौटिल्य'

विश्वके इतिहासमें भारतीय संस्कृतिके कूटनीतिज्ञ मंत्री चाणक्य एक महान अर्थशास्त्री थे। वे जन्मसे ब्राह्मण होनेके कारण वैदिक संस्कृतिमें जितनी ख्याति पा सके, उतनी ख्याति जैन संस्कृतिमें नहीं पा सके।

यद्यपि आप मूलतः कुलसे ब्राह्मण होने पर भी, माता-पिता जिनधर्मके संस्कारी होनेसे व वे मुनिवरोंका आदर-सन्मान देते होनेसे चाणक्यके अन्तरमें जैन मुनियोंके प्रति आदरकी भावना रही थी।' इतना ही नहीं उनके पिताको उसे जैन मुनि बनानेकी भावना थी। आपके समय तक श्वेताम्बर मत या अर्धफालक या यापनीय किसी भी मतकी उत्पत्ति नहीं हुई थी; मात्र एक ही सनातन दिगम्बर जिनधर्म ही जैनधर्मके रूपमें था।

कुटिल गोत्रीय होनेसे 'कौटिल्य' अथवा 'कौटिभ्व' व चणकका पुत्र होनेसे 'चाणक्य' नामसे आप प्रसिद्ध हुए। आपका जन्म चणक गांवमें हुआ था। आपके पिताका नाम चणक ब्राह्मण व माताका नाम चणेश्वरी था। आर्थिक दृष्टिसे आप गरीब परिवारके थे।

उनके क्षेत्रमें नन्दवंशका राज्य था। उस वंशका अन्तिम शासक धननंद था। उसके तीन मंत्रीयोंमेंसे उत्तम प्रबुद्ध मंत्री व उसके पारिवारिक लोगों पर भारी एवम् क्रूर अन्याय हुआ होनेसे, उस मंत्रीने किसी भी प्रकारसे नन्दवंशके नाशकी ठानी थी। उसके लिए योग्य व्यक्तिकी तलाशमें था। उस मन्त्रीने ब्राह्मण चाणक्यको निर्जन स्थानमें [१]दर्भके घासको जड़मूलसे काटते देख व चाणक्यके पाससे उसका कारण जानकर उसको ज्ञात हुआ, कि यह ब्राह्मण नन्दवंशको नाश करनेमें बहुत ही अच्छा सहायक होगा। अतः उस मन्त्रीने चाणक्यकी गरीबीका लाभ उठाकर, राजा नन्द द्वारा स्वयंके हुए घोर अपमानका बदला लेने हेतु एक युक्ति रची। मंत्रीका पूर्वमें जो भारी अपमान हुआ, उसका बदला नन्दवंशके नाशसे ही होगा ऐसा निर्णय कर उसने नन्द राजाके यहाँ चल रही गरीब ब्राह्मणोंको आहारदानकी सुविधाके सम्बन्धमें चाणक्यको बताया। चाणक्य वहाँ रोजाना आहार लेने जाने लगा।

मंत्रीने धीमे-धीमे स्वयंके गुप्त निर्णयसे बनाई हुई योजनाके अनुसार, पूर्वकी अपेक्षा

---

१. एक ऐसा कोमल घास उसके ऊपरका भाग शूलकी भांति पाँव आदिमें लगने पर दर्द करता है।

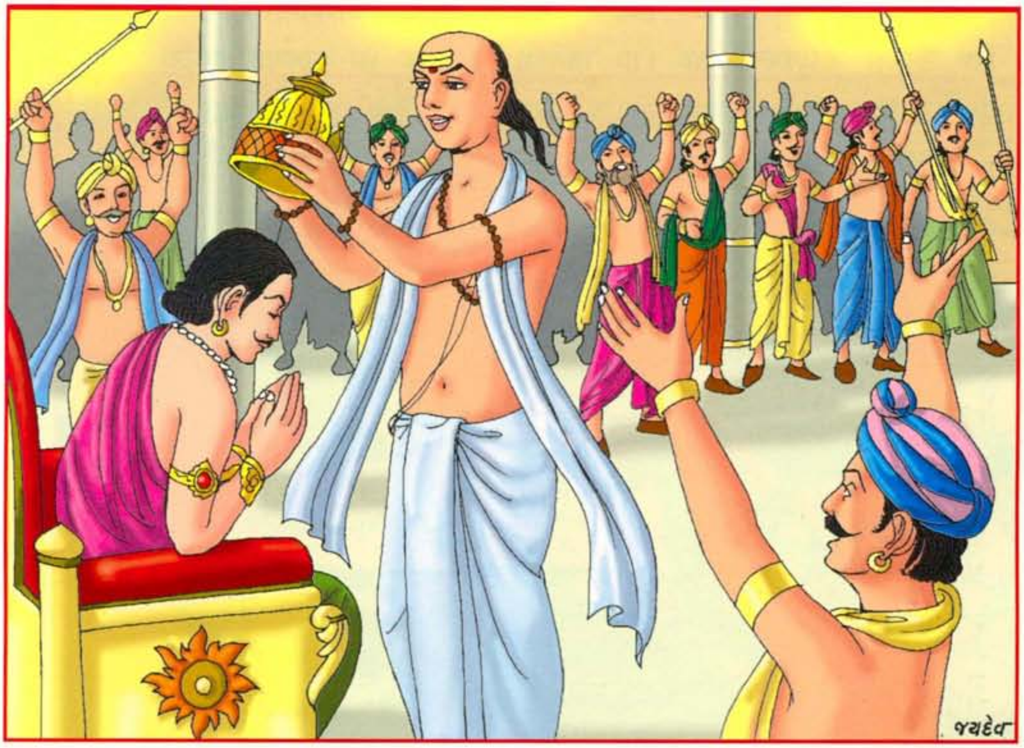

चाणक्य द्वारा चन्द्रगुप्तको मगधदेशका राजा बनाना

निम्नस्तर पर चाणक्यके लिए आहारसुविधाका प्रबन्ध हुआ है–ऐसा चाणक्यको बताया। जब चाणक्यने कारण जानना चाहा, तब उसने झूटमूठ कहा कि 'यह राजा नन्दका आदेश' है। उस पर प्रतिशोधकी ज्वालामें जलता हुआ, वह नन्द राजाके महलसे 'राजाके नाशके' शब्द ज़ोरसे चिल्लाते हुए जा रहा था; उसी समय नन्द राजाका असंतुष्ट वीर योद्धा 'चन्द्रगुप्त' भी उनके साथ चल पड़ा। चाणक्यने वीरयोद्धा चन्द्रगुप्तमें राज्यशासन चलानेके गुण पाकर उसे राजनीति, अर्थशास्त्र आदि सभीका अल्पसमयमें ज्ञान दिया। उन दोनोंने मगधराज्यके सीमान्त प्रदेशोंके राजाओंको इकट्ठा कर नन्दवंशका नाश किया। अन्ततः चन्द्रगुप्तको मगधदेशका राजा बनाया।

चाणक्यने जब जाना, कि उसका लक्ष्य नन्दवंशका जड़मूलसे हटाना था, कि जो संपूर्ण हो गया है, तब उसने अपने आन्तरिक कषायभावोंको उपशांत कर स्वयंको अध्यात्मके ढ़ाँचेमें ढ़ाल दिया। अन्ततः चाणक्यने अपने ५०० शिष्यों सहित भगवती जिनदीक्षा ली व कठोर तपश्चर्या करते हुए पाटलीपुत्रसे 'वनवास' होते हुए, महाकौञ्चपुरके एक गोकुल नामके स्थानमें ससंघ कायोत्सर्ग-मुद्रामें बैठ गये।

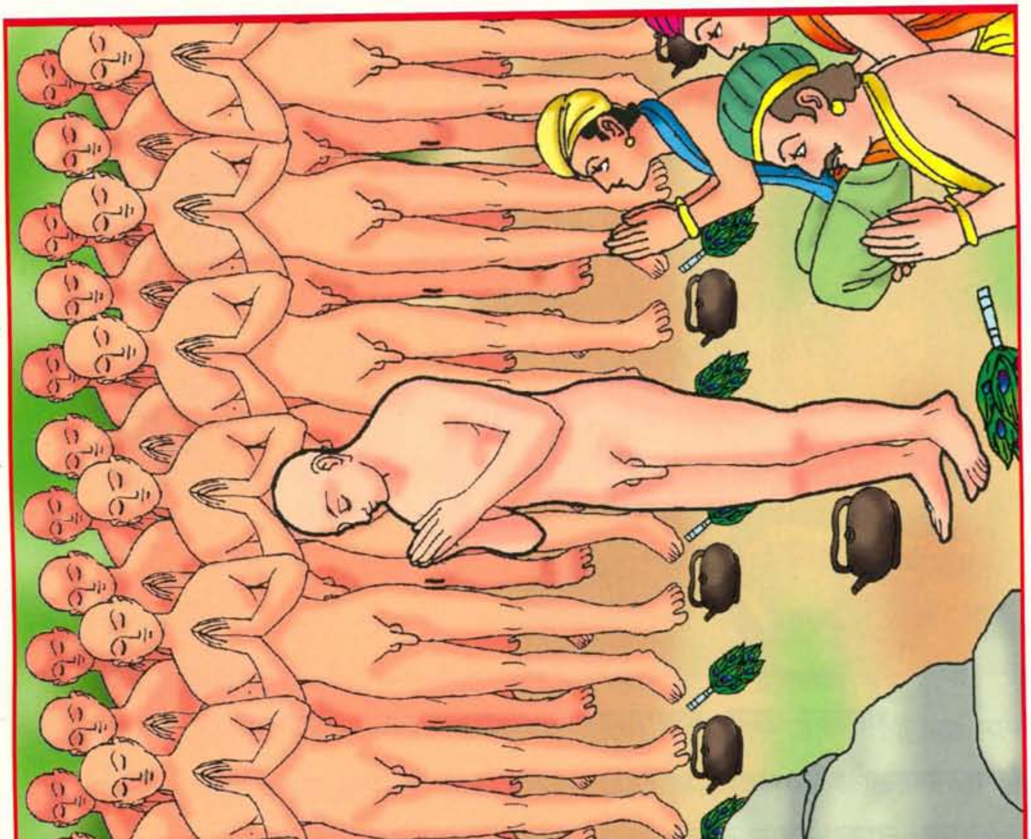

आचार्य द्वारा चाणक्यको भगवती जिनदीक्षा

उन्हीं दिनोंमें नन्दवंशका नाश होनेसे नन्दका अन्य सुबुद्धि मंत्री चाणक्यकी कुटनीतिज्ञताके कारण चाणक्य पर बहुत ही क्रोधित था। वह क्रौञ्चपुरके राजाके यहाँ मंत्री बना। कौञ्चपुरके राजाको ज्ञात हुआ, कि अपने राज्यके वनमें मुनिराज चाणक्य पधारे हैं

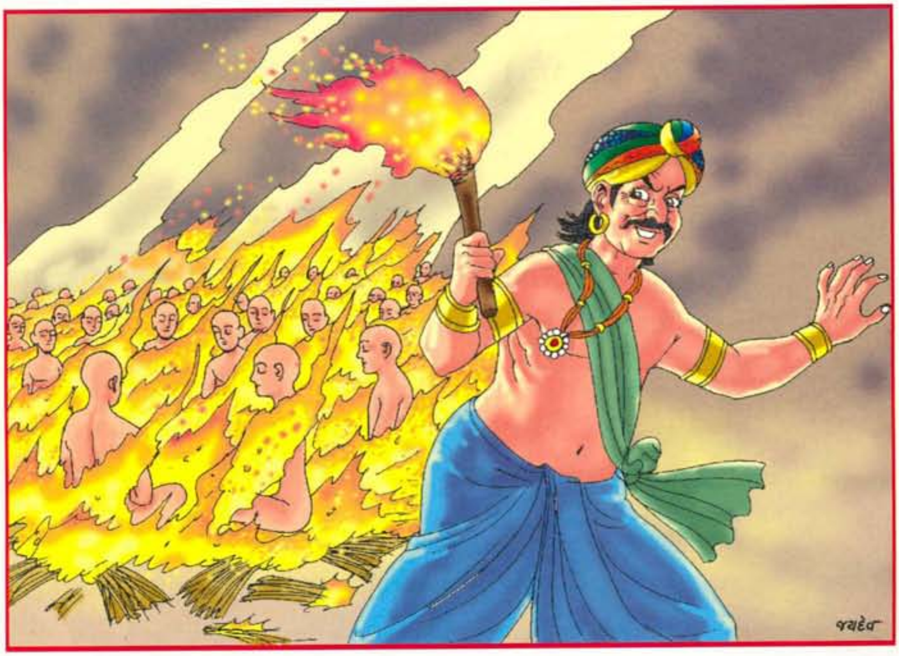

क्रौञ्चपुरमें सुबुद्धि मंत्री द्वारा मुनिराज चाणक्य सह मुनिसंघको आग लगाना।

व उसने मन्त्री सहित उनके दर्शनार्थ जानेका निर्णय किया। सुबुद्धि मन्त्रीने चाणक्यसे बदलेकी भावनासे कायोत्सर्गधारी मुनिराजको ससंघ घेर लिया व आग लगा दी। जिससे सभी मुनि-पुंगवका समाधिमरणयुक्त स्वर्गवास हो गया।

दिव्य कौञ्चपुरकी पश्चिम-दिशामें आज भी चाणक्य मुनिकी एक निषधा बनी हुई है। जहाँ कवि हरिषेणके समयमें साधुजन दर्शनार्थ जाते रहते थे।

आपने 'अर्थशास्त्र' नामक अपनेमें अद्भुत लौकिक सिद्धान्तोंकी रचना की। उस कालमें अध्यात्मविद्याका ज्ञान मौखिक ही होता था, लिखित नहीं। अतः आपने कोई ग्रंथ रचना नहीं की; फिर भी, जैन इतिहासमें वे पूर्वाश्रममें कुटिल राजनीतिज्ञ होनेपर भी, अन्तरसे इतने अलिप्त थे, कि कार्य समाप्त होने पर, तुरंत भावलिंगी संत बनकर घोर तपश्चर्या कर, समाधि-मरणयुक्त आत्म-साधनाका सुन्दर सन्मार्ग द्योतित कर मुमुक्षुओंके आदर्श बन गये।

आपका काल आचार्य चन्द्रगुप्तके समकालिन मान आप ई.स. पूर्व ३५५से ई.स. पूर्व ३३६ के मुनिपुंगव होने चाहिए। आपको कोटि कोटि वंदन।

भगवान आचार्यदेव

श्री भद्रबाहु (द्वितीय) तथा चन्द्रगुप्त (द्वितीय)

भगवान आचार्य भद्रबाहु (द्वितीय) इस कालके अंतिम ९ अंगके ज्ञाता आचार्य भगवंत थे। उनके पश्चात् कोई भी आचार्य इतने ज्ञाता नहीं हुए।

आपके कुल-परिवारके बारेमें कहीं जानकारी नहीं मिलती। भगवान महावीरके पश्चात् आप तक करीब २६, ज्ञानध्यानमें धुरंधर आचार्य हुए, पर कतिपय आचार्योंके अलावा अन्य किसीके भी कुल-परिवारके बारेमें ज्ञात नहीं होता। मात्र आपका नाम आचार्य इन्द्रनन्दि कृत मूलसंघकी पट्टावलियोंमें प्राप्त होनेसे ज्ञात होता है। आचार्य भद्रबाहुका नाम, काल व सम्बन्ध राजा चन्द्रगुप्त(द्वितीय)से मिलान होता होनेसे आपके बारेमें यथातथा जानकारी मिलती है।

मौर्यवंशके प्रथम सम्राट , चन्द्रगुप्त (प्रथम)के वंशमें ही राजा चन्द्रगुप्त (द्वितीय) अपरनाम संप्रति हुए। वे अपने प्रौढ वयमें राजसिंहासन पर आसन्न हुए थे। उनकी बुद्धि जिनधर्मके प्रति अति पिपासु थी। वे निरन्तर मुनि भगवन्तोंको आहारदान देने तत्पर रहते थे।

राजा चंद्रगुप्त (द्वितीय)को एक रात्रिके अंतिम प्रहरमें १६ स्वप्न आये थे। वे उनका फल जाननेको उत्सुक थे। भगवान भद्रबाहुस्वामी (द्वितीय)का उधर विहार होने पर राजा चन्द्रगुप्त (द्वितीय)ने उन १६ स्वप्नोंके फल पूछने पर अष्टांग निमित्तज्ञानी आचार्य भद्रबाहु (द्वितीय)ने निम्नरूपसे फलका वर्णन किया था।

- स्वप्न १ : 'सूर्यास्त'का फल : अब इस पंचमकालमें भरतक्षेत्रसे केवलज्ञान सूर्यका अस्त हो जायेगा।
- स्वप्न २ 'कल्पवृक्षकी भग्न शाखा'का फल : राजा बुरे उद्देश्यसे संपत्तिका संग्रह करेंगे। राज्यको छोड़कर वे तपको कुछ भी नहीं समझेंगे। परायी लक्ष्मीके संग्रह (अर्थात् छीना-झपटी)में लगे रहेंगे।

  (यह उत्सर्ग वर्णन समझना चाहिये, क्योंकि आचार्यवर समन्तभद्रके शिष्य बनारसके राजा ही थे, जिन्होंने तप (भगवती जिन दीक्षा) धारण की थी। ऐसे तो उदाहरण जिनागममें और भी उपलब्ध हैं।)

महाराजा चन्द्रगुप्त (द्वितीय)को १६ स्वप्न आना

✿ स्वप्न ३ : 'नभरूपी आँगनमें उलटे हुए इन्द्र विमान'का फल : इस पंचमकालमें यहाँ चारण-ऋद्धिधारी मुनि नहीं आयेंगे। कल्पवासी देवोंका भी आगमन निषिद्ध रहेगा।

(इसको भी उत्सर्ग कथन समझना चाहिए, क्योंकि कुंदकुंदाचार्यदेव चारणऋद्धिके बल विदेहक्षेत्रमें सीमंधर स्वामीके दर्शनार्थ हेतु गये व वापस आये थे। वैसा ही कुछ पूज्यपादस्वामीके बारेमें भी गिना जाता है।)

✿ स्वप्न ४ : '१२ फणवाले सर्प'का फल : १२ वर्षका मगधमें अकाल।

(यह इतिहासके अनुसार योग्य प्रतीत नहीं होता है, क्योंकि १२ वर्षका अकाल करीब ३०० वर्ष पूर्व हुआ था। या इसका संकेत यह हो सकता है, कि भविष्यमें किसी समय ऐसी स्थिति हो।)

✿ स्वप्न ५ : 'चन्द्रमण्डलमें भेद'का फल : लोकमें मुनि और जिनदर्शन (जिनमत)का भेद होगा।

(लोकका अर्थ तीन लोक न समझ, मात्र इस कालमें यहाँ भरतक्षेत्र मात्रको ही लोकके रूपमें समझना चाहिए।)

✿ स्वप्न ६ : 'जूझते हुए काले हाथीयों'का फल : मेघ यहाँ समयसर व पूर्ण प्रमाणमें नहीं बरसेंगे। वज्राग्नि (बिजली-शिखा) पृथ्वीमण्ड़लको नष्ट करेगी। अतः लोग पानीके लिए झझूमते रहेंगे।

✿ स्वप्न ७ : 'खद्योतों'का फल : शुभकर्मको (वीतराग शासनको) प्रकट करनेवाले आगमके पदोंको मुखमें धारण करनेवाले साधु बहुत कम होंगे।

✿ स्वप्न ८ : 'सरोवरके मध्यमें सूखा'का फल : मध्यदेशमें धर्मका नाश होगा।

✿ स्वप्न ९ : 'धूमदर्शन'का फल : दुर्जन-जन घर-घरमें दोषोंको ग्रहण करनेवाली कथाएँ करनेवाले होंगे।

✿ स्वप्न १० : 'सिंहासन पर स्थित वनचर'का फल : भविष्यमें अकुलीन राजा होंगे। विशुद्ध कुलवाले जीव नीच, अकुलीन राजाओंकी सेवा करेंगे व उन्हींकी कृपासे अपना उदर भरेंगे।

✿ स्वप्न ११ : 'बड़े-बड़े जंगली कुत्तोंको स्वर्णथालमें क्षीर खाते हुए' का फल : कुलिंग साधु राजाओं द्वारा पूजे जाएँगे व लोग उन्हींके वचनोंका यत्नपूर्वक पालन करेंगे।

✿ स्वप्न १२ : 'हाथी पर आरूढ़ बंदर'का फल : महाऋद्धिवाले अर्थात् महाऋद्धिवंत और पुरुषार्थवालों द्वारा हीन अकुलीनजनोंकी सेवा की जायगी।

✿ स्वप्न १३ : 'कुड़ेमें उत्पन्न कमल'का फल : परिग्रह सहित मुनि होंगे।

(यह भी सामान्यकथन प्रतीत होता है, क्योंकि इस घटनाके पश्चात् भगवान कुंदकुंदाचार्यादि कई निष्परिग्रही मुनि हुए और पञ्चमकालके अन्त तक होंगे।)

✿ स्वप्न १४ : 'मर्यादा त्याग करता समुद्र'का फल : शासक लोग अधिक कर (टेक्स) वसूल करेंगे।

✿ स्वप्न १५ : 'बालवृषभ द्वारा उत्तम रथकी धुरा चलाते हुए'का फल : कुमार संयमके भार वहन करेंगे। (इस फलमें क्या कहना चाहते है, वह अस्पष्ट है।)

✿ स्वप्न १६ : 'तरूण बैलों पर आरूढ़ अतुल शक्तिशाली क्षत्रिय'का फल : क्षत्रिय कुधर्मके अनुरागी होंगे। इस स्वप्नसे संकेत मिलता है, कि अब काल कुधर्मकी विशेषतावाला आयेगा।

राजाने स्वप्नके ऐसे फल जानकर, इस पञ्चमकालको संसारको अति धर्म विरुद्ध जानकर, संसारसे विरक्त हो, पुत्रको राज्य दे भगवान भद्रबाहु (द्वितीय)से भगवती जिनदीक्षा धारण की व घोर तप किया।

आप दोनोंके समयमें अध्यात्मविद्याका प्रवाह मौखिक ही था। लिखितरूपमें ग्रंथ बनानेकी कोई आवश्यकता नहीं थी। अतः आप दोनोंने कोई शास्त्ररचना नहीं की है, फिर भी आप अपने कालमें महान समर्थ मुनि भगवंत होनेसे आपका स्थान जैन इतिहासमें अमिट हैं।

आपके जीवनपटलसे हमें ज्ञात होता है, कि जीवनमें सम्यक्रत्नत्रय धर्म ही ग्रहण करनेयोग्य है।

आचार्य श्री कुंदकुंददेवने आपको अपना 'गमकगुरु' के रूपमें बताया है।

आपका काल ई.स. पू. ३५ से १२के बीच रहा है।

आचार्य भद्रबाहु (द्वितीय) व मुनिवर चंद्रगुप्त (द्वितीय)को कोटि कोटि वंदना।

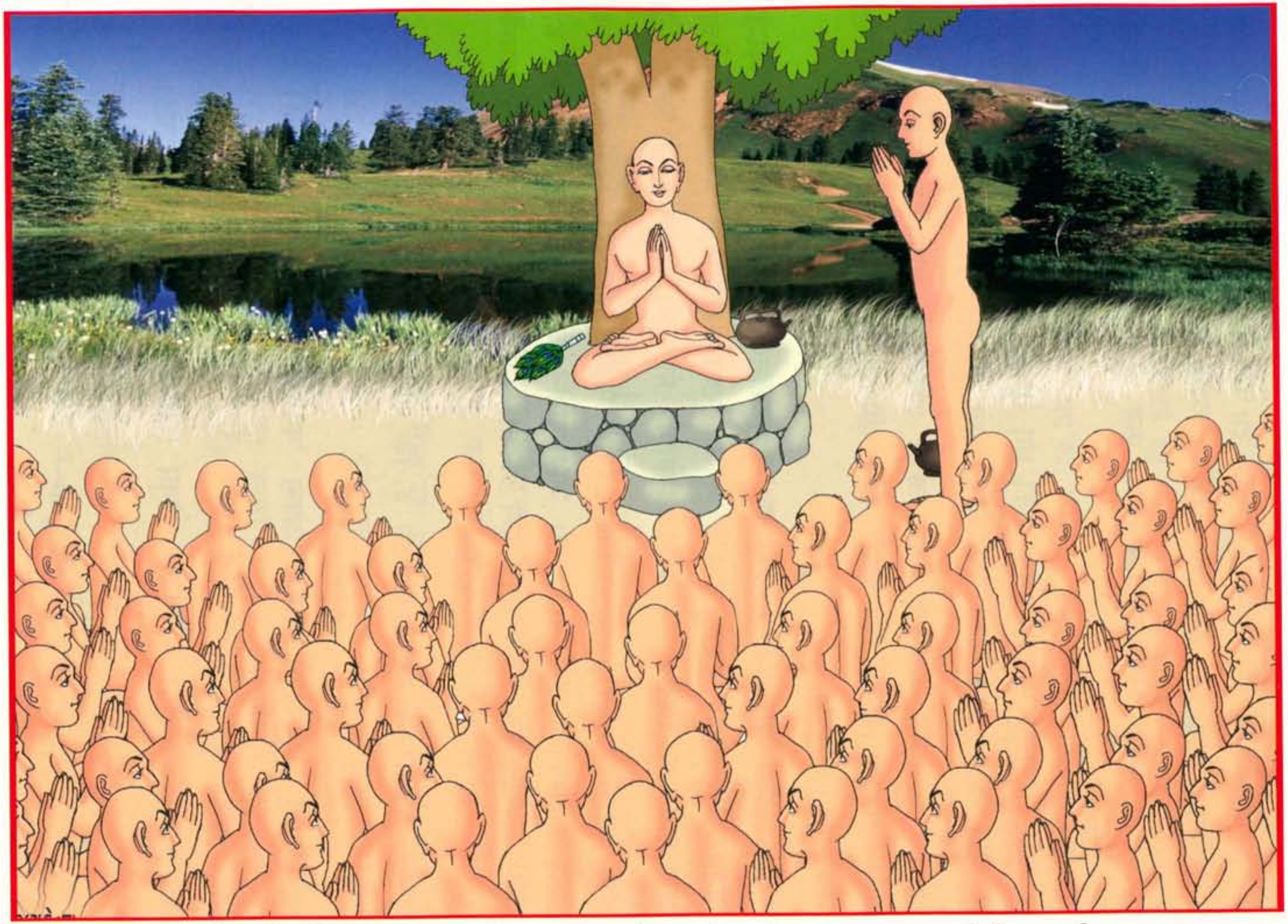

आचार्य अर्हद्बलि द्वारा युग-प्रतिक्रमणके यति सम्मेलनमें गुणधर आचार्यान्वी समर्थ
मुनिराजको गुणधर संघका आचार्य बनाना

भगवान
श्री गुणधर आचार्य

भगवान महावीरकी दिव्यध्वनिमेंसे भगवानश्री गौतमस्वामीने १२ अंगकी रचना की थी।

सम्यक्रत्नत्रयरूप प्रचुर स्वसंवेदनसे निज आत्मामें निरन्तर झूलनेवाले महायोगी भगवानश्री गुणधर आचार्यको १४ पूर्वमेंसे पाँचवे ज्ञानप्रवादपूर्वके अंशका ज्ञान था। उसके विविध प्राभृतों (पाहुडों)मेंसे 'पेज्ज़दोष' पाहुडका ज्ञान गुणधर आचार्यको प्राप्त था, जो आचार्योंकी भाषामें कहें तो महासमुद्र तुल्य होता है। इतना ही नहीं इसके अतिरिक्त ''धरसेनाचार्यको जिस 'महाकम्मपयडिपाहुड'का ज्ञान था,'' उसका भी आपको ज्ञान प्राप्त था। इससे यह ज्ञात होता है, कि आचार्य गुणधर भगवंत धरसेनाचार्यसे भी विशेष ज्ञानी थे व पूर्वांशके ज्ञाता थे; इतना ही नहीं आचार्य धरसेनकी भांति आप भी श्रुत-प्रतिष्ठापक रहे हैं।

आचार्य परम्पराके अनुसार पंचवर्षीय युगप्रतिक्रमणके समय एक बड़ा भारी यति सम्मेलन (आचार्य-सम्मेलन) हुआ। जिसमें सो योजन तकके यति (मुनि भगवंत) सम्मिलित हुए थे। उस समय यतियोंके भावानुसार महान आचार्यवर अर्हद्बलिने यतियोंकी परम्पराके अनुरूप नन्दिसंघ, सेनसंघ आदि विविध संघोकी स्थापना की थी। उसमें एक 'गुणधर संघ'की भी स्थापना थी। इस परसे ज्ञात होता है, कि उस समय गुणधर आचार्यके परम्पराके शिष्योंकी संख्या अत्याधिक रही होगी, तथा गुणधर आचार्य इतने भावविशुद्धतामय होंगे, कि उनकी परम्परामें होनेवाले यतिवर्ग सब स्वयंको गुणधर आम्नायी माननेमें अपना गौरव समझते होंगे—अतः आचार्य अर्हद्बलिने उस संघका नाम 'सेन', 'नन्दि', 'धर' ऐसा न रखकर 'गुणधर संघ' रखा था।

'कसायपाहुड'की वीरसेनाचार्य कृत टीका परसे ऐसा ध्वनित होता है, कि आचार्य गुणधर भगवंत पूर्वविदों ('पूर्व'के ज्ञाता)की परम्परामें सम्मिलित थे, किन्तु आचार्य धरसेन भगवंत पूर्वविद् होते हुए भी पूर्वविदोंकी परम्परामें नहीं थे।

तद्उपरांत आचार्य गुणधर भगवंत ऐसे समयके आचार्य थे, कि पूर्वोंके ज्ञानमें उतनी

कमी नहीं आई थी, जितनी आचार्य धरसेन स्वामीके समयमें आ गई थी। अतएव आचार्य गुणधर भगवंत आचार्य धरसेन स्वामीके पूर्ववर्ती थे।

आचार्य गुणधर भगवंतकी शब्दोंकी गहनता व गंभीरता इतनी थी, कि उन्होंने सिर्फ [१]१८० (२३३) गाथाओंमें ही मध्यमपदकी अपेक्षासे ६०,००० पद प्रमाण कसायपाहुडके ग्रंथविषयको समाविष्ट कर लिया था। इतना ही नहीं मात्र ३ गाथामें ही ५ अधिकारके विषयको समाविष्ट कर दिया था।

यद्यपि आचार्यदेवने मात्र एक ग्रंथ—'कसायपाहुड'की ही रचना की है, पर वह इतनी गंभीर व गहन है कि, वह अपने आपमें एक अनूठा स्थान रखती है। यदि यतिवृषभाचार्यदेवने इस ग्रंथ पर चूर्णिसूत्र न रचे होते तो इस ग्रंथके गाथासूत्रोंका अनन्त गर्भित अर्थका स्वरूप हमें ज्ञात नहीं हो पाता।

इतना ही नहीं, यह कसायपाहुड ग्रंथ पूरे 'पेज्ञदोषपाहुड'का उपसंहार स्वरूप है। इस ग्रंथमें आचार्यदेवने मात्र मोहनीयकर्मके निमित्तकी मुख्यतासे जीवके परिणाम व उसके उपशम, क्षय, क्षयोपशमसे होते जीवके दर्शन (श्रद्धा) व चारित्र लब्धिका स्वरूप बताया है। इस तरह मात्र मोहनीय दशावंत जीवकी वैविध्यता (आस्रव व बंध तत्त्व) व उसके नाशका उपाय(संवर व निर्जरा)का ही वर्णन किया है। इस तरह मोहनीयकर्म निमित्तक जीव अपने मोहभावसे इस संसारमें दुःखी है, व उसका नाश करना ही सुखका उपाय है—ऐसे मोहसे दुःखी जीवोंके लिए यह ग्रंथ एक आशीर्वादरूप है।

गुणधर आचार्यके गुरुके संबंधमें कोई जानकारी प्राप्त नहीं होती है। पर इतना ज्ञात होता है, कि 'कसायपाहुड' ग्रंथकी रचना करके शायद आपने अन्त समयमें आचार्य नागहस्तिदेव व आचार्य आर्यमंक्षुदेवको इसका व्याख्यान किया हो। अतः आप आचार्य नागहस्ति व आर्यमंक्षुके शिक्षागुरु होंगे—ऐसा प्रतीत होता है।

आपका काल इसुकी प्रथम शताब्दी पूर्वपाद या उससे भी पूर्वका माना जाता है।

आचार्यदेव गुणधर भगवंतको कोटि कोटि वंदन।

---

१. कसायपाहुड ग्रंथकी गाथाओंके बारेमें दो मत हैं—(१) आचार्यवर गुणधरस्वामीने १८० गाथाओंमें यह ग्रंथ रचा था। पश्चात्की ५३ गाथा या तो आचार्य नागहस्तिने लिखी हो या आचार्य यतिवृषभजीने चूर्णिसूत्रों सह इसे इन गाथओंको लिपिबद्ध किया हो। या (२) १८० गाथाओंमें पेज्जदोस पाहुड़का उपसंहार कर चूकनेके बाद प्रस्तावना, विषयसूचि और परिशिष्टके रूपमें उक्त ५३ गाथाओंकी गुणधराचार्य स्वयंने पीछेसे रचना की हो।

भगवान आचार्यदेव

श्री शिवार्य अपरनाम शिवकोटि

मुनिधर्मके आचार प्ररूपक, समाधि-मरणका विस्तारसे वर्णन करता तथा दर्शन, ज्ञान, चारित्र व तपरूप चार आराधनाओंका उत्तम वर्णन करनेवाला दिगम्बर वाङ्मय 'भगवती आराधना' अपनेमें एक अनूठा ग्रंथ है।

इसी ग्रंथकी रचना करनेवाले आचार्य शिवार्य हैं। आपके आगमोंमें शिवनन्दि, शिवगुप्त, शिवकोटि आदि अपरनाम अनेक मिलते हैं। आपकी रचना, काल आदिके आधारसे अक्सर इतिहासविदोंका मानना है, कि 'आप आचार्य समन्तभद्रदेवके शिष्य जो काशीदेशके राजा थे। वे समन्तभद्रस्वामी द्वारा स्वयंभूस्तोत्र पढ़ते समय शिवलिंग फटकर चन्द्रप्रभ भगवानका जिनविम्ब प्रकट होने पर चमत्कारसे प्रभावित होकर मुनिदीक्षा धारण करनेवाले आचार्य 'शिवकोटिसे' भिन्न आचार्य हैं। पर इस बात पर सभी एकमत नहीं है, क्योंकि आपके समन्तभद्राचार्यके शिष्य होनेके उल्लेख भी मिलते हैं। अलंकारों आदिकी प्रयुक्ति आदिसे रहित, आपके ग्रंथमेंसे उत्तम आगम-सिद्धान्तमें पारगामित्व, नीति, सदाचार, काव्यशैलीका अच्छा ज्ञान द्वारा पांडित्य व साहित्य दृष्टि आदिकी आपमें प्रतिभा झलकती है। आपके सहिष्णुता, विनयवंतपना, पूर्वाचार्योंका भक्तपना, गुरुओं द्वारा रचित सूत्र व अर्थकी सम्यक् आत्मानुभूतिसह जानकारीकी अद्भुतता आदि सभी गुण एक मात्र 'भगवती आराधना'में झलकते हैं।

आप [१]पाणितलभोजी संघके आचार्य थे। दिगम्बर संप्रदायकी पट्टावलियों, अभिलेखों, ग्रंथ-प्रशस्तियों या श्रुतावतार आदिकी परम्परामें आपका नाम उपलब्ध नहीं होता है, फिर भी आपका 'भगवती आराधना' ग्रंथ ही आपकी ख्यातिके लिए पर्याप्त है। आपने अपने 'भगवती आराधना' ग्रंथमें सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्‌चारित्र व सम्यक्‌तप—इन चार आराधनाओंका वर्णन किया है। आपका यह ग्रंथ २१६६ गाथाओंमें रचित है। आपने आराध्य, आराधक, आराधना व आराधनाका फल वर्णन करते हुए बताया है, कि रत्नत्रय

---

१. आपके समयमें श्वेताम्बर मत इस तरह भिन्न नहीं हुआ था कि वह बिलकुल अलग धारा हो, अतः आपको श्वेताम्बरसे भिन्न दिखाने हेतु 'पाणितलभोजी'के रूपमें पहचाने जाते थे।

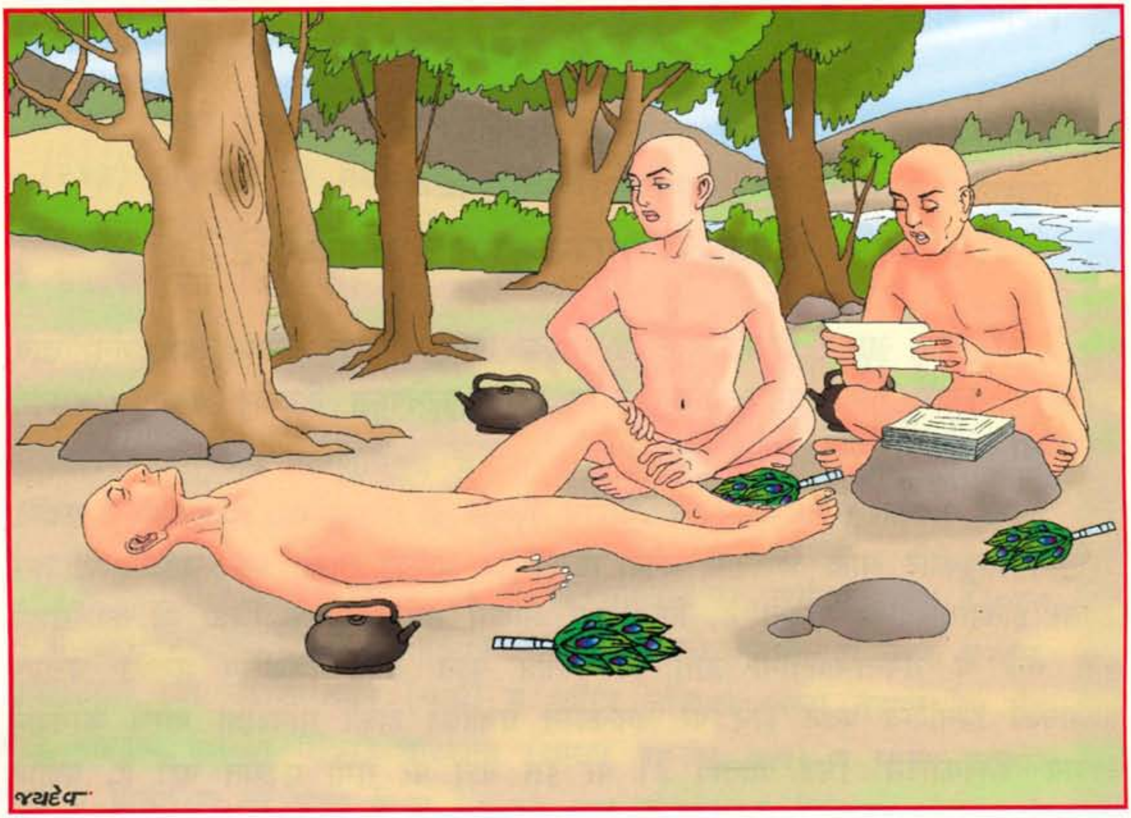

भगवती आराधनामें बताई गई मुनिराजके समाधिमरणके समय
अन्य मुनिराज द्वारा वैयावृत्त्य

आराध्य है, निर्मल परिणामवाले भव्यजीव आराधक हैं, जिन उपायोंसे रत्नत्रयकी प्राप्ति होती है वह उपाय आराधना है, व उसके फलस्वरूप स्वर्ग-मोक्षकी प्राप्ति वह आराधनाका फल है।

इस ग्रंथमें १७ प्रकारके मरणका स्वरूप बताकर उनमें पंडितमरण, पंडितपंडितमरण, व बालपंडितमरण श्रेष्ठ बताये हैं। आपने सल्लेखना, समाधिमरणका तो बहुत विस्तृत सुंदर भाववाही वर्णन किया है, वह वर्णन अपने आपमें अनूठा है।

आपकी रचनाकी भाषा आदिसे कुछ इतिहासकारोंके मतानुसार आप तत्त्वार्थसूत्र आदि ग्रंथोंकी रचनाओंके पूर्ववर्ती आचार्य थे।

आपका काल इसुकी प्रथम शताब्दीका प्रथमपाद माना जाता है।

आचार्यदेव शिवार्य भगवंतको कोटि कोटि वंदन।

भगवान आचार्यदेव

श्री आचार्यदेव अर्हद्बलि अपरनाम गुप्तिगुप्त

पूर्वदेशस्थ पुण्ड्रवर्धनके निवासी आचार्यवर अर्हद्बलि बहुत बड़े संघनायक थे। आचार्य इन्द्रनन्दिकृत 'श्रुतावतार' नामक ग्रंथकी गुरुपरम्परामें आचार्यवर लोहार्यका नाम व उनकी परम्परामें अंगज्ञान व पूर्वज्ञानके एकदेशज्ञाता आचार्य विनयदत्त, श्रीदत्त, शिवदत्त व अर्हदत्तके पश्चात् आचार्य अर्हद्बलिका नाम आता है। आपका नामोल्लेख आचार्य गुप्तिगुप्तके रूपमें भी आता है।

आपके संघनायकत्वमें पञ्चवर्षीय युगप्रतिक्रमणके वक्त एक बड़ा भारी यति-सम्मेलन हुआ। इसमें सौ–सौ योजन तकके यति सम्मिलित हुए थे। यह सम्मेलन आन्ध्रदेशके अन्तर्गत [१]वेणाक नदीके तीर पर आये [१]महिमानगरमें हुआ था।

अंग ज्ञानके विच्छेद होनेके पश्चात् कोई भी आचार्य किसी पूरे अंगके ज्ञाता नहीं रहे। जीवोंके भाग्यवशात् आपके व तद्वर्ती आचार्योंकी परम्परामें कुछ वर्षों तक अंगो या पूर्वोंके एकदेश ज्ञाता वर्तते रहे, परन्तु दुषमकालकी स्थितिसे आचार्य अर्हद्बलिको संघ संचालन हेतु विविध संघ करनेकी जरूरत महसूस होने लगी।

यतियोंमें कुछ पक्षपातकी गन्ध देखकर आपने गौतम गणधर भगवंतसे चले आ रहे मूलसंघको पृथक्–पृथक् [२]नन्दि, वीर, अपराजित, देव, पञ्चस्तूप, सेन, भद्र, गुणधर, गुप्त, सिंह, चन्द्र आदि विविध नामों युक्त संघोकी स्थापना की थी। जिससे परस्परमें धर्मवात्सल्यभाव वृद्धिगत हो सके।

आचार्य धरसेन जब गिरिनगरकी चन्द्रगुफामें विराजित थे। उस समय उन्होंने इसी यति सम्मेलनमें दो समर्थ मुनिभगवंतको भेजनेके समाचार आचार्यवर अर्हद्बलिको भेजे थे। उस

१. वेण्या नामक नदी महाराष्ट्र प्रान्तके सतारा जिलेमें है और इसी जिलेमें महिमानगढ़ नामका एक गाँव भी विद्यमान है। वह ही महिमानगरी होना चाहिए। इससे अनुमानतः इसी सतारा जिलेमें मुनियोंका सम्मेलन हुआ था।

२. श्री कुन्दकुन्दाचार्यदेव इसी नन्दिसंघके थे।

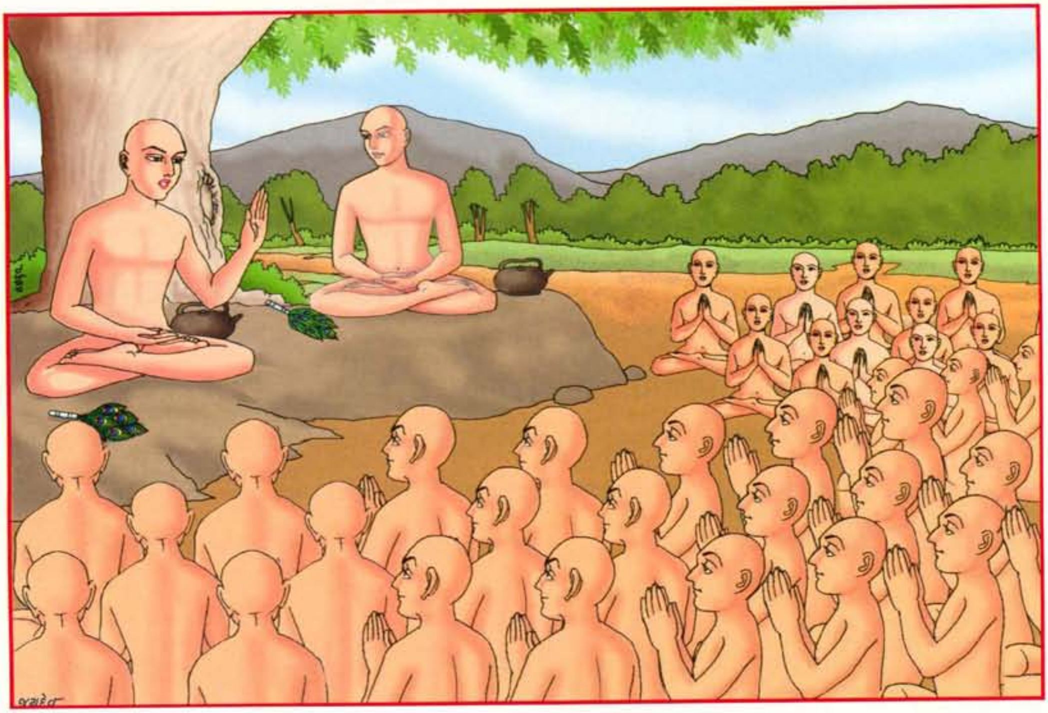

आचार्य अर्हद्‌बलिके युगप्रतिक्रमणमें सो योजनके मुनिवर

समाचारके आधारसे ही आपने उस सम्मेलनमें आए आचार्य पुष्पदंत व आचार्य भूतबलिको आचार्य धरसेन भगवंतके पास गिरिनगरमें उनके सेवार्थ भेजे थे।

श्रवणबेलगोलाके एक शिलालेखके आधारसे यह पता चलता है, कि आचार्य पुष्पदंत व भूतबलि दोनोंने आचार्य अर्हद्बलिसे ही दीक्षा ग्रहण की थी । अतः आप आचार्य पुष्पदंत व आचार्य भूतबलिके दीक्षागुरु थे ।

आपके काल तक प्रायः लेखित ग्रंथ रचना नहीं होती थी। मौखिक ही अंगादिका ज्ञान प्रदान होता था। ग्रंथ रचनाकी स्थिति आपके पश्चात् प्रायः पुष्पदंत व भूतबलि आचार्यसे ही ज्ञानकी क्षीणताके कारण शुरु हुई। अतः आपने किसी ग्रंथकी रचना नहीं की है। आप अंगज्ञानके एकदेशज्ञाता होने पर भी संघभेद निर्माता होनेके कारण आपका नाम श्रुतधरोंकी परम्परामें नहीं आता है, फिर भी श्रुतावतारमें आपका नाम बड़ी श्रद्धासे लिया गया है।

विद्वानोंके मतानुसार आपका काल वी. नि. ५६५–५९३ (ई.स. ३८-६६) माना जाता है। आपके समयकी इस अवधिमेंसे प्रथम १० वर्ष मूलसंघके हैं, व पश्चात्‌के वर्ष मूलसंघ विच्छेद बादके हैं। आचार्यवर अर्हद्बलि भगवंतको कोटि कोटि वंदन।

भगवान श्री धरसेनाचार्यदेव

महावीर भगवानकी वाणीके प्रथम श्रुतस्कंधके संस्थापक भगवान धरसेनाचार्य हैं। धवलाके आधारसे सौराष्ट्र देशके गिरिनगर नामके नगर (हालका नाम गिरनार)की चन्द्रगुफामें रहनेवाले अष्टांग महानिमित्तके पारगामी, प्रवचनवत्सल और अङ्गश्रुतके विच्छेदकी आशंकासे चिन्तित धरसेनाचार्यने किसी धर्मोत्सव आदिके निमित्तसे महिमानामकी नगरीमें सम्मिलित हुए दक्षिणपथके आचार्योंके पास एक समाचार भेजा, जिसमें उन्होंने यह इच्छा व्यक्त की, कि योग्य शिष्य उनके पास आकर षट्खंडागमका अध्ययन करे।

दक्षिण देशके आचार्य प्रमुख अर्हदबलिने शास्त्रके अर्थग्रहण और धारणमें समर्थ देश, कुल, शील और जातिसे उत्तम, समस्त कलाओंमें पारंगत दो मुनियोंको वेणा नदीके तटसे आचार्यवर धरसेनजीके पास भेजा। रात्रिको आचार्यवर धरसेनजीको एक स्वप्न आया, जिसमें दो सुंदर पुष्ट वृषभ दिखाई दिये। जिससे धरसेन आचार्य समर्थ मुनिओंका आगमन जान

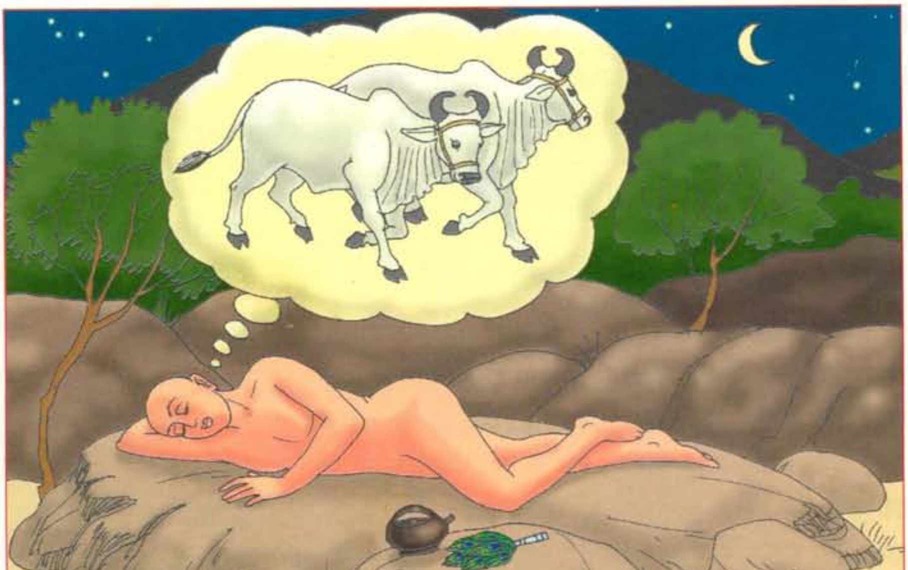

आचार्य धरसेनको रात्रिमें 'भार वहन कर सके' ऐसे दो वृषभका स्वप्न

अति हर्षित हुए व मुखसे वचन निकल पड़े, कि श्रुतदेवता जयवंत हो। उन दोनोंने वहाँ पहुँचकर आचार्य धरसेनकी तीन प्रदक्षिणा दी और उनके चरणोंमें बैठकर सविनय नमस्कार किया। आचार्य धरसेनने उन दोनों योग्य शिष्योंकी[१] परीक्षा[२] ली और परीक्षामें उत्तीर्ण होनेके पश्चात् उन्हें सिद्धान्तकी शिक्षा दी। ये दोनों मुनि पुष्पदंत और भूतबलि नामके आचार्य थे। यह शिक्षा आषाढ शुक्ला एकादशीको ज्यों ही पूर्ण हुई, वर्षाकालके समीप आ जानेसे, उसी दिन अपने पाससे आचार्यदेव धरसेनने, उन्हें विदा कर दिया। दोनों शिष्योंने गुरुकी आज्ञा अनुल्लंघनीय मानकर उसका पालन किया और वहाँसे चलकर अंकलेश्वरमें चातुर्मास किया।

इन्द्रनन्दिकृत श्रुतावतार और विबुध श्रीधरकृत श्रुतावतारके आधारसे ज्ञात होता है, कि धरसेनाचार्यको उनकी मृत्यु निकट है, ऐसा ज्ञात था। आगन्तुक मुनिवरोंको उस कारण क्लेश न हो, इसलिए उन मुनियोंको तत्काल अपने पाससे विदा कर दिया।

आचार्य धरसेन सफल शिक्षक और आचार्य थे। आचार्य वीरसेनजीने आचार्य धरसेनजीकी विद्वत्ता और पाण्डित्यका वर्णन करते हुए बताया है, कि आप परवादिरूपी हाथीके समूहके मदका नाश करनेवाले श्रेष्ठ सिंहके समान व सिद्धान्तरूपी श्रुतका पूर्णतया मन्थन करनेवाले थे। इतना ही नहीं आप १. सभी अंग और पूर्वोंके एकदेश ज्ञाता थे। २. अष्टांग-महानिमित्तके पारगामी थे। ३. लेखनकलामें प्रवीण थे। ४. मन्त्र-तन्त्र आदि शास्त्रोंके वेत्ता थे। ५. महाकम्मपयडिपाहुडके वेत्ता थे। ६. प्रवचन और शिक्षण देनेकी कलामें पटु थे। ७. प्रवचनवत्सल थे। ८. प्रश्नोत्तरशैलीमें शंका-समाधानपूर्वक शिक्षा देनेमें कुशल

---

१. पुष्पदंत मुनिका मूल नाम सुबुद्धि मुनि व भूतबलिका नाम नरवाहन मुनि था। परन्तु भगवान धरसेनाचार्यदेवसे शिक्षा प्राप्त करनेके पश्चात्, देवों द्वारा सुबुद्धि मुनिकी दंतपंक्ति ठीक करनेसे व नरवाहन मुनिकी भूत जातिके देवोंने पूजा की होनेसे, क्रमशः उनका नाम आचार्य पुष्पदंत व भूतबलि पड़ा।

२. पुष्पदंत और भूतबलिकी बुद्धि-परीक्षाके हेतु धरसेनाचार्यने दो मन्त्र षष्ठोपवास सह साधने हेतु दिये थे। उनमें एक मन्त्र अधिक अक्षरवाला था और दूसरा हीनाक्षर था। गुरुने उन मन्त्रोंको सिद्ध करनेका आदेश दिया। शिष्य मन्त्रसाधनामें संलग्न हो गये। जब मन्त्रके प्रभावसे उनकी अधिष्ठात्री देवियाँ उपस्थित हुई तो एक देवीके दाँत बाहर निकले हुए थे और दूसरी कानी थी। देवता विकलाङ्ग नहीं होते; इसप्रकार निश्चय कर, उन दोनोंने मन्त्रसम्बन्धी व्याकरणशास्त्रके आधार पर मन्त्रोंका शोधन किया और मन्त्रोंको शुद्धकर पुनः साधनामें संलग्न हुए। वे देवियाँ पुनः सुन्दर और सौम्यरूपमें प्रस्तुत हुई, सिद्धिके अनन्तर वे दोनों शिष्य गुरुके समक्ष उपस्थित हुए और विनयपूर्वक विद्यासिद्धि सम्बधित समस्त वृत्तान्त निवेदित कर दिया। गुरु धरसेनाचार्य शिष्योंके ज्ञानसे प्रभावित हुए और उन्होंने शुभ तिथि, शुभ नक्षत्र और शुभवारमें सिद्धान्तका अध्यापन प्रारंभ किया।

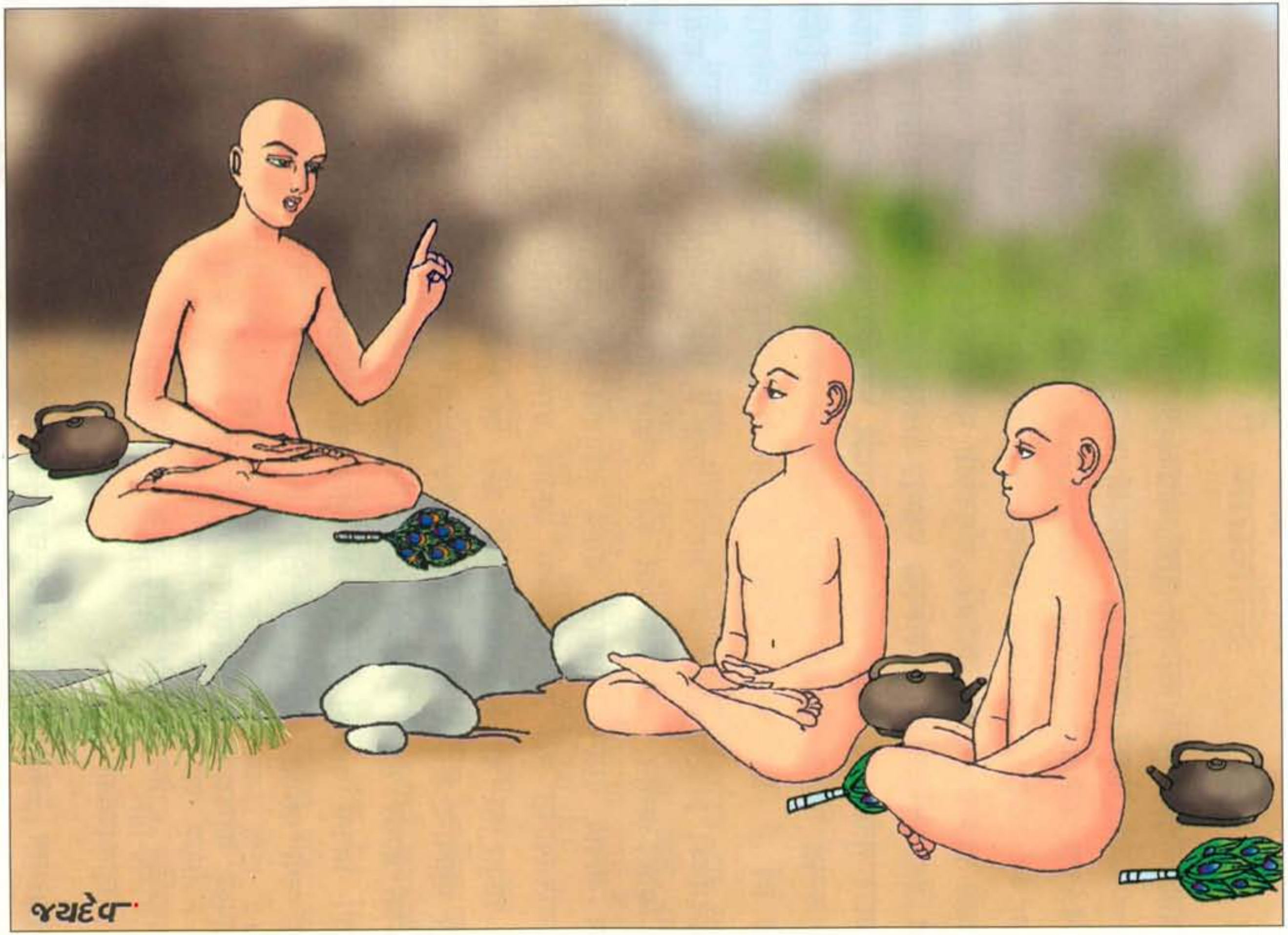

आचार्य धरसेनजी द्वारा आचार्य पुष्पदंत व भूतबलिको षट्खंडागमका उपदेश

थे। ९. गहनीय विषयको संक्षेपमें प्रस्तुत करना भी उन्हें आता था। १०. आग्रायणीयपूर्वके पञ्चम वस्तुके चतुर्थ प्राभृतके व्याख्यानकर्ता थे। ११. पठन, चिंतन एवं शिष्य-उद्बोधनकी कलामें पारंगत थे। १२. आप एकांतप्रिय व ज्ञान-ध्यानमें मग्न रहनेवाले थे। १३. आप समाधिमरण प्रिय थे।

धवलाटीकासे आचार्य धरसेनके गुरुके नामका पता नहीं चलता। आचार्य इन्द्रनन्दिके श्रुतावतारमें आचार्य लोहार्य तककी गुरुपरम्पराके पश्चात् विनयदत्त, श्रीदत्त, शिवदत्त और अर्हद्दत्त इन चार आचार्योंका उल्लेख आया है। ये सभी आचार्य अंगों और पूर्वोंके एकदेशज्ञाता थे। तदन्तर अर्हद्बलिका उल्लेख आता है। ये बड़े भारी संघनायक थे और इन्होंने संघोंकी स्थापना की थी। आचार्य अर्हद्बलिके पश्चात् श्रुतावतारमें आचार्य माघनन्दिका नाम आया है। इन आचार्य माघनन्दिके पश्चात् आचार्य धरसेनके नामका उल्लेख आया है। इस प्रकार श्रुतावतारमें आचार्य अर्हद्बलि, आचार्य माघनन्दि, आचार्य धरसेन इन तीनों आचार्योंका उल्लेख मिलता है। इन तीनोंमें गुरु शिष्यका सम्बन्ध था या नहीं इसका निर्देश नहीं आया है।

नन्दिसंघकी प्राकृतपट्टावलीसे यह अवगत होता है, कि आचार्य अर्हद्बलि, आचार्य माघनन्दि, आचार्य धरसेन, आचार्य पुष्पदंत और आचार्य भूतबलि एक दूसरेके उत्तराधिकारी थे। अतएव आचार्य धरसेनके दादागुरु आचार्य अर्हद्बलि और गुरु आचार्य माघनन्दि कहें तो कोई अतिशयोक्ति नहीं है। गुर्वावलीमें आचार्य धरसेनका निर्देश नहीं है। अतः इस गुर्वावलिके आधार पर यह निश्चितरूपसे नहीं कहा जा सकता है, कि आचार्य धरसेनके गुरु आचार्य माघनन्दि ही थे। सत्य है, कि आचार्य धरसेन विद्यानुरागी थे और शास्त्राभ्यासमें संलग्न रहनेके कारण संघका नायकत्व आचार्य माघनन्दिके अन्य शिष्य आचार्य जिनचन्द्र पर पड़ा हो। आचार्य धरसेनने पुष्पदंत और भूतबलिको सिद्धान्त-आगमका अध्ययन कराकर अपनी एक नयी परम्परा स्थापित की हो।

आपकी षट्खंडागम व योनिप्राभृत नामक दो रचनाएँ कही जा सकती है।

आचार्यदेव धरसेनका काल करीब ई.स. ३८से १०६के आसपासका निर्णित होता है, ऐसा इतिहासकारोंका मत है।

षट्खंडागम उपदेशक आचार्यदेव धरसेन भगवंतको कोटि कोटि वंदन।

भगवान आचार्यदेव
श्री माघनन्दि

आचार्य अर्हद्बलि द्वारा पंचवर्षीय युग-प्रतिक्रमणके समय मुनिसंघमें एकत्वकी भावना स्थायी बनी रहे, इस हेतु नन्दि, गुणधर, सेन, गुप्त आदि विविध गण स्थापित हुए। आचार्य अर्हद्बलि द्वारा उक्त विविध संघोकी स्थापनाके समय आचार्य माघनन्दि मुनियोंमें श्रेष्ठ थे, क्योंकि आप पूर्वधर (पूर्वोंके ज्ञाता अर्थात् अंगांशधारी) तथा अनहद ज्ञानी होते हुए भी आप बड़े तपस्वी थे। इस बातकी परीक्षाके लिए गुरु अर्हद्बलिके आदेश अनुसार एकबार आपने नन्दिवृक्ष (जो छायाहीन होता है)के नीचे वर्षायोग धारण किया था। इसीसे इनको तथा इनके संघको 'नन्दि'की संज्ञा प्राप्त हो गई थी। नन्दिसंघकी पट्टावलीमें आपका नाम भद्रबाहु तथा गुप्तिगुप्त (अर्हद्बलि)को नमस्कार करनेके पश्चात् सबसे पहले आता है और आपका काल पट्टावलीमें वी.नि. ५७५से प्रारंभ किया गया है, इसलिए अनुमान होता है, कि उक्त घटना इसी कालमें घटी थी और उसी समय आचार्य अर्हद्बलिके द्वारा स्थापित इस संघका आद्य पद आपको प्राप्त हुआ था। नन्दि, सेन, पंचस्तूप, गुणधर, पुन्नाट, सिंह आदि नामोंसे भिन्न-भिन्न संघ स्थापित करने पर भी उसमें नन्दिसंघका स्थान सर्वोपरि समझा जाता है। जिनधर्मके मुख्य प्रवाहमें नन्दिसंघकी ही परंपरा अभी तक मुख्यरूपसे चल रही है।

नन्दिसंघकी संस्कृत गुर्वावलीमें भी माघनन्दिका नाम आया है। इस पट्टावलीके प्रारंभमें भद्रबाहु और उनके शिष्य गुप्तिगुप्त(अर्हद्बलि)को वंदना की गई है, किंतु उनके नामके साथ संघ आदिका उल्लेख नहीं किया गया है। उनकी वन्दनाके पश्चात् मूलसंघमें नन्दिसंघ बलात्कारगणके उत्पन्न होनेके साथ ही माघनन्दिका उल्लेख किया गया है। संभव है कि संघभेदके विधाता अर्हद्बलि आचार्यने उन्हें ही नन्दिसंघका अग्रणी बनाया हो। उनके नामके साथ 'नन्दि' पद होनेसे भी आपका इस गणके साथ संबंध प्रकट होता है।

आचार्य माघनन्दिका उल्लेख 'जंबूदीपपण्णत्ति'के कर्ता आचार्य पद्मनंदिने भी किया है और उन्हें राग, द्वेष और मोहसे रहित, श्रुतसागरके पारगामी, [१]मति-वल्लभ, तप और संयमसे सम्पन्न तथा विख्यात कहा है।

आचार्य माघनन्दि सिद्धान्तवेदीके संबंधमें एक कथानक भी प्रचलित है। कहा जाता है,

१. चतुर, होंशियार, हाजिरजवाबी, प्रत्युत्पन्नमति, प्रतिभाशाली, बुद्धिवाला, निःसंकोच बोलनेवाला, गंभीर मतिवाला।

कि माघनन्दि मुनि एकबार चर्याके लिये नगरमें गये थे। वहाँ एक कुम्हारकी कन्याने इनसे प्रेम प्रकट किया और मोहवश वे उसीके साथ रहने लगे। कालान्तरमें एकबार संघमें किसी सैद्धान्तिक विषय पर मतभेद उपस्थित हुआ और जब किसीसे उसका समाधान नहीं हो सका तब संघनायकने

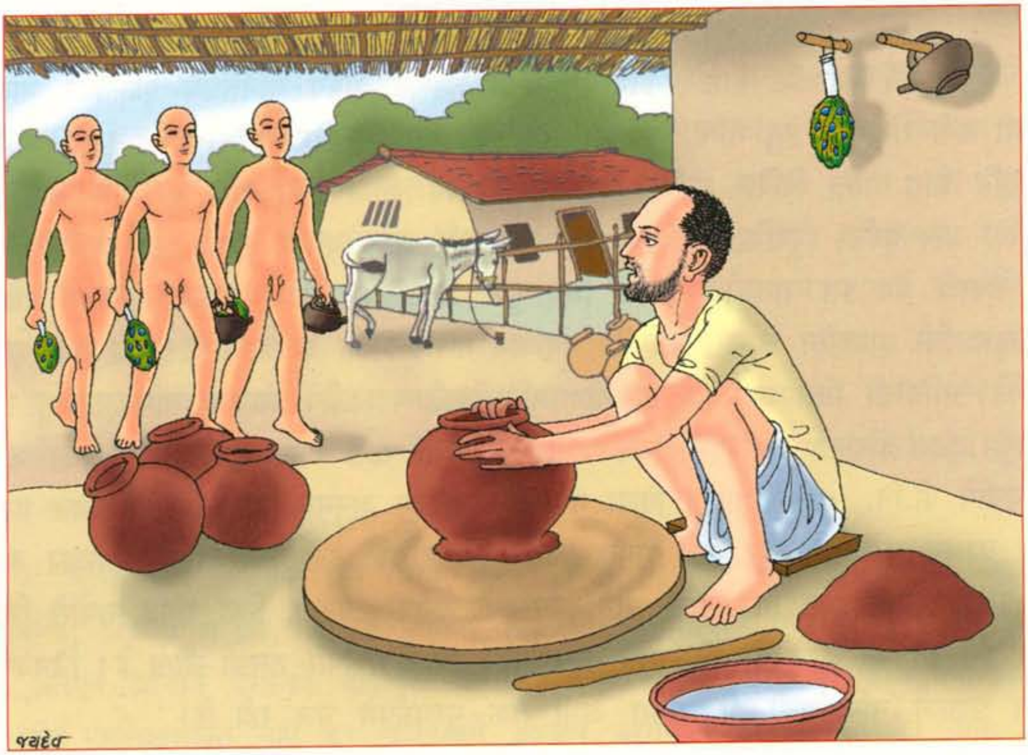

माघनन्दि कुम्हार अवस्थामें थे, उस समय उन्हें ज्ञान विषयक प्रश्न पूछते मुनिवर

आज्ञा दी, कि इसका समाधान माघनन्दिके पास जाकर किया जाय। अतः साधु माघनन्दिके पास पहुँचे और उनसे ज्ञानकी व्यवस्था मांगी। माघनन्दिने पूछा, 'क्या संघ मुझे अभी भी सत्कार देता है?' मुनियोंने उत्तर दिया 'आपके श्रुतज्ञानका सदैव आदर होगा।' यह सुनकर माघनन्दिको पुनः वैराग्य हो गया और वे अपने सुरक्षित रखे हुए पीछी-कमुंडल लेकर दीक्षित होकर, पुनः संघमें आ मिले। 'एक ऐतिहासिक स्तुति' शीर्षकसे इसी कथानकका एक भाग बताते हुए व उसके साथ सोलह श्लोकोंकी एक स्तुति भी है। जिसमें कहा है, कि माघनन्दिने अपने कुम्हार-जीवनके समय कच्चे घड़ोंपर थाप देते समय गाते-गाते यह बनाया था। यदि इस कथानकमें कुछ तथ्यांश हो तो संभवतः वह माघनन्दि नामके आचार्योमेंसे उक्त आचार्यके सम्बन्धमें हो सकता है, जिनका उल्लेख श्रवणबेलगोलके अनेक शिलालेखोंमें आया है। इनमेंसे शिलालेख नं. १२९में बिना किसी गुरु-शिष्य सम्बन्धके माघनन्दिको जगत्प्रसिद्ध सिद्धान्तवेदी कहा है। यथा—

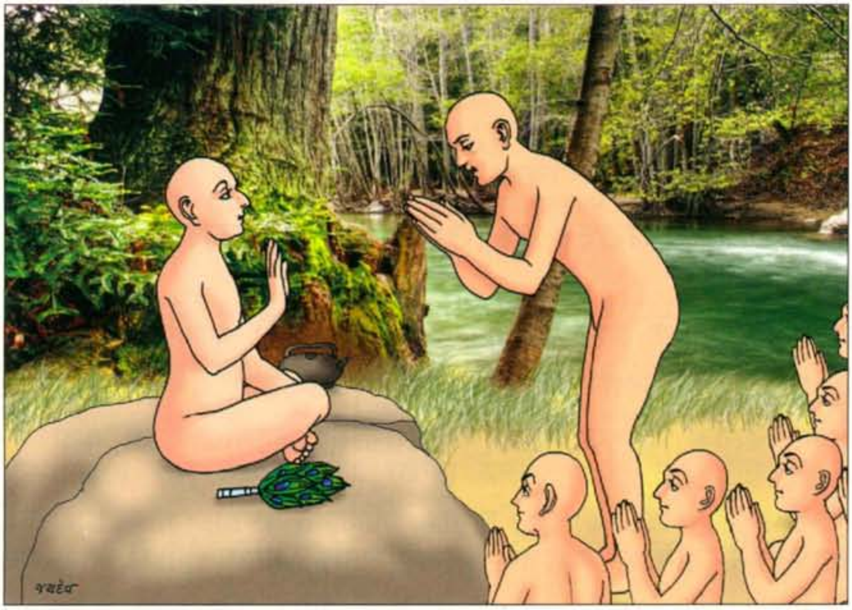

यतिसंमेलनमें आचार्य अर्हद्‍बलिजी द्वारा आचार्य माघनन्दिजीको नन्दिसंघका आचार्य बनाना

नमी नम्रजनानन्दस्यन्दिने माघनन्दिने।
जगत्प्रसिद्धसिद्धान्तवेदिने चित्प्रमोदिने ॥४॥

विद्वानोंके मतानुसार आप अंगांशधारी विद्वान आचार्य थे व आपका काल ई.स. ४८-८७ माना जाता है। यद्यपि आचार्य धरसेन भी आचार्य अर्हद्बलिके समकालीन व पूर्वधर थे, पर वे एकान्तप्रिय तपस्या करनेवाले थे, जबकि आ. माघनन्दि संघसंचालनमें कुशल होनेसे नन्दिगण आ. माघनन्दिके नामसे वृद्धिगंत हुआ। अतः आचार्य माघनन्दि व आचार्य धरसेनकी अलग-अलग पट्टावलियाँ दिखाई देती हैं। विद्वानोंका यह भी मानना है, कि हो सकता है, कि आपके गुरु आचार्यवर अर्हद्बलिके समकालीन होते हुए भी आप आचार्य अर्हद्बलिके शिष्य थे व आ. माघनन्दिके शिष्य आ. जिनचन्द्राचार्य होने चाहिए। [१]मूलसंघकी पट्टावलियों व अन्य पट्टावलियों परसे विद्वानोंका मानना है, कि आचार्य माघनन्दिके पश्चात् आचार्य जिनचन्द्रदेवका व तत्पश्चात् आचार्य कुन्दकुन्दका नाम होनेसे आचार्य माघनन्दिके शिष्य आचार्य जिनचन्द्र ही आचार्य कुन्दकुन्दप्रभुके गुरु होने चाहिए।

आचार्यदेव माघनन्दि भगवंतको कोटि कोटि वंदन।

---

१. भगवान महावीर पश्चात् दिगम्बर जैनाचार्योंमें मूलसंघकी परम्परा विशेषकर कुछ शास्त्रोंमें उपलब्ध होती है। जैसे कि १. भगवान यतिवृषभाचार्यकृत तिलोयपण्णत्ति, २. भगवान श्री इन्द्रनन्दि आचार्यकृत श्रुतावतार, ३. धवला, ४. हरिवंशपुराण आदि। उनमेंसे कालादिके प्रमाणादि व इतिहास आदिके प्रमाणसे विद्वानोंका मानना है कि 'श्रुतावतार' ग्रंथमें दी गई मूलसंघकी पट्टावली ज्यादा योग्य प्रतीत होती है।

भगवान श्री आचार्यदेव

पुष्पदंत व आचार्य भूतबलि

अग्रायणीय पूर्वांशके ज्ञाता आचार्य धरसेनके ज्ञानको कुशाग्रबुद्धिसे धारण करनेवाले भगवान श्री पुष्पदंत व भूतबलि आचार्यसे दिगम्बर समाजका प्रत्येक व्यक्ति परिचित है। ऐसे महान आचार्यवरोंके जीवनके बारेमें भविष्यवाणीवत् आख्यान करती कथा 'श्रुतावतार'में दी गई है, वह इस प्रकार है :—

'भरत क्षेत्रके बांमिदेश–ब्रह्मदेशमें वसुन्धरा नामकी नगरी होगी। वहाँके राजा नरवाहन और रानी सुरूपा, पुत्र न होनेके कारण खेद-खिन्न होंगे। उस समय सुबुद्धि नामका सेठ उन्हें पूजा करनेका उपदेश देगा। तद्नुसार पूजा करनेपर राजाको पुत्रलाभ होगा और उस पुत्रका नाम 'पद्म' रखा जाएगा। तदन्तर राजा सहस्रकूट चैत्यालयका निर्माण करायेगा और प्रतिवर्ष यात्रा करेगा। सेठ भी राजकृपासे स्थान-स्थान पर जिनमन्दिरोंका निर्माण करायेगा। इसी समय वसन्त ऋतुमें समस्त संघ यहाँ एकत्र होगा और राजा सेठके साथ जिनपूजा करके रथ चलावेगा। इसी समय राजा अपने मित्र मगधसम्राटको मुनीन्द्र हुआ देख, सुबुद्धि सेठके साथ विरक्त हो दिगम्बरी दीक्षा धारण करेगा। इसी समय एक लेखवाहक वहाँ आयेगा। वह जिनदेवको नमस्कार कर मुनियोंकी तथा परोक्षमें धरसेन गुरुकी वन्दना कर लेख समर्पित करेगा। वे मुनि उसे पढेंगे, कि गिरनारके समीप गुफावासी धरसेन मुनीश्वर अग्रायणीय पूर्वकी पञ्चमवस्तुके चौथे प्राभृतशास्त्रका व्याख्यान आरंभ करनेवाले हैं। धरसेन भट्टारक कुछ दिनोंमें नरवाहन और सुबुद्धि नामके मुनियोंको पठन, श्रवण और चिन्तन कराकर आषाढ़ शुक्ला एकादशीको शास्त्र समाप्त करेंगे। उनमेंसे एकको भूत(व्यंतरजातिके देव) रात्रिको बलिविधि (पुष्पोंसे पूजा) करेंगे और दूसरेके चार दाँतोंको सुन्दर बना देंगे। अतएव भूत-बलिके प्रभावसे नरवाहन मुनिका नाम भूतबलि और चार दाँत समान हो जानेसे सुबुद्धिमुनिका नाम पुष्पदंत होगा'।

इस आख्यानके बारेमें इतिहासविदोंके भिन्न-भिन्न मत होने पर भी, इससे यह फलित होता है, कि भगवान पुष्पदंत आचार्य व भूतबलि आचार्यका दीक्षा नाम कुछ अन्य था, परन्तु प्रसिद्ध कथान्यायसे उनके नाम 'पुष्पदंत और भूतबलि' रखा गया था। उपरोक्त

भविष्यवाणीमें इतिहासविदोंके भिन्न-भिन्न मत होनेसे उसे गौण करके इतिहासकारोंके अभिप्राय अनुसार आचार्य पुष्पदंत वसुन्धरा नगरीके राजा नरवाहन थे। आचार्य पुष्पदंत राजा जिनपालितके समकालीन तथा उनके मामा थे। इस परसे यह अनुमान किया जा सकता है, कि राजा जिनपालितकी राजधानी [१]वनवास ही आपका जन्मस्थान है। आप वहाँसे चलकर अर्हद्वलि आचार्यके स्थान पुण्ड्रवर्धन आये और उनसे दीक्षा लेकर तुरंत उनके साथ ही महिमानगर चले गये जहाँ अर्हद्वलिने बृहद् यति सम्मेलन एकत्रित किया था।

जब महिमा नगरीमें सम्मिलित यतिसंघको धरसेनाचार्यके समाचार मिले, तब आचार्यवर अर्हद्वलिने श्रुत-रक्षासंबन्धी उनके अभिप्रायको समझकर अपने संघमेंसे दो साधु चुने। वे दोनों साधु विद्याग्रहण करने और उसका स्मरण रखनेमें समर्थ, अत्यंत विनयशील, शीलवान्, देश, कुल, जातिसे शुद्ध और समस्त कलाओंमें पारंगत थे। उन दोनोंको धरसेनाचार्यके पास गिरिनगर (गिरनार) भेज दिया। धरसेनाचार्यने उनकी परीक्षा की। एकको अधिकाक्षरी और दूसरेको हीनाक्षरी मंत्र-विद्या देकर उन्हें षष्ठोपवाससे सिद्ध करनेको कहा। जब विद्याएँ सिद्ध हुई तो एक बड़े-बड़े दांतोंवाली और दूसरी कानी, देवी प्रकट हुई। उन्हें देख कर चतुर साधक मुनियोंने जान लिया, कि उनके मंत्रोंमें कुछ त्रुटि है। उन्होंने स्वयं विचारपूर्वक

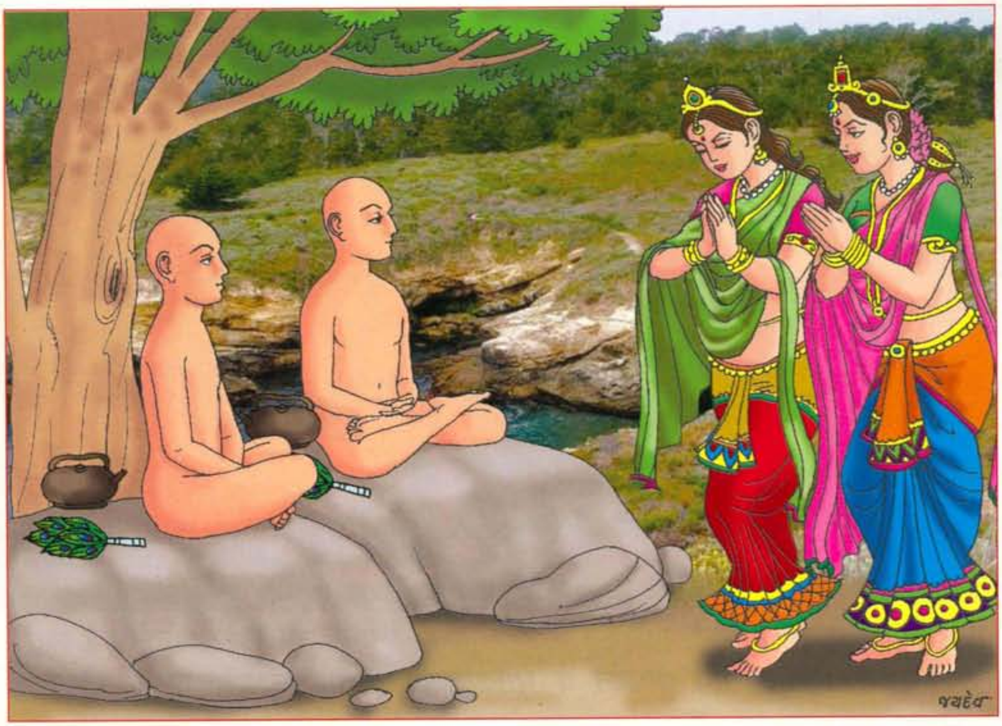

आचार्य पुष्पदंत व भूतबलिजी द्वारा मन्त्र ध्यानसे प्रकट हुई देवीयाँ

उन(मंत्रों)को सुधारकर पुनः साधना की, जिससे देवियाँ अपने स्वाभाविक सौम्यरूपमें प्रकट हुई। उनकी इस कुशलतासे गुरुने जान लिया, कि ये दोनों सिद्धान्त सिखानेके योग्य पात्र हैं। फिर उन्हें क्रमसे सब सिद्धान्त पढ़ा दिया। यह श्रुताभ्यास आषाढ़ शुक्ला एकादशीको समाप्त हुआ। उसी समय देवोंने पुष्पोपहारों द्वारा, शंख, तूर्य और वादित्रोंकी ध्वनिके साथ आचार्य नरवाहनकी बड़ी पूजा की। इसीसे आचार्यश्रीने उनका नाम भूतबलि रखा। दूसरी ओर आचार्य सुबुद्धिकी दंतपंक्ति अस्तव्यस्त थी, उसे देवोंने ठीक कर दी, इससे उनका नाम पुष्पदंत रक्खा गया। ये दो आचार्य पुष्पदंत और भूतबलि षट्खंडागमके रचयिता हुए।

आचार्य पुष्पदंतजीने गुरुसे ज्ञान प्राप्त करके अपने सहधर्मी भूतबलिजीके साथ, धरसेन गुरुकी आज्ञा अनुसार उनसे विनयपूर्वक विदा लेकर आषाढ़ शु॰ ११को पर्वतसे नीचे आ गए और वहाँसे निकट अंकलेश्वरमें चतुर्मास किया। चातुर्मास दरमियान दोनों आचार्योंने आपसमें उपदेशकी बहुत गंभीर चर्चा कर उपदेशको अवगाहन किया। अंकलेश्वर चातुर्मास

आचार्य पुष्पदंत व भूतबलिजी गुरुआज्ञानुसार
गिरनारसे रवाना हो अंकलेश्वर जा रहे हैं

पश्चात् आचार्य पुष्पदंत [1]वनवास नगर चले गये। कुछ समय अंकलेश्वरकी ओर विहार करते करते भूतबलि [2]द्रविड़ देश चले गये।

पुष्पदंत आचार्यने अपने भांजे राजा जिनपालितको दीक्षा देकर उन्हें सिद्धान्तका अध्ययन कराया। उसके निमित्त आपने 'बीसदी सूत्र' नामक एक ग्रंथकी रचना की, जिसे अवलोकनके लिये आपने उन्हींके साथ भूतबलिजीके पास भेज दिया।

इस रचनाके बारेमें यह भी किवंदति है, कि गिरिनगरसे वापस लौटते समय आचार्य पुष्पदंत व आचार्य भूतबलिने अंकलेश्वर (जि. भरूच, गुजरात)में चातुर्मास बिताया व आचार्य पुष्पंदतके चले जानेके पश्चात् भी आचार्य भूतबलि वहाँ सजोत (अंकलेश्वरके पास)के जंगलोंमें रहे। पुष्पदंत आचार्य द्वारा भेजे गए 'बीसदी सूत्र' आचार्य भूतबलिको यहीं मिला। भूतबलि आचार्यने आचार्यदेवकी अल्पायु जानकर 'महाकर्मप्रकृतिपाहुड़'के विच्छेद-भयसे द्रव्यप्रमाणसे लगाकर आगेकी ग्रंथ रचना ज्येष्ठ शुक्ला पंचमीको पूर्ण की। अतः ज्येष्ठ शुक्ला पंचमीको चतुर्विध संघने षट्खंडागमश्रुतकी पूजा की व बड़ा महोत्सव किया। (तब ही से जिनेन्द्र

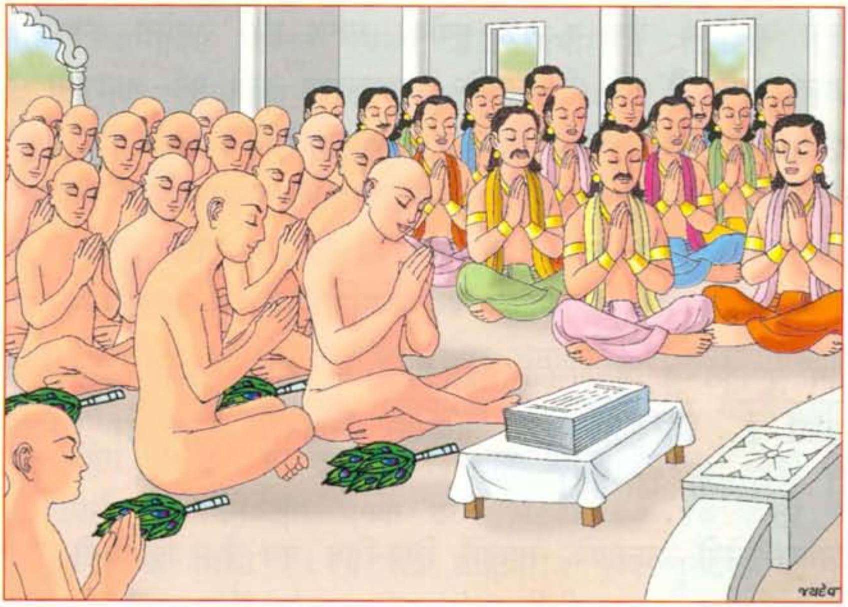

श्रुतपञ्चमीको षट्खंडागमकी पूर्णाहूति पर चतुर्विध संघ द्वारा जिनवाणीकी पूजन-भक्ति

---

१. वनवास जो कि उत्तर कर्णाटकका ही प्राचीन नाम है। जो तुंगभद्रा और वरदा नदीयोंके बीच बसा हुआ है। प्राचीनकालमें वहाँ कदम्ब वंशका राज्य था। उसकी राजधानी 'वनवासि' थी; वहाँ अब भी उस नामका गाँव विद्यमान है।

२. जो कि दक्षिण भारतका वह भाग है, जो चेन्नाई (मद्रास)के सेरिंगपट्टम और कामोरिन तक फैला हुआ है और जिसकी प्राचीन राजधानी कांचीपुरी थी।

शासनमें यह उत्सव गाँव-गाँवमें श्रुतकी पूजा सह बड़े धाम-धूमसे मनाया जाता है। अध्यात्मतीर्थ सुवर्णपुरीमें भी यह उत्सव बड़े भावपूर्ण भावना व उत्साह सह मनाया जाता है।) वहाँ (अंकलेश्वरमें) आज भी भूतबलि आचार्यकी प्रतिमा विराजमान है।

तत्पश्चात् जिनपालित मुनिके साथ आचार्य भूतबलिने पूर्ण रचना आचार्य पुष्पदंतके पास भेज दी; जिसे आचार्यवर पुष्पदंत देखकर बहुत ही प्रसन्न हुए और वहाँ भी चतुर्विध संघने षट्खण्डागम शास्त्रकी पूजा की व बड़ा उत्सव किया।

इस तरह षट्खण्डागम शास्त्रके रचयिता आचार्य पुष्पदंत व भूतबलि दिगम्बर शासनकी पट्टावलियोंमें धरसेनाचार्यके पश्चात्, पुष्पदंताचार्यका ३० वर्षका समय दिखाया गया है। उसके पश्चात् भूतबलि आचार्यका काल दिखाया गया है। इस परसे यह प्रतीत होता है, कि पुष्पदंत आचार्य भूतबलि आचार्यसे ज्येष्ठ थे।

यद्यपि जैसा कसायपाहुड़ सिद्धान्त ग्रंथ प्राचीन है, वैसा ही यह षट्खण्डागम सिद्धान्त ग्रंथ भी प्राचीन है; फिर भी दोनोंकी रचना शैलीमें काफी अन्तर है; भगवानकी दिव्यध्वनिमेंसे गणधर भगवंतने जो १२ अंग व १४ पूर्वोंकी रचना की, उसमेंसे कसायपाहुडकी रचना पँचमपूर्व–ज्ञानप्रवादपूर्वसे की गई थी; जबकि षट्खण्डागम दूसरे पूर्व–अग्रायणी पूर्वसे की गई है। कसायपाहुडमें जहाँ जीवके परिणाम व मोहनीय कर्म संबंधित ही चर्चा है; वहाँ षट्खंडागम शास्त्रमें जीवके परिणाम व आठों कर्म संबंधित चर्चा है। कसायपाहुड़की टीका ग्रंथका नाम जयधवला टीका है; जब कि षट्खण्डागम शास्त्रकी टीकाका नाम धवला व छठवे खण्ड़की टीकाका नाम महाधवला है। कसायपाहुड़ पद्य रचना है; वहाँ षट्खण्डागम गद्य रचना है।

आचार्य पुष्पदंत व भूतबलिके माता-पिता या दीक्षा गुरुका कोई सुस्पष्ट इतिहास ज्ञात नहीं होता है, फिर भी कुछ आधारोंसे विद्वानोंके मतानुसार पुष्पदंत आचार्यकी कर्णाटकमें ही जन्मस्थली रही हो।

विद्वानोंका दोनों आचार्यके समयमें भिन्न-भिन्न मत हैं। फिर भी विशेष तौर पर दोनों आचार्योंका समय क्रमशः वी.नि. सं. ५९३-६३३ (ई.स. ६६-१०६) व वी. नि. सं. ५९३-६८३ (ई.स. ६६ से १५६) सुयोग्य प्रतीत होते हैं।

भगवान अर्हद्बलि आचार्यसे आचार्यदेव धरसेनजीकी जो परम्परा चली, वह यहीं पूर्ण हो जाती है।

षट्खंडागम रचयिता आचार्यदेव पुष्पदंत व भूतबलि भगवंतको कोटि कोटि वंदन।

परमागमश्री षट्खंडागमका उद्गमस्थान

प्रथम श्रुतस्कंधस्वरूप 'षट्खंडागम' शास्त्रके उद्गमस्थानका संक्षिप्त परिचय यहाँ दिया जा रहा है। इससे वाचकगण द्वादशांग जिनवाणीकी विशदता, गंभीरता व विस्तीर्णतासे अवगत हो सकें। इस प्रथम श्रुतस्कंधकी रचना सर्वप्रथम ज्येष्ठ शुक्ला-५को पूर्ण हुई व इस दिन चतुर्विध संघने माँ जिनवाणीकी बहुत ही भावविभोर होकर पूजा-भक्ति की। तबसे यह दिन श्रुतपञ्चमीके रूपमें मनाया जाता है। पूज्य गुरुदेवश्री व पूज्य बहिनश्रीके पावन प्रतापसे उन पूज्य पुरुषोंके समयसे यह पर्व षट्खंडागमादि सिद्धान्तग्रंथोंकी पूजा भक्ति सह स्वर्णपुरीमें बहुत ही आनंदोल्लासपूर्ण मनाया जाता है।

इस 'षट्खंडागम' ग्रंथमें आत्मा व कर्मके निमित्त–नैमित्तिक संबंधसे आत्माकी विविध अवस्थाओं द्वारा आत्माका विस्तृत स्वरूप बड़ी गंभीरतासे दिखाया गया है। ऐसे सिद्धान्तग्रंथोका हेतु व स्वाध्यायका फल सम्यग्ज्ञान–चंद्रिकाकार अनुसार अज्ञानका विनाश, सम्यग्ज्ञानकी उत्पत्ति, प्रतिसमय अनन्त गुणश्रेणी निर्जरा होना, तदुपरांत बाह्य अभ्युदय तथा निःश्रेयसताकी प्राप्ति होना है। इस ग्रंथकी रचना विक्रमकी दूसरी शताब्दीमें हुई है. ऐसा विद्वानोंका मत है। यह कोई एक धारावाहिक अखंड ग्रंथ नहीं है। परन्तु इसके छहों खंड, १२ अंगके अलग-अलग पूर्वके विषयोंसे बना है। इसलिए यह छ खंडोंका एक 'षट्खंडागम' नामक ग्रंथ बना है। इस 'षट्खंडागम' शास्त्र पर भगवान श्री कुंदकुंदाचार्यदेवने 'परिकर्म' नामक टीका लिखी थी, जो वर्तमानमें अनुपलब्ध है। भगवानश्री वीरसेनाचार्यदेवने ई.स. ७७०से ८२७के बीच इस ग्रंथ पर ७२ हजार श्लोक प्रमाण 'धवला' टीका लिखी है तथा भगवान श्री भूतबली आचार्यने इस ग्रंथके छठवे खंडकी ३०–४० हजार श्लोक प्रमाण 'महाधवल' नामक टीका लिखी है। ये सब ग्रंथाधिराज पूज्य गुरुदेवश्रीके पूर्व 'दर्शनीय' मात्र थे। कालकी कोई उत्तम विधिसे श्रुतलब्धिवंत पूज्य गुरुदेवश्रीके समयमें 'धवलादि' शास्त्र जो मूलप्रतके रूपमें गुप्त थे, वे प्रकाशित होकर प्रकाशमें आये।

अतः ऐसे ग्रन्थके अध्ययनसे हम सबको उक्त फलकी प्राप्ति हो–इसी भावनाके साथ 'षट्खंडागम' शास्त्रके उद्गमस्थानका संक्षिप्त परिचय यहाँ दिया जा रहा है।

महावीर भगवानकी दिव्यध्वनिको गौतम गणधर भगवन्तने १२ अंगोंमें निबद्ध की थी। उसमेंसे षट्खंडागमके कौनसे खंडोका कहाँसे उद्गम है, वह इस प्रकार है।

१२ अंग

- **व्याख्या प्रज्ञप्ति (५ वा अंग)** इसमेंसे षट्खंडागमका प्रथम खण्ड 'जीवस्थान'की गति-आगति चूलिकाके आधारसे बना है।
- **दृष्टिवाद अंग (बारहवाँ अंग)**
  - १. परिकर्म
  - २. सूत्र
    - षट्खंडागमका प्रथम खण्ड 'जीवस्थान'की सम्यक्त्वोत्पत्ति चूलिका इसके आधारसे बनी है।
  - ३. प्रथमानुयोग
  - ४. पूर्वगत
    - १. उत्पाद पूर्व
    - २. अग्रायणीय पूर्व
    - ३. वीर्यप्रवाद पूर्व
    - ४. अस्ति-नास्तिप्रवाद पूर्व
    - ५. ज्ञानप्रवाद पूर्व
    - ६. सत्यप्रवाद पूर्व
    - ७. आत्मप्रवाद पूर्व
    - ८. कर्मप्रवाद पूर्व
    - ९. प्रत्याख्यान-प्रवाद पूर्व
    - १०. विद्यानुवाद पूर्व
    - ११. कल्याणवाद पूर्व
    - १२. प्राणवाद पूर्व
    - १३. क्रियाविशाल पूर्व
    - १४. त्रिलोकबिंदुसार पूर्व
  - ५. चूलिका

२. अग्रायणीय पूर्व

अग्रायणी पूर्वमें १४ वस्तु अधिकार है—

१ पूर्वान्त, २ अपरान्त, ३ ध्रुव, ४ अध्रुव, ५ चयनलब्धि, ६ अधोपम, ७ प्रणिधिकल्प, ८ अर्थ, ९ भौम, १० व्रतादिक, ११ सर्वार्थ, १२ कल्पनिर्याण, १३ अतीतसिद्धबद्ध, १४ अनागतसिद्ध

प्रत्येक वस्तु अधिकारमें २० प्राभृत अधिकार है— (५ चयनलब्धि)

१ पहला प्राभृत, २ दूसरा प्राभृत, ३ तीसरा प्राभृत, ४ चौथा कर्मप्रकृति, ५ पांचवा प्राभृत, ६ छठा प्राभृत, ७ सातवां प्राभृत, ८ आठवां प्राभृत, ९ नववां प्राभृत, १० दसवाँ प्राभृत, ११ ग्यारहवां प्राभृत, १२ बारहवां प्राभृत, १३ तेरहवां प्राभृत, १४ चौदहवां प्राभृत, १५ पंद्रहवां प्राभृत, १६ सोलहवां प्राभृत, १७ सत्रहवां प्राभृत, १८ अठारहवां प्राभृत, १९ उन्नीसवां प्राभृत, २० वीसवां प्राभृत

उक्त संदृष्टिसे वाचकगणको यह स्पष्ट हुआ होगा, कि (१) १२वें दृष्टिवादअंगका अग्रायणी पूर्व व उसका 'कर्मप्रकृति प्राभृत' अति विशाल है, (२) 'षट्खण्डागम' शास्त्रका अधिकांश उद्गमस्थान यही 'कर्मप्रकृतिप्राभृत' है, (३) इस चौथा 'कर्मप्रकृति प्राभृत' है। इसकी गाथायें भगवान धरसेनाचार्यको कंटस्थ थी; तथा उसीके आधार पर 'षट्खण्डागम' की रचना भगवंत् पुष्पदंत व भूतवलि आचार्यने की है।

अग्रायणि पूर्वके चयनलब्धिरूप वस्तु अधिकारका चौथा कर्मप्रकृति प्राभृत अधिकार

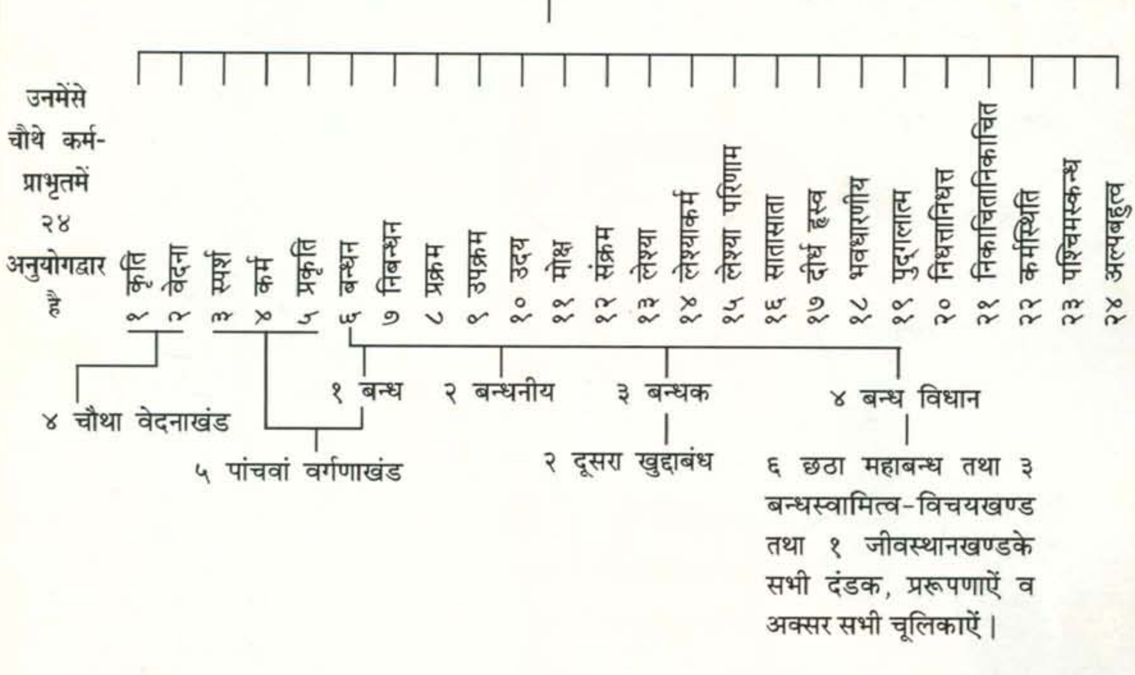

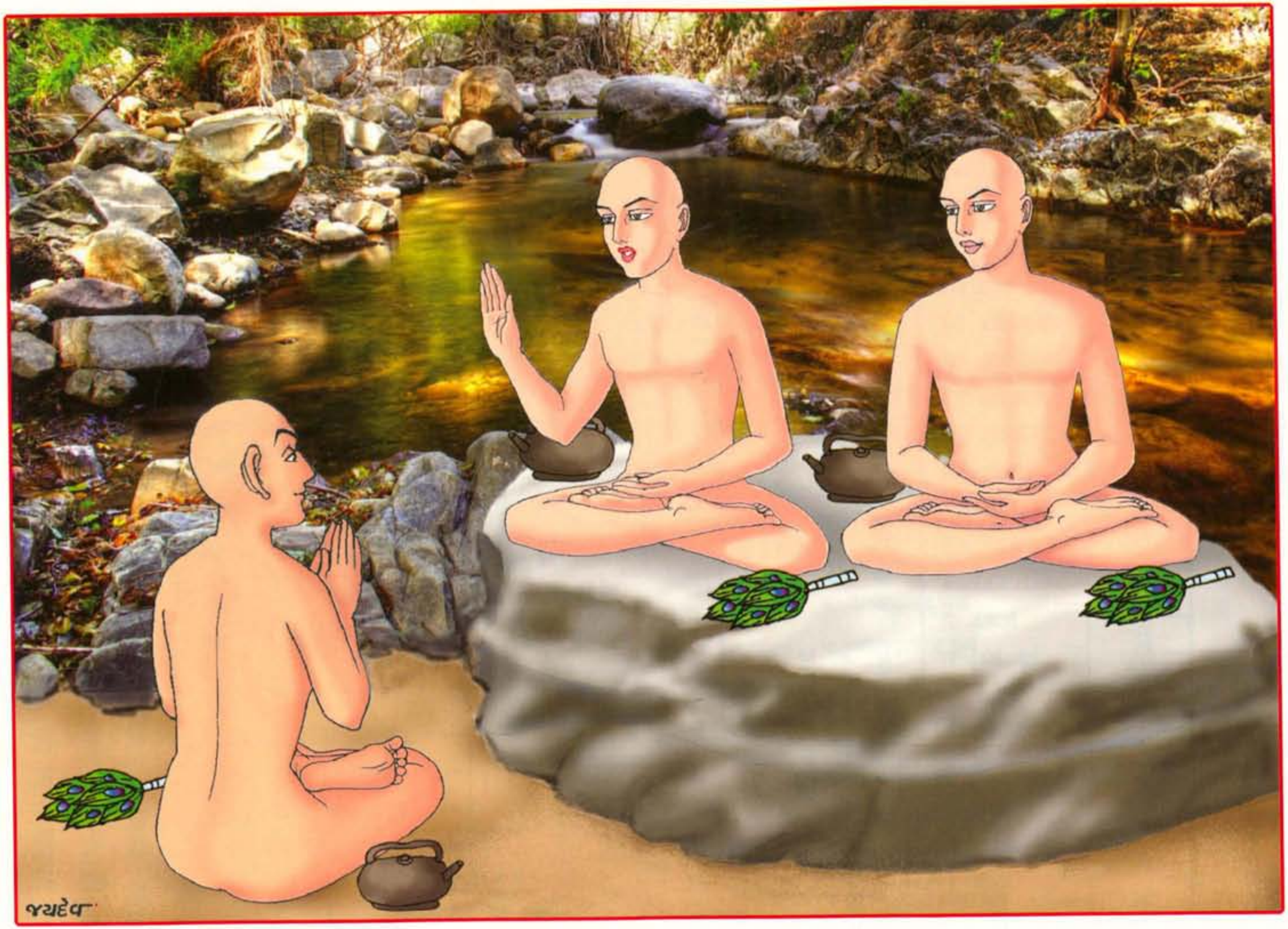

आचार्य शुभनन्दि व रविनन्दि द्वारा मुनिवर बप्पदेवजीको सिद्धान्तबोध

भगवान आचार्य

शुभनंदि व आचार्य रविनंदि

निज आत्माकी महिमामें सराबोरपनसे अतीन्द्रिय आनंदमें झुलते मुनिवरोंको निज आत्माकी स्वाभाविक पूर्णदशाके अलावा और कुछ नहीं भाता। अतः ऐसे मुनिवरेन्द्रोंने अपने बारेमें कहीं भी कुछ नहीं लिखा। इतिहासकार आपके बारेमें या तो किवदन्तीयोंसे या आपके पश्चात्‌वर्ती हुए आचार्योंने आपके बारेमें जो कुछ लिखा हो, उससे या आप द्वारा रचित अमूल्य धरोहररूप शास्त्रों द्वारा संशोधित करके परिचय देते हैं। आचार्य शुभनंदि व वीरनंदिके बारेमें ऐसा कुछ भी नहीं, कि जिनके आधारसे ऐसे श्रुतधर आचार्योंका जीवन जाना जा सके।

मात्र धवला टीकाके आधारसे इतना ही मिलता है कि आप अत्यंत कुशाग्रबुद्धिवंत महान श्रुतधर आचार्यवर थे। आप दोनों ही सिद्धान्तग्रंथके ज्ञाता थे। अतः उसके अंतर्गत आप षट्‌खंडागमके भी ज्ञाता थे। आप आचार्य बप्पदेवके शिक्षागुरु थे। आप दोनों ही समकालीन थे। आपको सिद्धान्तग्रंथोका ज्ञान गुरुपरम्परासे प्राप्त हुआ था।

आपसे ही सिद्धान्तग्रंथोंका अध्ययन करके भगवान आचार्यवर बप्पदेवजीने महाबन्धखण्डको छोड़कर पाँच खण्ड़ों पर 'व्याख्याप्रज्ञप्ति' नामक टीका लिखी। तत्पश्चात् उन्होंने छट्ठे खण्डकी टीका संक्षेपमें लिखी, बादमें कसायपाहुड पर भी टीका लिखी। जिसके आधार पर भगवान वीरसेनस्वामीने–धवला-जयधवला टीकामें आपको धवला-जयधवला टीकाके आद्यस्रोत माना है।

आप दोनोंने यद्यपि कोई स्वतंत्र ग्रंथ नहीं रचा होने पर भी 'व्याख्या-प्रज्ञप्ति'के रचयिता आचार्य बप्पदेवके आप गुरु थे। धवला व जयधवला टीकाके आद्यस्रोत होनेसे, आपको धवलाकारने बहुत ही आदरसे स्मृत किया, जिससे आपके बारेमें यत्‌किंचित् जाना जाता है।

इतिहासकारों अनुसार आप ईसुकी प्रथम शताब्दिके-मध्यपादवर्ती आचार्य थे।

व्याख्याप्रज्ञप्तिके उपदेशक आचार्यदेव शुभनन्दि व रविनन्दि भगवंतको कोटि कोटि वंदन।

भगवान आचार्य बप्पदेव

सिद्धान्त ग्रंथोंके ज्ञाता भगवान आचार्य बप्पदेव अपने समयके जाने माने आचार्य थे। शुभनंदि, रविनंदि व बप्पदेव आदिके नाम श्रुतधराचार्योंमें आते हैं। भगवान आचार्य शुभनन्दि और रविनन्दि नामके दो आचार्य अत्यन्त कुशाग्रबुद्धिके हुए हैं। इनसे आचार्य बप्पदेवने समस्त सिद्धान्तग्रन्थका अध्ययन किया।

आचार्य बप्पदेवने [१]वेलगाँव जिलेके अन्तर्गत उत्कलिका नगरीके समीप 'मगणवल्ली' ग्राममें उक्त दोनों गुरुवर्योसे सिद्धान्तका अध्ययन किया था। इस अध्ययनके पश्चात् आपने महाबन्धको छोड़ शेष पाँच खण्डोंपर व्याख्याप्रज्ञप्ति नामकी टीका लिखी और छटे खण्डकी संक्षिप्त विवृत्ति भी लिखी। इन छहों खण्डोंके पूर्ण हो जानेके पश्चात् आपने कसायप्राभृतकी एक उच्चारणा टीका भी रची।

इस भांति षट्खण्डोंमेंसे महाबन्धको पृथक् कर शेष पाँच खण्डोंकी 'व्याख्याप्रज्ञप्ति' नामक षट्खंड पर टीका भगवान आचार्यदेव बप्पदेवने लिखी। वीरसेन स्वामीने वट्टगाँव (बड़ौदा)में उक्त षट्खण्डोंमेंसे व्याख्याप्रज्ञप्तिको प्राप्त कर, उससे प्रेरित हो, सत्कर्म नामक छठे खण्डको मिलाकर छः खण्डोंपर धवला टीका लिखी। धवलाके अध्ययनसे ऐसा ज्ञात होता है, कि व्याख्याप्रज्ञप्ति प्राकृतभाषारूप पुरातन व्याख्या रही है। इस भांति आचार्य बप्पदेव सिद्धान्तविषयके मर्मज्ञ थे।

आचार्यवर बप्पदेवकी व्याख्याप्रज्ञप्तिके अलावा अन्य कोई भी रचना उपलब्ध नहीं है। फिर भी धवला एवं जयधवलामें आपके नामसे जो उद्धरण आते हैं, उनसे आपके वैदुष्यपर प्रकाश पड़ता है। षट्खंडागममें आपका यत्र-तत्र उल्लेख है। अतएव आचार्यके रूपमें 'बप्पदेव' अत्यंत प्रतिष्ठित हैं।

आप ईसुकी प्रथम शताब्दीके मध्यपाद कालमें हुए आचार्यदेव हैं।

व्याख्याप्रज्ञप्ति रचयिता आचार्यदेव बप्पदेव भगवंतको कोटि कोटि वंदन।

---

१ भागीरथी कृष्णानदीकी शाखा है और इनके बीचका प्रदेश बेलगाँव या धारवाड याने बेलगाँव जिला कहलाता है।

भगवान आचार्यदेव

श्री आर्यमंक्षु और नागहस्ति

आचार्यवर आर्यमंक्षु और नागहस्ति दिगम्बर एवं श्वेताम्बर दोनों परम्पराओंमें सन्मानित हैं। इतना ही नहीं दिगम्बर आम्नायमें आपका स्थान भगवान आचार्यवर पुष्पदंत व भूतबलि मुनिवरके समकक्ष, समकालीन व भिन्न-भिन्न गुरुपरम्पराके आचार्यके रूपमें रहा है। जयधवला शास्त्रमें बताया है, कि 'विपुलाचलके ऊपर स्थित भगवन् महावीररूपी दिवाकरसे निकली वाणी गौतम, लोहार्य, जम्बूस्वामी आदि आचार्यपरम्परासे आकर ये कसायपाहुड़के गाथासूत्र गुणधराचार्यको प्राप्त होकर, गाथारूपसे परिणमन करके, पुनः आर्यमंक्षु और नागहस्ति आचार्यके द्वारा आर्य यतिवृषभको प्राप्त होकर, चूर्णिसूत्ररूपसे परिणत हुई है। ऐसी यह दिव्यध्वनि किरणरूपसे अज्ञान अन्धकारको नष्ट करती है'। इससे स्पष्ट है, कि ये दोनों आचार्य अपने समयके कर्मसिद्धांतके महान वेत्ता और आगमके पारगामी थे तथा वे भगवान महावीरसे चली आई आचार्यपरम्परासे अभिन्न थे। इतना ही नहीं, धवला टीकाके आधारसे वे [१]'क्षमाश्रमण' और [२]'महावाचक'के रूपमें बहुमानित रहे हैं। यह ही उनके सिद्धान्तविषयक विद्वत्ताको सूचित करता है।

भगवान आचार्यदेव वीरसेनस्वामीने धवला व जयधवला टीकामें विविध स्थलों पर, आप उभय आचार्यवरोंकी जो विविधरूपसे महत्ता प्रदर्शित की है, उससे ज्ञात होता है, कि आप न केवल ' क्षमाश्रमण' व 'महावाचक' थे; पर जिनेन्द्रसिद्धान्तोंके मर्मज्ञ व व्याख्याता भी थे। साथ-साथमें आपके वचन भगवान महावीरकी दिव्यध्वनिके साथ एकरसतायुक्त थे। आप दोनोंकी पूर्वोत्तर अवधिको गौण करें, तो आप दोनों समकालिन थे।

गुणधर आचार्य द्वारा भगवान महावीरकी दिव्यध्वनिसे विनिर्गत १४ पूर्वोंमेसे पाँचवे पूर्व-'ज्ञानप्रवादपूर्व', 'पेज्जदोषपाहुड़' व 'महाकम्मयपाहुड़'का आपने ज्ञान प्राप्त कर यतिवृषभ आचार्यको देनेसे 'कसायपाहुड़' ग्रंथमें यतिवृषभ आचार्यने गाथाबद्ध चूर्णिसूत्र रचे जिससे यह महान ग्रन्थ जीवोंको बोधगम्य हो सका।

---

१. क्षमाश्रमण = मुनिओंकी उत्तमतादर्शक एक उपाधि।

२. महावाचक = मुनिओंकी उत्तमतादर्शक एक उपाधि।

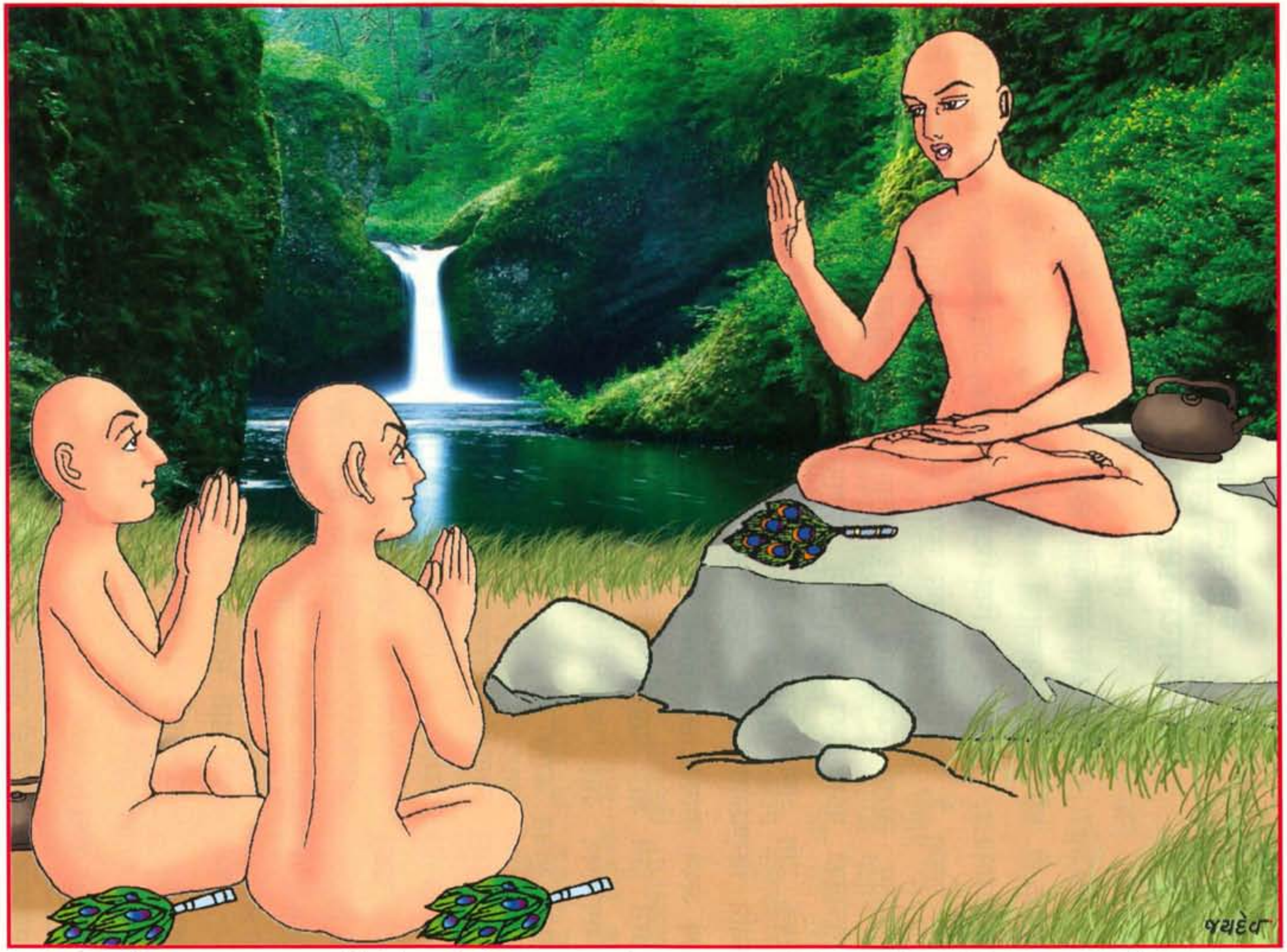

श्री गुणधर आचार्यसे पेज्जदोषपाहुडका उपदेश प्राप्त करते आचार्य आर्यमंक्षु व नागहस्ति

यद्यपि आचार्यवर यतिवृषभने अपने कसायपाहुड़के चूर्णिसूत्रोंमें आर्यमंक्षु और नागहस्तिको गुरुके रूपमें उल्लिखित नहीं किया है और न अन्य किसी आचार्यको अपने गुरुके रूपमें उल्लेख किया है। फिर भी आचार्य इन्द्रनन्दिके श्रुतावतार ग्रंथमें आर्यमंक्षु और नागहस्तिको गुणधराचार्यका शिष्य बताया गया है। यह परम्परारूपसे शिष्यत्व हो ऐसा प्रतीत होता है। कषायपाहुड़ ग्रंथकी टीका जयधवलामें उल्लेख है कि, 'गुणधरके मुखकमलसे निकली हुई गाथाओंके अर्थको जिनके ***पादमूलमें*** सुनकर यतिवृषभने चूर्णिसूत्र रचे'। अतः इस परसे यह स्पष्ट होता है, कि इन दोनों आचार्योंके परम्परा गुरु गुणधराचार्य होंगे। गुणधराचार्यने कसायपाहुडकी सूत्रगाथाओंको रचकर स्वयंहीने उनकी व्याख्या करके आर्यमंक्षु और नागहस्तिको पढ़ाया व आचार्यवर आर्यमंक्षु और नागहस्तिके पादमूलमें रहकर आचार्य यतिवृषभने 'कसायपाहुड़'के चूर्णिसूत्र रचे।

इतिहासकारोंका मानना है, कि गुणधराचार्य द्वारा विर्निगत पेज्जदोषपाहुड़की १८० गाथा परसे नागहस्ति आचार्यने उसे २३३ गाथामें लिपिबद्ध किया हो, अथवा गुणधराचार्य द्वारा ही २३३ गाथा विनिर्गत हुई हों, जिसे नागहस्ति आचार्यने लिपिबद्ध किया हो या आचार्य यतिवृषभने चूर्णिसूत्रों सह लिपिबद्ध किया हो।

आप दोनों आचार्यवरोंका महान् गुणधर आचार्यसे सीधा संबंध होने या प्रवाहरूप संबंध होनेके लिए विविध उल्लेख शास्त्रमें मिलते हैं, परन्तु विद्वत वर्ग उसमें एकमत नहीं है, फिर भी उन सब उल्लेखों परसे यह तो स्पष्ट हो जाता है, कि आचार्यदेव आर्यमंक्षु व नागहस्तिका आचार्य गुणधरदेवसे सीधा संबंध होनेके बारेमें सुस्पष्टतया 'ना' नहीं कहा जा सकता है। पर तीनोंके काल परसे यह योग्य प्रतीत नहीं होता है।

उभय आचार्यवरोंके बारेमें श्वेताम्बर परम्परासे कतिपय जानकारी मिलती है। जैसे : (१) श्वेताम्बर आम्नायी नन्दिसूत्रकी पट्टावलीमें आचार्य आर्यमंक्षुका परिचय देते हुए लिखा है, कि 'वे सूत्रोंके अर्थव्याख्याता हैं, साधुपदोचित क्रियाकलापके करनेवाले हैं, धर्मध्यानके ध्याता व विशिष्ट अभ्यासी हैं, धीर-वीर हैं, परीषह और उपसर्गोंको सहन करनेवाले हैं एवं श्रुतसागरके पारगामी हैं'।

(२) इसी नन्दीसूत्रकी पट्टावलीमें आचार्य नागहस्तिका परिचय देते हुए लिखा है, कि 'वे संस्कृत और प्राकृत भाषाके व्याकरणोंके वेत्ता हैं, करणभंगी अर्थात् पिण्डशुद्धि, समिति, भावना, प्रतिज्ञा, इन्द्रियनिरोध, प्रतिलेखन और अभिग्रहकी नानाविधियोंके ज्ञाता हैं और कर्मप्रकृतियोंके प्रधानरूपसे व्याख्याता हैं।'

उक्त दोनों उल्लेखों परसे आर्यमंक्षु और नागहस्तिके व्यक्तित्वके सम्बन्धमें निम्नलिखित निष्कर्ष फलित होते हैं— १. ये दोनों आचार्य सिद्धांतके मर्मज्ञ थे। २. श्रुतसागरके पारगामी थे। ३. सूत्रोंके अर्थव्याख्याता थे। ४. गुप्ति, समिति और व्रतोंके पालनमें सावधान तथा परिषह और उपसर्गोंको सहन करनेमें पटु थे। ५. वाचक और प्रभावक भी थे। ६. आप उभय उपकारी सन्तोंका उस समय ऐसा अपूर्व प्रभाव होगा, कि आप स्वयं दिगम्बर आम्नायी आचार्य होने पर भी श्वेताम्बर आम्नायके साधुगण भी आपको सन्मानसे देखते थे।

जयधवलाके कुछ उल्लेखोंसे यह भी प्रतीत होता है, कि आचार्य आर्यमंक्षु व आचार्य नागहस्ति दोनों विभिन्न गुरुसंप्रदायके आचार्य होनेसे कुछ विषयों पर दोनोंके मत भिन्न-भिन्न थे।

ग्रंथ धवला और जयधवलामें आचार्यवर आर्यमंक्षु और नागहस्तिका उल्लेख जिस क्रममें आया है। उससे यह भी ध्वनित होता है, कि आर्यमंक्षु नागहस्तिसे ज्येष्ठ गुरुभ्राता थे। इसलिये उनका नाम प्रथम रखा गया है और नागहस्तिका पश्चात्। पुन्नाटसंघकी गुर्वावलीके अनुसार आचार्यवर नागहस्ति आचार्यवर व्याघ्रहस्तिके शिष्य व आचार्य जितदण्डके गुरु थे।

इतिहासकारोंनुसार आचार्य आर्यमंक्षुके शिष्य आचार्य यतिवृषभ थे। यतिवृषभ आचार्य, आचार्य नागहस्तिके अंतेवासी थे। इतिहासकारों अनुसार आचार्य आर्यमंक्षु व आचार्य नागहस्तिका काल क्रमशः वी.नि. ६००-६५० अर्थात् ई.स. ७३ से १२३ व वी.नि. ६२० से ६८७ अर्थात् ई.स. ९३ से १६२ माना जाता है।

आचार्यदेव आर्यमंक्षु व नागहस्ति भगवंतको कोटि कोटि वंदन।

भगवान आचार्यदेव

श्री जिनचन्द्रस्वामी

आचार्य अर्हद्बलि तक भगवान महावीरका शासन मूलसंघके रूपमें अक्षुण्ण चलता रहा व उनके गुरु लोहाचार्य तक तो अंगश्रुतज्ञानका प्रवाह चलता रहा, बादमें अंगके कुछ-कुछ अंशोंका ज्ञान रहा। इस तरह आचार्य अर्हद्बलिके काल तकमें मुनि भगवंतोंके श्रुतज्ञानकी क्रमशः हानि होते जानेसे यतियोंमें कुछ पक्षपातकी गंध देखकर, पक्षपातकी स्थिति समाप्त करने हेतु, अर्हद्बलि आचार्यने पंचवर्षीय युग-प्रतिक्रमणके समय नन्दिसंघ आदि संघोकी स्थापना की थी। उसमें नन्दिसंघके प्रथम आचार्य माघनन्दीके शिष्यके रूपमें आचार्य जिनचंद्रजीका नाम आता है। वैसे तो जिनचन्द्र नामक कई आचार्य हुए हैं, पर उनमेंसे सर्वोच्च नाम आचार्य माघनन्दिके शिष्य जिनचन्द्रजीका है।

आपके कालमें ही श्वेताम्बर सम्प्रदायमें भी एक जिनचन्द्र साधु भी हुए हैं, पर ये इनसे भिन्न हैं। आप बहुश्रुत पारगामी थे। आपके विषयमें विशेष कोई जानकारी नहीं है, न आपका रचित कोई शास्त्र उपलब्ध है। पर आप भगवान कुन्दकुन्दाचार्यके गुरु होनेसे व नन्दिसंघकी पट्टावलिमें उग्र तपश्चर्यावंत तपस्वीके रूपमें आपका नाम बड़े आदरसे लिया गया है। आप वी.नि. ६१४से ६५४ (ई.स. ८७–१२७)के अरसेमें वीरप्रभुके समीचीन शासनको चन्द्रकी भाँति उद्योत फैलानेवाले होनेसे आपका 'जिनचन्द्र'–नाम सार्थक था। सकल संघमें आप अपने गुरु माघनन्दि आचार्यके अत्यंत विश्वासपात्र थे। अतः माघनन्दि आचार्यने स्वयं अपने हाथोंसे वी.नि. ६१४ (ई.स. ८७)में आपको संघके पट्ट पर आसीन कर दिया व आपका संघ आपकी छत्र-छायासे ज्ञान व चारित्रमें उन्नत होने लगा। इस घटनाके कुछ वर्ष पश्चात् ही ११ वर्षकी छोटी उम्रमें भगवान कुन्दकुन्ददेवने आपसे दीक्षा धारण की।

वैसे पट्टावलीयों अनुसार आपका काल वी.नि. ६१४–६५४ (ई.स. ८७-१२७) इतिहासकार मानते हैं। जो कुछ भी हो, आप ई.स. १२७के पूर्वके आचार्य हैं।

आचार्य कुन्दकुन्ददेवके दाता श्री जिनचन्द्राचार्य भगवंतको कोटि कोटि वंदन।

भगवान आचार्यदेव

श्री कुंदकुंदस्वामी

दिगम्बर जैनाचार्योंमें कुंदकुंदाचार्यका नाम सर्वोपरि है। मूर्तिलेखों, शिलालेखों, ग्रन्थप्रशस्तिलेखों एवं पूर्वाचार्योंके संस्करणोंमें कुंदकुंदस्वामीका नाम बड़ी श्रद्धाके साथ लिखा मिलता है।

मंगलम् भगवान वीरो, मंगलम् गौतमो गणि।
मंगलम् कुंदकुंदार्यो, जैनधर्मोऽस्तु मंगलम्॥

इस मंगल पदके द्वारा भगवान महावीर और उनके प्रधान गणधर गौतमस्वामीके बाद कुंदकुंदस्वामीको मंगल कहा गया है। इनकी प्रशस्तिमें कविवर वृंदावनदासजी लिखते हैं–

'हुए न, हैं न, होंहिगे मुनिंद कुन्दकुन्द से॥

इस तरह भगवान महावीरके निर्वाण पश्चात् केवली, श्रुतकेवली, अंगों व पूर्वोंके ज्ञाता, अंगों व पूर्वोंके एकदेश ज्ञाता—ऐसे अनेकानेक महान्-महान् आचार्य दिगम्बर जिनशासनमें हुए हैं, फिर भी गौतम गणधरके पश्चात् उन किन्हीं आचार्यवरका नाम न लेकर भगवान कुन्दकुन्दाचार्यका नाम ही मंगलाचरणमें लिया जाता है—जिससे यह सूचित होता है, कि ये धर्म स्थंभस्वरूप, महासमर्थ आचार्यवर थे। आपने ही जिनशासनकी आधारशिला-स्वरूप, परमामृतमय अध्यात्म-ज्ञानसे जिनशासनको इस कलिकालमें अक्षुण्णतया टिका रखा है। यह ही आपका महान उपकार है। आपके पश्चातवर्ती आचार्यने आपको 'कलिकाल सर्वज्ञ' भी स्वीकृत किया है। द्रव्यानुयोगके प्रधान ग्रंथ रचकर वीर शासनका शुद्धात्मानुभूति प्रधान मोक्षमार्ग व तीर्थंकरदेवों द्वारा प्ररूपित उत्तमोत्तम सिद्धान्तोंको विच्छेद होनेसे आपने ही बचा लिया है, जिससे इस दुषमकालमें भी मोक्षमार्गको अक्षुण्णरूपसे आपने ही टिकाया है।

श्री कुंदकुंदाचार्यदेवके बारेमें यह किवदंती है, कि पूर्वभवमें एक ग्वाला सेठके यहाँ रहता था और गायोंको चराने ले जाता था। गायोंको चराते समय, उसने वहाँ एक मुनिराज भगवंतको ध्यानमें बैठा देखा। प्रथम तो उसे लगा, कि यह कोई दरिद्री है, परन्तु जब मुनिराजके दर्शन करने राजा-महाराजा-श्रेष्ठीवर्गको आते देखकर उसे मुनिराजमें कोई अद्‌भुत

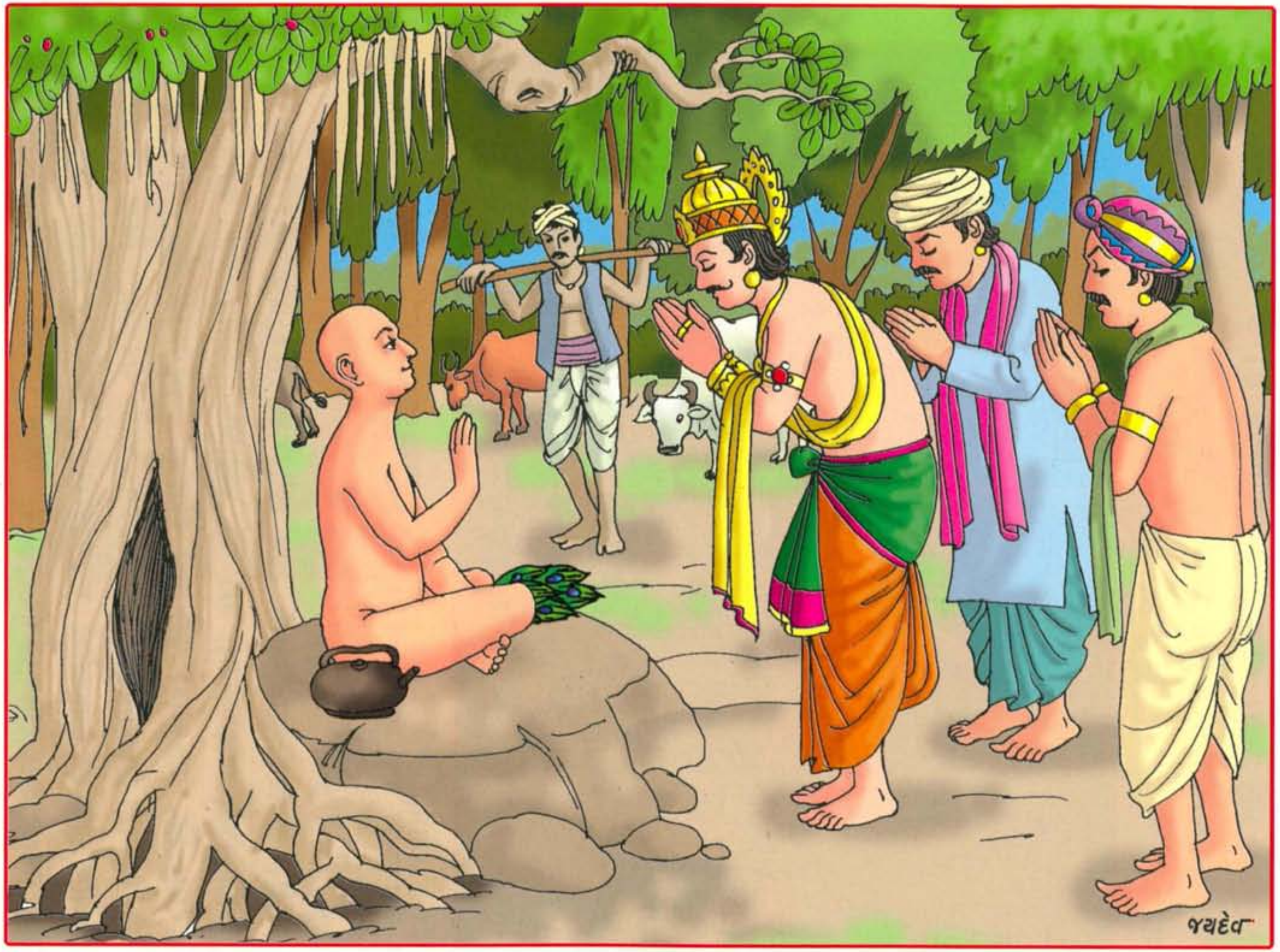

ग्वाला एक मुनिराजको राजा, श्रेष्ठी आदि द्वारा दर्शन करते हुए देख रहा है।

महात्म्य लगा। अतः वह प्रतिदिन जंगलमें गायोंके चरते समय मुनिराजके चरणोंमें बैठ जाता और मुनिभगवंतकी मुद्रा मेढ़ेकी भाँति देखा ही करता। उसे मुनिराजकी वीतरागी मुद्रा देखकर अतिशय बहुमान आने लगा। मुनिभगवंत कुछ लिखते थे। वे लिखे ताड़पत्र वहीं पेड़की कोटरमें रख देते थे। ग्वाला प्रतिदिन घंटों तक मुनिभगवंतको इस तरह बड़े भावसे निरखा करता था।

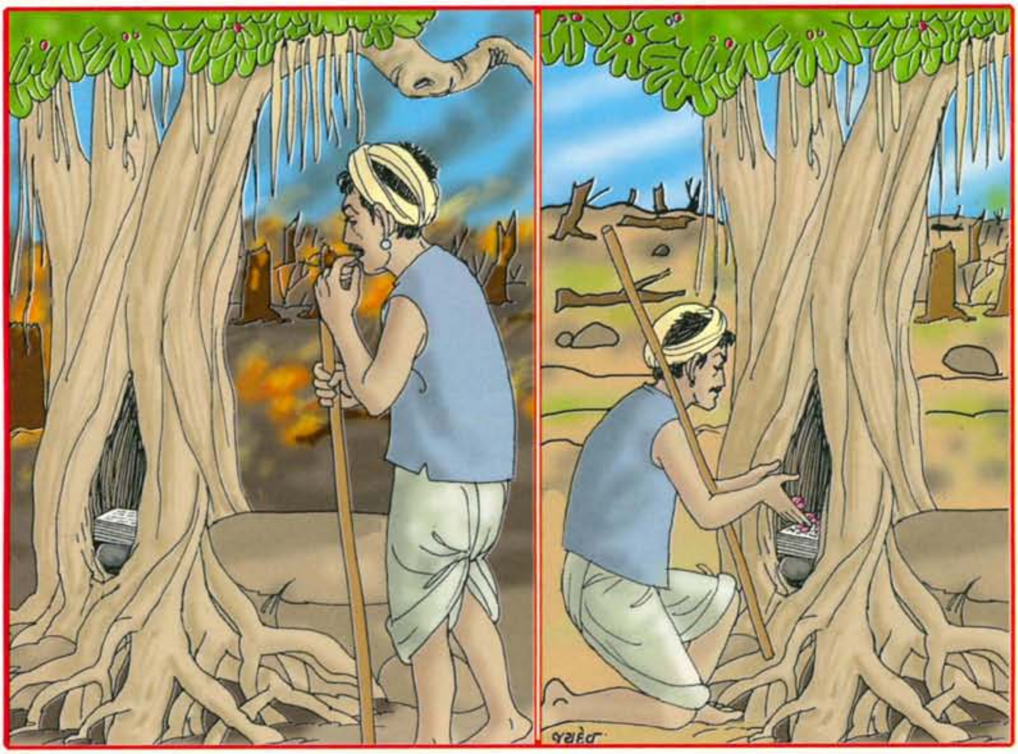

मुनिराज जिस वृक्षके नीचे ध्यान करते थे उस वृक्षकी कोटरमें ताड़पत्र होनेसे जंगलमें दाह लगने पर भी वह वृक्ष सुरक्षित रहा, अतः ग्वाले द्वारा कोटरमें लिखित पत्ते पर पुष्प चढ़ाना

किसी एक दिन उस जंगलमें आग लगी। वृक्ष सब जल गये। आग शांत होने पर वह उसी वृक्षके पास आया, जहाँ वह मुनिराजको अक्सर देखा करता था। उसने आश्चर्यसे देखा, कि उस वृक्षको कुछ नहीं हुआ था। वृक्षमें रखे हुए ताड़पत्र पर लिखित पत्रोंको भी वैसा ही पाया। उसको पढ़ना नहीं आता था। अतः किसी योग्य व्यक्तिको दूँगा, यह सोच वह उन ताड़पत्रोंको बडे श्रद्धाभावसे लेकर घर पर आ गया। उसे घरके एक आलेमें बडे आदरसे रखा। प्रतिदिन उसकी भक्ति, आरती, पूजा, अर्चना आदि करने लगा।

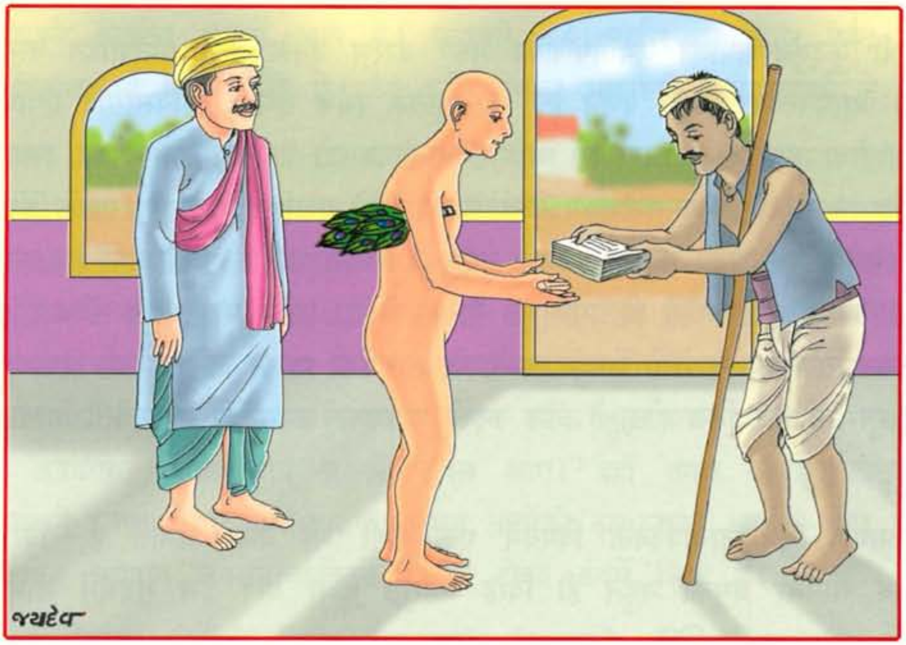

(सेठके यहाँ) मुनिराजके आहार पश्चात् ग्वाले द्वारा मुनिराजको ताडपत्र अर्पण

किसी एक दिन कोई महामुनिराज उस सेठके घर आहार हेतु पधारे थे। सेठने मुनिभगवंतको नवधा भक्तिपूर्वक आहारदान देनेके पश्चात् मुनिराजने सेठको कुछ प्रयोजनभूत तत्त्वका उपदेश दिया। उस समय ग्वाला भी वहीं था। उसने मुनिभगवंतका बडी श्रद्धासे आहारदान देखा। उपदेश सुना। तब उस ग्वालेने अपने घरमें विराजित ताड़पत्रोंको लाकर मुनिभगवंतको दिये और कहा, 'भगवन्! मैं इसे नहीं पढ़ सकता, आप इसे पढ़ सकेंगे, ऐसा कहकर सारा वृतांत सुनाया।'

सेठके यहाँ बालक(ग्वालेके जीव)का जन्म।
(ये ही हमारे कुंदकुंदाचार्य होंगे)

ऐसे मुनिराज व जिनवाणीके प्रति बड़े आदर, श्रद्धावंतताके फलस्वरूप वही ग्वाला दूसरे भवमें उसी सेठके यहाँ पुत्ररत्नके रूपमें जन्मा। वह ग्वाला और कोई नहीं, पर अपने महान आचार्यवर कुंदकुंदाचार्यदेव थे। पूर्वभवमें मुनिभगवंत तथा जिनवाणीकी श्रद्धाभक्तिके फलस्वरूप उन्हें श्रुतकी अपूर्व लब्धि प्राप्त हुई थी।

श्री कुंदकुंदस्वामीकी जयघोषणाका मुख्य कारण उनके द्वारा प्रतिपादित वस्तुतत्त्वका, विशेषतया आत्मतत्त्वका विशद वर्णन है। स्वानुभूतिके स्थंभ समान समयसारादि ग्रंथोंमें उन्होंने परसे भिन्न तथा स्वकीय गुण-पर्यायोंसे अभिन्न आत्माका जो वर्णन किया है वह अन्यत्र दुर्लभ है। उन्होंने उन ग्रंथोंमें अध्यात्मधारारूप जिस मंदाकिनीको प्रवाहित किया है, उसके शीतल और पावन प्रवाहको अवगाहनकर भवभ्रमण श्रान्त मुमुक्षुवृंद शाश्वत शांतिको प्राप्त करते हैं। उनके शास्त्र साक्षात् गणधरदेवके वचन जैसे ही प्रमाणभूत माने जाते हैं। उनके पश्चात् हुए ग्रंथकार आचार्योंने अपना कथन सिद्ध करनेके लिये कुंदकुंदाचार्यदेवके शास्त्रोंका प्रमाण अनेक जगह दिया है, जिससे उनका कथन निर्विवाद सिद्ध होता है और उनकी परंपराका कहलानेमें पश्चात्वर्ती आचार्य अपना गौरव अनुभवते हैं।

आचार्य कुंदकुंदाचार्यदेवके विषयमें एक ऐसी भी कथा चलती है, कि आपको विदेहक्षेत्रस्थ सीमंधर प्रभुका बहुत ही विरह महसूस हुआ था। इस संदर्भमें सीमंधरप्रभुकी दिव्यध्वनिमें **"सद्धर्मवृद्धिः अस्तु"** आया था। सभामें लोगोंको आश्चर्य होता है, कि यह संधिहीन ध्वनि परिषदमें क्यों आई? उस समय वहाँ बैठे भगवान कुंदकुंदाचार्यदेवके

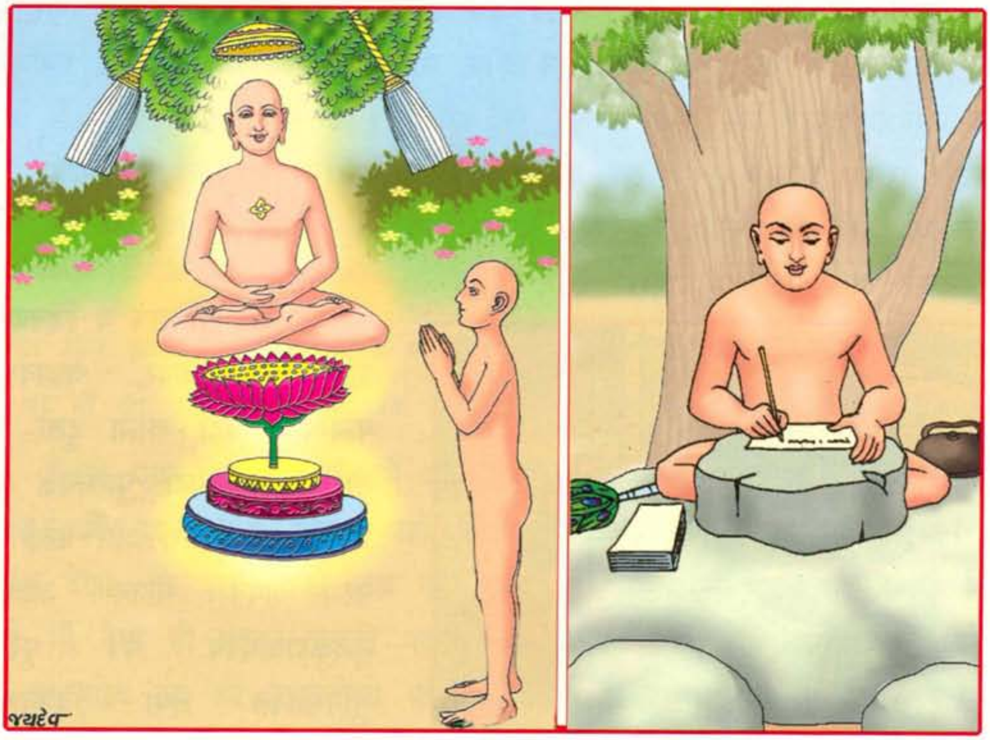

श्री कुंदकुंदाचार्यदेवका विदेहस्थ सीमंधर भगवानके समवसरणमें जाना व वहाँसे आकर समयसारादि ग्रंथोंकी रचना करना

कोई पूर्वभवके मित्रदेव भरतमें आये थे। मद्राससे ८० माईल दूर पोन्नूर पर्वत है। वहाँ भगवान कुंदकुंदाचार्य ध्यानमें बैठे थे। देव उन्हें सीमंधर भगवानके समवसरणमें ले जाते हैं।

अन्य स्थल पर ऐसा भी आता है, कि पुण्य और पवित्रतामें समृद्ध ऐसे भगवान कुंदकुंदाचार्यदेवको प्रकट हुई आकाशगामिनी ऋद्धिसे वे सीमंधर भगवानके समवसरणमें गये थे। तब चक्रवर्तीने विस्मयतासे भगवानको पूछा, कि हे नाथ! 'छोटेसे देहयुक्त दिगम्बर मुनिराज ऐसे 'वे कौन हैं?' लोग उन्हें देख ही रहे थे, उस समय प्रभुकी ध्वनिमें आया, कि 'ये भरतक्षेत्रके समर्थ आचार्य हैं।' ऐसा सुनकर जयघोष सह नगरीमें उत्सव हुआ। सप्ताहभर प्रभुके श्रीमुखसे विनिर्गत दिव्यध्वनि श्रवण करके शुद्धात्मतत्त्व आदि सारभूत अर्थोंको ग्रहण व अवधारित करके आप भरतमें वापस आए। वहाँ श्रवण की हुई दिव्यध्वनिकी खुमारमें आपने प्रवचनसारादि ग्रंथोंमें उन सारभूत तत्त्वोंको ठुस-ठुसकर भव्योंके लिए भर दिये। ऐसे ही भाव भगवान जयसेनाचार्यदेवने उनकी टीका ग्रंथमें लिखें हैं।

आचार्य शुभचन्द्रजीने गुर्वावलिके अतमें लिखा है, कि श्री कुंदकुंदाचार्यदेवने ऊर्जयन्तगिरिमें पाषाण निर्मित सरस्वतीकी मूर्तिको वाचाल कर दिया था, जिससे आपके गच्छका नाम 'सारस्वत' अर्थात् 'सरस्वती गच्छ' पड़ा था। चार अंगुल पर आकाशगमनकी ऋद्धि आपको प्राप्त थी। ऐसा शिलालेखों आदिमें आता है।

भगवान जयसेनाचार्यदेवानुसार आप कुमारनन्दि सिद्धान्तिदेवके शिष्य थे। उस परसे ऐसा भी लगता है, कि कुमारनन्दि सिद्धान्तिदेव आपके विद्यागुरु–दीक्षागुरु हो व भगवान जिनचन्द्रस्वामीने आपको आचार्यपदवीसे सुशोभित किया हो।

'पद्मनंदी, कुंदकुंदाचार्य, एलाचार्य, वक्रग्रीवाचार्य, और गृध्रपिच्छाचार्य' इन पाँच नामोंसे आप युक्त थे। पद्मनंदी आपका दीक्षाका नाम है। आचार्य इन्द्रनन्दीने आचार्य पद्मनन्दीको कुण्डकुन्दपुरका बतलाया है। श्रवणबेलगोलाके कितने ही शिलालेखोमें आपका कोण्डकुन्द नाम लिखा है। गुण्टकल रेलवे स्टेशनसे दक्षिणकी ओर लगभग ८ कि. मी. पर एक कोनकुण्डल नामका स्थान है, जो अनन्तपुर जिल्लेके गुटी तालुकेमें स्थित है। शिलालेखमें उसका प्राचीन नाम 'कोण्ड्कुन्दे' मिलता है। यहाँके निवासी इसे आज भी 'कोडकुन्दी' कहते हैं। बहुत कुछ संभव है, कि कुंदकुंदाचार्यका जन्मस्थान यही हो और इसी कारण आपका नाम 'कुंदकुंद'रूपसे प्रसिद्ध है। श्री कुंदकुंदाचार्यदेव विदेहक्षेत्रमें 'इलायची' जैसे प्रतीत होते थे। अतः आपको लोग एलाचार्य भी कहने लगे। कहा जाता है, कि शास्त्र लिखते समय आपकी ग्रीवा थोड़ीसी टेढ़ी हो गई थी, अतः लोग आपको वक्रग्रीवाचार्य भी कहते थे तथा ऐसा आता है, कि विदेह जाते समय

मोरपिच्छ गिर जानेसे आपने 'गृद्धपिच्छोंकी पींछी अंगीकार की थी। अतः आपको लोग गृध्रपिच्छाचार्यसे भी जानते थे।

भगवान कुंदकुंदाचार्यदेव शक संवतकी पहली शताब्दीके विद्वान थे। आपका गिरनार सिद्धक्षेत्र पर श्वेताम्बर साधुओंसे वाद हुआ था व उसमें आपने दिगम्बर जिनधर्मको प्राचीन व सत्य सिद्ध किया था।

दिगम्बर जैन ग्रंथोंमें भगवान कुंदकुंदाचार्य रचित ग्रंथ अपना अलग प्रभाव रखते हैं। उनकी वर्णन शैली ही इस प्रकारकी है, कि पाठक उससे वस्तुस्वरूप, आत्मा और आत्मानुभवको बड़ी सरलतासे ग्रहण कर लेते हैं। व्यर्थके विस्तारसे रहित, नपे-तुले शब्दोंमें किसी बातको कहना इन ग्रंथोंकी विशेषता है। भगवान कुंदकुंदाचार्यकी वाणी सीधी हृदय पर असर करती है।

निम्नांकित ग्रंथ भगवान कुंदकुंदाचार्य द्वारा रचित निर्विवाद रूपसे माने जाते हैं तथा जैन समाजमें उनका सर्वोपरि स्थान है। १. समयसार, २. प्रवचनसार, ३. नियमसार, ४. पञ्चास्तिकायसंग्रह, ५. दर्शन-पाहुड, ६. सूत्रपाहुड, ७. चारित्रपाहुड, ८. बोधपाहुड, ९. भावपाहुड, १०. मोक्षपाहुड, ११. लिंगपाहुड, १२. शीलपाहुड, आदि ८४ पाहुड १३. वारसअणुपेक्खा, १४. भक्तिसंग्रह, १५. १२००० श्लोक प्रमाण परिकर्म (षट्खंडागम टीका), तथा रणयसार ग्रंथ भी आपका माना जाता है।

भगवान कुंदकुंदाचार्यदेवने ११ वर्षकी उम्रमें भगवती जिनदीक्षा ली थी। ३३ वर्ष पश्चात् शक सं. ४९ (ई.स. १२७) पोष कृ. ८को भगवान जिनचन्द्रस्वामी आचार्यदेवने चतुर्विध संघकी उपस्थितिमें आचार्यपदवीसे आपको अनुगृहीत किया था। पश्चात् वे ५१ वर्ष १० मास तक विराजित रहे। आपकी कुल आयु ९५ वर्ष, १० मास व १५ दिनकी थी। अतः आपका काल ई.स. १२७-१७९ माना जाता है।

विदेहक्षेत्रमें साक्षात् कुंदकुंदाचार्यके दर्शन करनेवाले राजपुत्र फतेहमंदकुमार भरतमें पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामीके रूपमें पधारे। उनको आपके समयसार शास्त्रकी ऐसी असर हुई, कि समयसार मिलनेकी अल्पावधिमें ही उन्होंने निर्मल स्वानुभूति प्राप्त की। इतना ही नहीं, आपके ग्रंथों पर पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामीने किए प्रवचनोंकी अद्भुत असरसे, समग्र भारतवर्षका जैन समाज यत्किंचित् अपने पुरुषार्थ अनुसार आत्म-हितमें रुचिवंत बन रहे हैं। यह सब भगवान कुन्दकुन्ददेवका ही उपकार है। भगवान कुंदकुंदाचार्यदेवके ही धर्मतीर्थको कहानगुरुने चेतनवंत बनाया।

ऐसे महासमर्थ भावलिंगत्वके तादृश स्वरूप भगवान कुंदकुंदाचार्यदेवको कोटि कोटि वंदना।

भगवान आचार्यदेव

श्री वट्टकेरस्वामी

भगवान महावीरस्वामीके पश्चात् हुए महान आचार्योंमें भगवान आचार्यदेव वट्टकेरस्वामी भी अपने एक मात्र ग्रंथ 'मूलाचार'की रचनासे प्रसिद्ध हैं।

आचार्यदेव वसुनन्दिकी संस्कृत टीकाके आधार पर आपका नाम 'वट्टकेर', 'वट्टकेय', 'वट्टेरक' आदिके रूपमें उल्लखित हैं। यद्यपि आपका इन नामोंमेंसे कोई भी नाम किन्हीं पट्टावलियों या गुर्वावलियों आदिमें उपलब्ध नहीं है, फिर भी आचार्यदेव वसुनन्दिके मतानुसार आपका नाम वट्टकेरस्वामी स्पष्टरूपसे ऊभरकर आता है।

आपकी रचना 'मूलाचार'की कई गाथायें श्वेताम्बर ग्रंथ उत्तराध्ययन व दशवैकालिकमें मिलती है, इस परसे यह सिद्ध होता है, कि यह 'मूलाचार' ग्रंथ प्राचीन है, क्योंकि जिस समय ऐसा काल था, कि मुनि आचारादि संबंधित बहुत कुछ विचारधारा जो दिगम्बर आचार्योंकी थी, वही श्वेताम्बर आचार्योंको भी इष्ट थी, क्योंकि दोनों संप्रदायोंको अलग-अलग हुए बहुत समय नहीं हुआ था।

आपका नाम किन्हीं पट्टावलियोंमें नहीं प्राप्त होनेसे, व गाथाओंकी भाषाशैली आदिके आधारसे कुछ विद्वानोंका यह मत है, कि आचार्यदेव 'वट्टकेरस्वामी' अन्य कोई आचार्य नहीं है, पर हमारे महान आचार्य भगवान कुंदकुंदाचार्यदेव ही हैं। जो भी हो पर इस परसे यह सिद्ध होता है, कि उक्त 'मूलाचार' ग्रंथ अति प्राचीन, व महान ग्रंथ है।

इस ग्रंथमें मुनि भगवंतोंके आचारोंका सुंदर विवेचन किया है। मुनि भगवंतोंका प्रमाणभूत आचार-वर्णन इस ग्रंथ जैसा अन्य ग्रंथोंमें नहीं प्राप्त होता है।

इस ग्रंथमें 'भावलिंग विहिन द्रव्यलिंग लेनेका' निषेध बहुत ही भाववाही शब्दोंमें कहा गया है, जिसका पूज्य सद्गुरुदेव श्री कानजीस्वामी कई बार उद्दहरण देते थे। अतः 'भावविहिन क्रिया' तनिक भी कार्यकारी नहीं है, अतः भावलिंग ही ग्रहण करना मुमुक्षुको कार्यकारी है। आप भगवान कुंदकुंदाचार्यदेवके ही समयमें अर्थात् ई.स. १२७-१७९के आचार्य हों, ऐसा विद्वानोंका मत है।

आचार्यदेव वट्टकेरस्वामी भगवंतको कोटि कोटि वंदन।

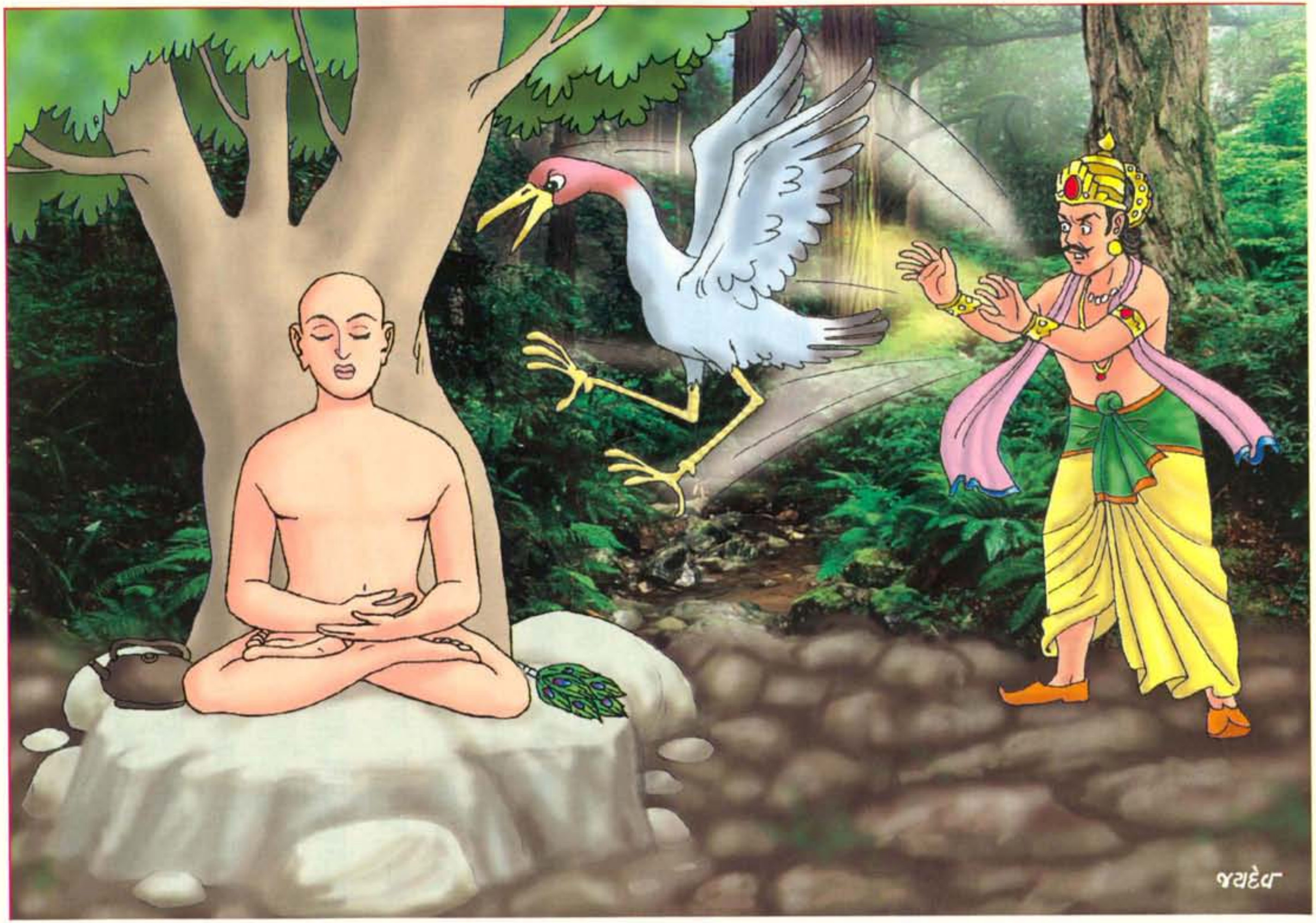

राजा क्रौञ्चका क्रौञ्च शक्ति द्वारा मुनिराज कार्तिकेय पर उपसर्ग

भगवान श्री आचार्यदेव

स्वामी कार्तिकेय अपरनाम कुमारस्वामी

कुमार नामके अनेक आचार्य, पंडित व कवि हुए हैं। जैसेः—

(१) एक नागरशाखाके आचार्य कुमारनंदि, कि जिन्होंने मथुराके सारस्वत आन्दोलनमें ग्रंथ रचे थे। (ई.स. १ के आसपास)

(२) एक कुमारनन्दि आचार्य कुन्दकुन्दके शिक्षागुरुके रूपमें याद किया जाता है व उन्हें लोहाचार्य व माघनन्दिके आचार्योंके समकालीन अनुमानित किये जाते है। (ई.स. ४८ से ८७ के आसपास)

(३) एक वज्रनंदिके शिष्य तथा लोकचन्द्रके गुरु थे। (ई.स. ६८से ११८के बीच— विविध गुर्वावली अनुसार)

(४) एक कुमारस्वामी अपरनाम कार्तिकेय आचार्य जो कि कार्तिकेयानुप्रेक्षा ग्रंथके रचयिता गिने जाते है। (ई.स. १०९ से २००के मध्य)

इस तरह विविधरूपसे आगममें इतिहासविदों द्वारा आपके अनेक नाम पाए जाते हैं।

उनमेंसे यहाँ आचार्यकुमारस्वामी अपरनाम आचार्य कार्तिकेयस्वामीके बारेमें ही विचार किया जा रहा है। उनके संबंधमें वैसे तो निर्विवाद सामग्री उपलब्ध नहीं होती, फिर भी जितना कुछ आगमके आधारोंसे इतिहासविदोंने पाया है, वह इस प्रकार हैं।

आप अग्निनामक राजाके पुत्र थे। आप बालब्रह्मचारी थे; इसी कारणसे आपने 'कार्तिकेयानुप्रेक्षा' ग्रंथमें पंचबालयति तीर्थंकरोंको नमस्कार किया है। आपकी बहनका विवाह रोहेड़नगरके राजा कौञ्चके साथ हुआ था। आपने कुमारवस्थामें ही मुनि-दीक्षा धारण की थी, क्योंकि किसी कारणसे राजा क्रौञ्च कार्तिकेयसे असन्तुष्ट हो गये थे और उसने क्रौंच शक्ति कौञ्च पक्षी द्वारा आप पर दारुण उपसर्ग किया, जिसे निज आत्मप्रचुरतामय लीनता सह त्रिगुप्तभावसे सहन कर आप स्वर्गलोकको प्राप्त हुए। आपने चञ्चल मन व विषय-

वासनाको रोकनेके लिए व श्रद्धापूर्वक जिनवचनकी प्रभावना हेतु यह अनुप्रेक्षाग्रंथ बनाया है—यह इस ग्रंथके अन्त्यमंगल पढ़ने पर लगता है।

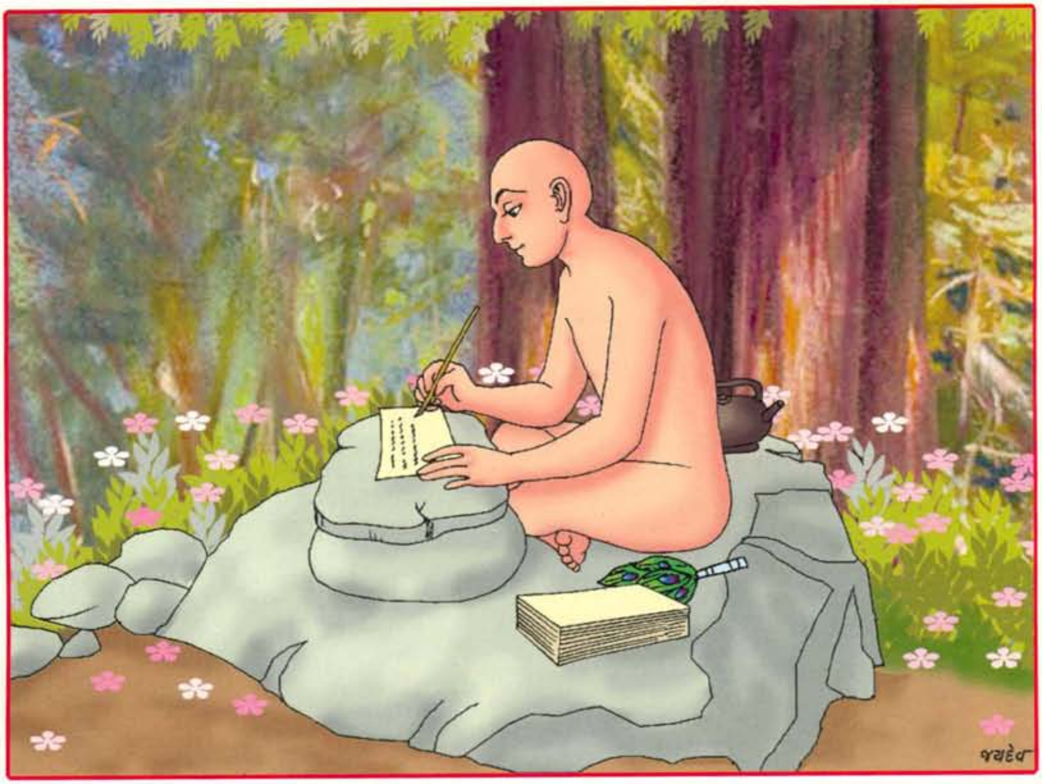

आचार्य कार्तिकेयस्वामी जंगलमें शास्त्र लिख रहे हैं

कई इतिहासविदोंका शिलालेखोंके आधारसे यह भी मन्तव्य है, कि उक्त नं. १में बताए आचार्यकुमारनंदि और कोई नहीं, पर आप ही थे। आपने ही मथुराके सारस्वत-आन्दोलनमें ग्रन्थ निर्माणका कार्य किया था। इस परसे इतना तो अनुमान किया जा सकता है, कि आप एक प्रतिभाशाली, आगम-पारगामी व अपने समयके प्रसिद्ध आचार्य थे। इन सब मन्तव्योंका एकीकरण करके एकत्व करना यद्यपि मुश्किल है, फिर भी शिलालेखों व आगमाधारोंसे इतना तो स्पष्ट होता है, कि आप महा वैराग्यवंत, आगमके महाज्ञाता थे, व आपकी अन्तर परिणतिमें इतनी प्रचुर विशुद्धता थी, कि महा उपसर्गको भी निज आत्माकी मस्तीमें नहींवत् सहज वेदते थे।

आपकी एक मात्र 'कार्तिकेयानुप्रेक्षा' कृति प्रसिद्ध है, जो वैराग्यकी जननी है।

आपका समय इतिहासविदोंने इसुकी द्वितीय शताब्दीका मध्यपाद निर्णित किया है।

आचार्यदेव कार्तिकेयस्वामीको कोटि कोटि वंदन।

भगवान आचार्यदेव

श्री समन्तभद्रस्वामी

जैन जगतके महान आचार्य धरसेनाचार्य, गुणधर आचार्यसे लगाकर कुंदकुंद भगवान, उमास्वामी भगवंत आदि तकके ऐसे आचार्य हुए हैं, जिन्होंने युगसर्जन किया है। अतः वे युगस्रष्टा आचार्य थे। आपके द्वारा ही अंग-पूर्वके विच्छेद होते हुए ज्ञानको, चारों अनुयोगरूप जिनवाणीका मूर्त्तरूप देनेसे आज भी श्रुतपरम्पराका प्रवाह चालू रहा। यदि ये दिगंत आचार्य ऐसा प्रयास न करते तो शायद आज हम सब आत्मज्ञानकी सच्ची बात कहाँसे प्राप्त करते? आपके पश्चात्वर्ती आचार्य भगवन्तोंने काल दोषसे लोगोंके ज्ञानकी क्षीणता होती देख, आपके ग्रंथोंके आधार पर टीका या (परंपरासे प्राप्त ज्ञान द्वारा) मौलिक ग्रंथकी रचनाकर श्रुतप्रवाहको अविरतरूपसे चालू रखा।

ऐसे आचार्योंमें समन्तभद्राचार्यदेव सर्वप्रथम आचार्य हैं, जो युगसर्जनकर्ता आचार्यों व पश्चात्वर्ती आचार्योंको जोड़ती कड़ीके रूपमें हैं। आप स्तोत्रकाव्यके आद्य रचयिता हैं। आपने अपने जीवनकालमें स्याद्वाद-अनेकान्त शासनको जिन अकाट्य न्यायसे सिद्ध किया है, वह अक्सर जिनेन्द्र भगवंतोंकी स्तुति द्वारा ही किया है। आपको भगवानकी स्तुतिका व्यसन ही हो गया हो, ऐसा आपके साहित्यसे प्रतीत होता है।

आपका जन्म दक्षिणभारतके उरगपुरके 'राजावलिकथे'में उत्कलिका ग्राममें हुआ था, जो प्रायः उरगपुरके अंतर्गत ही रहा होगा। उरगपुर चोल राजाओंकी प्राचीन ऐतिहासिक राजधानी थी। जिसे आजकल '[१]त्रिचनापली' कहते हैं। आप चोल राजवंशके जन्मनाम शान्तिवर्मा नामक नामसे अनुमानित किये जाते हैं, जो कि आपके 'स्तुति-विद्या' नामक ग्रंथके कई काव्योंकी नव वलयवाली चित्र रचनासे प्रतीत होता है। आपका जन्म ई.स. १२०में हुआ हो, ऐसा इतिहासकारोंका मानना है।

आप न्याय-विद्याके महान आचार्य थे। आपने अपने ग्रंथोंमें पदार्थका स्वरूप द्रव्य-पर्यायमय, नित्य-अनित्यात्मक, कारण-कार्य स्वरूप, भेदाभेद स्वरूप आदि अनेकरूपसे,

१. यह कावेरी नदीके तटपर फणिमण्डलके अंतर्गत अत्यंत समृद्धशाली नगर माना गया है।

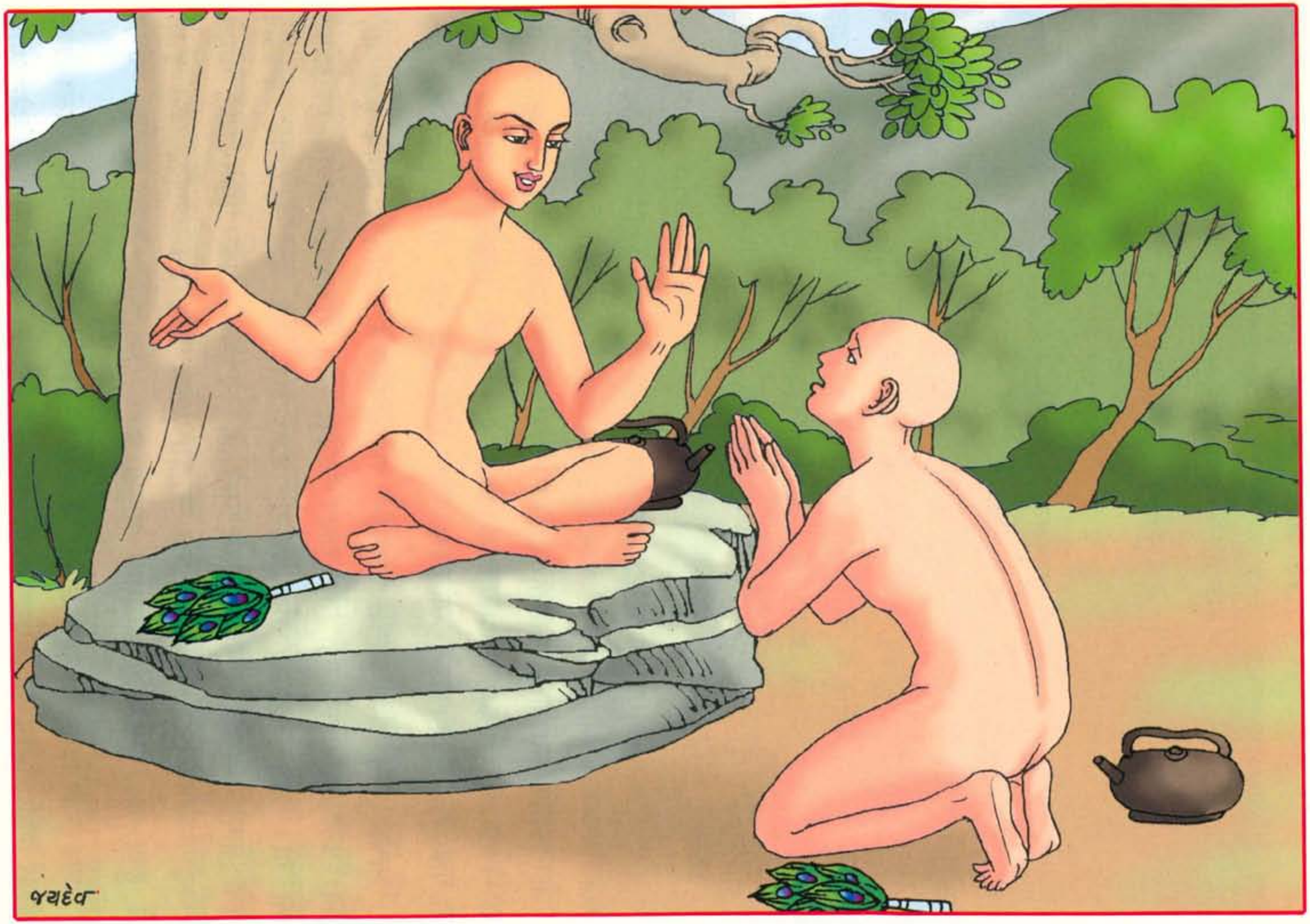

श्री मुनिराज समन्तभद्रस्वामी द्वारा गुरुके पास समाधिमरणकी आज्ञा माँगना

अनेकान्तिक ही है, इसके अलावा अन्य प्रकारसे हो ही नहीं सकता। यह सिद्ध करनेमें जो गंभीर व गहन न्याय दिए हैं, उसके भाव उन द्वारा रचित ग्रंथोंकी टीकासे ही अति स्पष्ट होते हैं। ऐसा पदार्थका स्वरूप समझनेसे ही आत्मकल्याणके मार्गमें, सम्यग्दर्शनके साथ ही, तत्त्वज्ञानकी आवश्यकता प्रद्योत होती है; वह चमत्कारिकरूपसे अपने ग्रंथोंके अन्तमें आपने बताया है।

जिनशासनके रहस्य—अनेकान्त-स्याद्वाद्—को हृदयङ्गम किया होनेसे आप जैनधर्मके मर्मज्ञ थे। आपको आपके समयके सारे दर्शनशास्त्रोंका तलस्पर्शी ज्ञान था, उसी द्वारा आपने उन दर्शनोंकी मध्यस्थता पूर्ण परीक्षा ही नहीं, समीक्षा भी की थी।

आपके पश्चात्वर्ती आचार्योंने आपके विविध गुणोंकी प्रशंसा की है। उसमेंसे कुछेक जैसे कि श्री 'आदिपुराण'में आचार्यदेव जिनसेनजीने आपको 'महान कविवेत्ता' कहकर, श्री वादिराजसूरिजीने आपको 'काव्यमणियोंका पर्वत' कहकर, श्री वादिभसिंह आचार्यने आपको 'स्याद्वादकी स्वच्छंद-विहारभूमि' कहकर, श्री वर्धमानसूरिने आपको 'महान् कविश्वर, कुवादिविद्या-जय–लब्ध–कीर्ति' और 'सुतर्कशास्त्रामृतसारसागर' कहकर आपके गुणोंकी भूरि–भूरि प्रशंसा की है। उस ही भांति श्री शुभचंद्राचार्यदेव, भट्टारक सकलकीर्तिजी, ब्रह्म अजितजी, कवि दामोदर, श्री वसुनन्दी आचार्य, श्री विजयवर्णीने, श्री अजितसेनाचार्यने भी आपकी प्रशंसा की है। उस ही भांति अनेक शिलालेखोंमें भी आपके विविध गुण-रत्नोंकी स्तुति की है। इस परसे संक्षिप्तमें कहें तो आपके परिचयविषयक विशेषण जो उपलब्ध हुए हैं, वे—(१) आचार्य, (२) कवि, (३) वादीराज, (४) पण्डित (गमक), (५) दैवेज्ञ(ज्योतिर्विद), (६) भीषक्(वैद्य), (७) मान्त्रिक(मन्त्रविशेषज्ञ), (८) तान्त्रिक(तन्त्र विशेषज्ञ), (९) आज्ञासिद्ध, (१०) सिद्ध सारस्वत(सरस्वती जिन्हें सिद्ध है।) ऐसे अनेक विशेषण हैं।

आप सफल परीक्षक होनेसे आपने सर्वज्ञ, वीतराग आप्त प्रभु तककी परीक्षा की। इतना ही नहीं, आप मानो वाद देवता हों, उस तरह आपने विविध स्थान पर बड़े नम्रतासे (आडम्बर रहितरूपसे) वादीयोंको अनेकान्त–स्याद्वाद विद्या द्वारा मन्त्र-मुग्ध कर वीर प्रभुके शासनको सहस्रगुणा वृद्धिगंत किया था। उसमेंसे पाटलीपुत्र नगर, मालव(मालवा), सिन्धु, ठक्क(पंजाब) देश, कांचीपुर (कांजीवरम्) और वैदिश (भेलसा) आदि प्रमुख हैं, अर्थात् आप भारतके पूर्वसे पश्चिम व उत्तरसे दक्षिणके सभी प्रमुख-प्रमुख स्थानों पर वादमें अग्रेसर सिद्ध हुए–ऐसा इतिहासकारोंका मानना है।

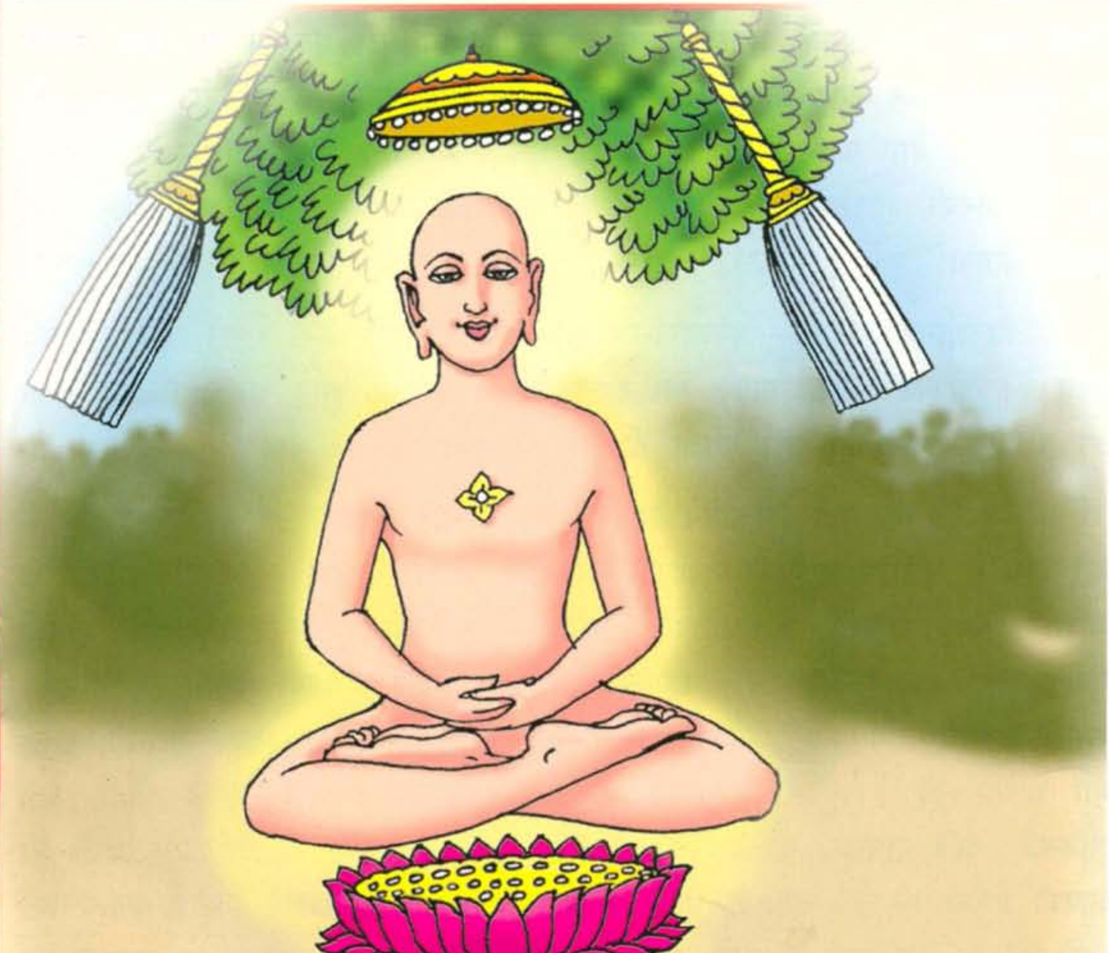

इतिहासकारों अनुसार आचार्य समन्तभद्रजी भविष्यके तीर्थंकर होंगे

इस प्रकार जैन वाङ्मयमें आचार्य समन्तभद्रजीको, पूर्ण तेजस्वी विद्वान, प्रभावशाली दार्शनिक, महावादविजेता और कवि-वेधाके रूपमें स्मरण किया गया है। जैनधर्म और जैनसिद्धान्तके मर्मज्ञ विद्वान होनेके साथ-साथ तर्क, व्याकरण, छन्द, अलंकार एवं काव्य-कोषादि विषयोंमें आप पूर्णतया निष्णात थे। अपनी अलौकिक प्रतिभा द्वारा आपने तत्कालीन ज्ञान और विज्ञानके प्रायः समस्त विषयोंको आत्मसात् कर लिया था। संस्कृत, प्राकृत आदि विभिन्न भाषाओंके भी आप पारंगत विद्वान थे। स्तुतिविद्याग्रन्थसे आपके शब्दाधिपत्यपर भी पूरा प्रकाश पड़ता है। आपके भावी तीर्थंकर होनेके प्रमाण भी मिलते हैं।

दक्षिण भारतमें उच्च कोटिके संस्कृत-ज्ञानको, प्रोत्साहन और प्रसारण देनेवालोंमें आचार्यदेव समन्तभद्रका नाम उल्लेखनीय है। आप ऐसे युगसंस्थापक हैं, जिन्होंने जैन विद्याके क्षेत्रमें एक नया आलोक विकीर्ण किया है। अपने समयके प्रचलित नैरात्म्यवाद, शून्यवाद, क्षणिकवाद, ब्रह्माद्वैतवाद, पुरुष एवं प्रकृतिवाद आदिकी समीक्षाकर स्याद्वाद-सिद्धांतकी प्रतिष्ठा की है।

आपने कांचीमें गृहस्थधर्मका त्यागकर भगवती जिन-दीक्षा धारण की थी।

प्रसिद्ध कथानुसार ई.स. १३८में मुनिदीक्षा ग्रहण करनेके पश्चात् जब वे मणुवकहल्ली स्थानमें विचरण कर रहे थे, कि उन्हें 'भस्मक व्याधि' नामक भयानक रोग हो गया, जिससे दिगम्बर मुनिपदका निर्वाह उन्हें अशक्य प्रतीत हुआ। अतएव उन्होंने गुरुसे समाधिमरण धारण करनेकी अनुमति माँगी। गुरुने भव्य शिष्यको आदेश देते हुए कहा—'आपसे धर्म और साहित्यकी बहुत उन्नति होगी, अतः आप दीक्षा छोड़कर रोग-शमनका उपाय करें। रोग दूर होनेपर पुनः दीक्षा ग्रहण कर लें'। गुरुके इस आदेशानुसार समन्तभद्र रोगोपचार हेतु दिगम्बर मुनिपदको छोड़कर संन्यासी बन गए और इधर-उधर विचरण करने लगे। पश्चात् वाराणसीमें शिवकोटि राजाके भीमलिंग नामक शिवालयमें जाकर राजाको आशीर्वाद दिया और शिवजीको अर्पण किये जाने वाले नैवेद्यको शिवजीको ही खिला देनेकी घोषणा की।

राजा इससे प्रसन्न हुआ और शिवजीको नैवेद्य भक्षण करानेकी अनुमति उन्हें दे दी। समन्तभद्र अनुमति प्राप्त कर शिवालयके किवाड़ बन्द कर उस नैवेद्यको स्वयं ही भक्षण कर रोगको शांत करने लगे। शनैः शनैः उनकी व्याधि उपशमन होने लगी और भोगकी सामग्री बचने लगी। राजाको इस पर सन्देह हुआ। अतः गुप्तरूपसे उसने शिवालयके भीतर कुछ व्यक्तियोंको छिपा दिया। समन्तभद्रको नैवेद्यका भक्षण करते हुए छिपे व्यक्तियोंने देख लिया।

राजाने श्री समन्तभद्रसे शिवपिण्डको नमस्कार करनेके लिये कहा। तब उन्होंने इस बारेमें आनाकानी करते हुए कहा, कि यह शिवलिंग मेरा नमस्कार सहन नहीं कर सकेगा।

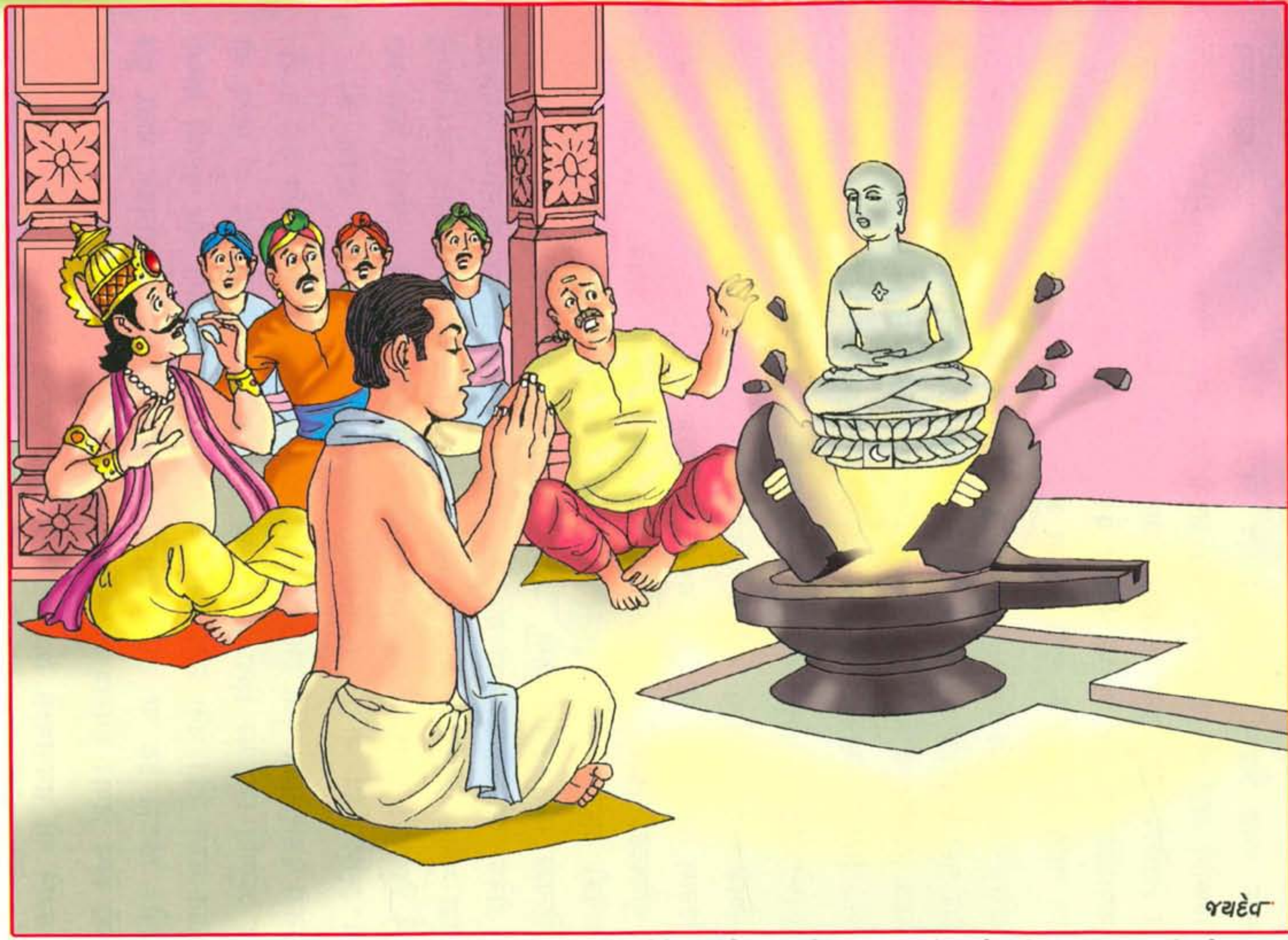

समन्तभद्र गृहस्थ वेषमें राजाके आग्रहसे शिवपिण्डीके दर्शन करते हुए स्वयंभूस्तोत्रकी रचना करते है,
चन्द्रप्रभ भगवानकी स्तुति आने पर शिवलिंग फटकर श्री चन्द्रप्रभ भगवानका जिनबिम्ब प्रकट होता है।

पश्चात् राजा शिवकोटिके डराने पर समन्तभद्रने इसे उपसर्ग समझकर चतुर्विंशति तीर्थंकरोंकी 'स्वयंभू-स्तोत्र' नामक स्तुति आरंभ की। वे एकाग्रचित्तसे स्तवन करते रहे। जब वे चन्द्रप्रभस्वामीकी स्तुति कर रहे थे, कि शिवकी पिण्डी विदीर्ण हो गयी और मध्यसे चन्द्रप्रभस्वामीका मनोज्ञ बिम्ब प्रकट हो गया। आज भी यह बनारसमें 'फटालिंग' के नामसे प्रचलित व विद्यमान है। समन्तभद्रजीके इस महात्म्यको देखकर शिवकोटि राजा व उनके भाई शिवायन सहित सब लोग आश्चर्यचकित हो गये। समन्तभद्रजीने वर्द्धमान पर्यन्त चतुर्विंशति तीर्थङ्करोंकी स्तुति पूर्ण हो जानेपर राजाको आशीर्वाद दिया।

आपका रोग काफी अंशोमें शमन हो गया होनेसे आपने पुनः दीक्षा धारणकर, आत्मसाधना करने लगे। वे जिस गाँवमें विहार करते थे, वहाँ आपसे वादके लिए कोई आता तो शान्तभावसह अकाट्य न्यायसे उसे अनेकान्तमय उपदेश देते, जिससे वे तुरन्त संतुष्ट हो जाते। अतः आपका अपरनाम 'वादिराज' अर्थात् 'आचार्य वादिराज' भी पड़ गया था।

शिलालेखोंके आधारसे आप श्रुतकेवलियोंके समान माने जाते थे व आपको भगवान कुंदकुंदाचार्यदेवके शिष्य उमास्वामी आचार्य व उनके शिष्य बलाकपिच्छाचार्यके अन्वयी माना गया है।

आपने अपने जीवनकालमें जैन वाङ्मयको बाहुल्यतासे स्तुति व अनेकान्त न्यायसे सिद्ध करते हुए समृद्ध किया है। आपकी प्रसिद्ध रचनाएँ : (१) स्वयंभूस्तोत्र, (२) स्तुतिविद्या–अपरनाम जिनशतक, (३) देवागमस्तोत्र–अपरनाम आप्तमीमांसा, (४) युक्त्या-नुशासन–अपरनाम श्री वीरजिनगुणकथा, (५) रत्नकरंडक श्रावकाचार, (६) जीवसिद्धि, (७) तत्त्वानुशासन, (८) प्राकृत व्याकरण, (९) प्रमाणपदार्थ, (१०) कर्मप्राभृत टीका, (११) गंधहस्ति महाभाष्य (तत्त्वार्थसूत्र टीका)–अप्राप्य, (१२) षट्खंडागमके पाँच खण्डों पर टीका।

आप वि.स. १३८-१८५के आचार्य हों ऐसा अनुमानित किया जाता है।

न्यायविद्याके प्रचण्ड आचार्यदेव समन्तभद्र भगवंतको कोटि कोटि वंदन।

भगवान आचार्यदेव
श्री यतिवृषभ

श्री जयधवला टीकाके निर्देशानुसार, आचार्य यतिवृषभने आर्यमंक्षु और नागहस्तिसे कसायपाहुड़की गाथाओंका सम्यक् प्रकार अध्ययनकर अर्थ अवधारण किया और कसाय-पाहुड़पर संक्षिप्त शब्दावलीमें चूर्णिसूत्रोंकी रचना करके महान अर्थको निबद्ध किया। यदि आचार्य यतिवृषभ चूर्णिसूत्रोंकी रचना न करते, तो संभव है, कि कसायपाहुड़का अर्थ ही स्पष्ट न हो पाता। अतः दिगम्बर परम्परामें चूर्णिसूत्रोंके प्रथम रचयिता होनेके कारण आचार्य श्री यतिवृषभका अत्यधिक महत्त्व है।

धवलाकारने यतिवृषभाचार्यके चूर्णिसूत्रोंको वृत्तिसूत्र भी कहा है, क्योंकि 'जिसमें महान् अर्थ हो, जो हेतु, निपात और उपसर्गसे युक्त हो, गम्भीर हो, अनेकपद समन्वित हो, अव्यवच्छिन्न हो और तथ्यकी दृष्टिसे जो धारा प्रवाहिक हो, उसे चूर्णिसूत्र कहते हैं' अर्थात् जो तीर्थंकरकी दिव्यध्वनिसे निस्सृत (प्रवाहित) बीजपदोंका अर्थोद्घाटन करनेमें समर्थ हो वह चूर्णिपद है। यथार्थतः चूर्णिपदोंको बीजसूत्रोंकी विवृत्त्यात्मक सूत्र-रूप रचना कही जाती है और उसमें तथ्योंको विशेषरूपमें प्रस्तुत किया जाता है। आशय यह है, कि आचार्यवर यतिवृषभके चूर्णिसूत्रोंका महत्त्व 'कसायपाहुड़'की गाथाओंसे किसी तरह कम नहीं है। गाथासूत्रोंमें जिन अनेक विषयोंके संकेत उपलब्ध होते हैं, चूर्णिसूत्रोंमें उनका उद्घाटन मिलता है। अतः 'कसायपाहुड़' और 'चूर्णिसूत्र' दोनों ही आगमविषयकी दृष्टिसे महत्त्वपूर्ण है।

श्री यतिवृषभाचार्यका व्यक्तित्व आगमव्याख्याताकी दृष्टिसे अत्यधिक है। आपने आनुपूर्वी, नाम, प्रमाण, वक्तव्यता और अर्थाधिकार इन पाँच उपक्रमोंकी दृष्टिसे सूत्ररूप अर्थोद्घाटन किया है।

चूर्णिसूत्रकार आचार्यवर यतिवृषभके व्यक्तित्वमें निम्नलिखित विशेषताएँ उपलब्ध होती हैं—

१. आत्मसाधक होनेके साथ वे श्रुताराधक भी थे।

२. नन्दिसूत्रके प्रमाणसे वे कर्मप्रकृतिके भी ज्ञाता सिद्ध होते हैं।

३. आचार्य आर्यमंक्षुके शिष्य और आचार्य नागहस्तिके अन्तेवासी थे।

४. आचार्यवर यतिवृषभ आठवें कर्मप्रवादके ज्ञाता थे।

५. व्यक्तित्वकी महानताकी दृष्टिसे आचार्य यतिवृषभ, आचार्य भूतबलिके समकक्ष थे।

६. चूर्णिसूत्रोंमें आचार्य यतिवृषभने सूत्रशैलीको प्रतिबिम्बित किया है।

७. परम्परासे प्रचलित ज्ञानको आत्मसात् कर चूर्णिसूत्रोंकी रचना की गई है।

८. आचार्य यतिवृषभ प्रचुरस्वसंवेदनस्वरूप स्वसंवेदनसह आगमवेत्ता तो थे ही, पर उन्होंने सभी परम्पराओंमें प्रचलित उपदेशशैलीका परिज्ञान प्राप्त किया और अपनी प्रतिभाका चूर्णिसूत्रोंमें उपयोग किया।

९. आपने प्रवचन वात्सल्यसे प्रेरित होकर आचार्य गुणधरके प्रवाहरूपसे प्राप्त 'कसायपाहुड़' ग्रंथ पर चूर्णिसूत्रकी रचना की थी।

१०. विद्वानोंके मतानुसार आपने 'कसायपाहुड़'के चूर्णिसूत्रोंके उपरांत 'तिल्लोयपण्णति' नामक ग्रंथकी भी रचना की थी।

११. आपको महाकर्मप्रकृति प्राभृतका ज्ञान होनेसे आप आचार्यवर आर्यमंक्षुके शिष्य व आचार्य नागहस्तिके अन्तेवासी शिष्य होनेसे आपकी प्राचीनता सिद्ध होती है।

अन्तमें, जैसे विषयासक्त पुरुषोंको विषयासक्त पुरुषोंकी कथा रुचिपूर्वक सुनना बहुत ही पसँद आती है, उससे उनकी विषयरसिकता बलवत्तर होती है; उसी भाँति अध्यात्मके रुचिवंत जीवोंको आगम-अध्यात्मरसिक आचार्योंकी जीवनकथा पसंद पड़ती है। आगम-अध्यात्ममें मस्त ऐसे आचार्य यतिवृषभके जीवनसे हम भी वैसे ही अध्यात्मरसको प्रमुदित करते हुए, अपनी अध्यात्म रुचिको संजोयेंगे।

भगवान गुणधर आचार्यसे शुरु होती परम्परा यहीं अर्थात् यतिवृषभ आचार्य तक पूर्ण हो जाती है।

आपका काल निर्णित करना मुश्किल है, फिर भी कुछ विद्वानोंका मत है, कि आपका काल ई.स. १४३ से १७३के आसपास होना चाहिए।

आचार्यदेव यतिवृषभ भगवंतको कोटि कोटि वंदन।

भगवान आचार्यदेव

श्री गृद्धपिच्छ उमास्वामी

जिनेन्द्र शासनकी प्रचलित पट्टावलियों व शिलालेखों परसे जैन इतिहासकारोंने काफी उहापोह पश्चात् यह स्वीकार किया है, कि भगवान श्री कुंदकुंदाचार्यदेवके पट्टशिष्यके रूपमें आसीन हुए, ऐसे भगवान उमास्वामी आचार्यदेव थे। आपने जिनागम उल्लिखित मोक्षमार्गको सूत्ररूपमें रचा होनेसे उसका नाम 'तत्त्वार्थसूत्र' है; जिसमें सात तत्त्वोंका स्वरूप विस्तृतरूपसे बताया गया है तथा उसमें मोक्षमार्गका स्वरूप भी आ जाता होनेसे उसका अपरनाम 'मोक्षशास्त्र' है। यह शास्त्र इतना गंभीर है, कि उस पर विविध टीकाएँ रची गई हैं। उसमें श्री समन्तभद्राचार्य रचित 'गन्धहस्ति महाभाष्य', श्री पूज्यपाद स्वामीकी 'सर्वार्थसिद्धि', श्री अकलंकाचार्य रचित 'तत्त्वार्थराजवार्तिक' व श्री विद्यानंदिआचार्य रचित 'तत्त्वार्थश्लोकवार्तिक' आदि प्रमुख हैं। इस तरह इस ग्रंथकी बहुधा टीकाएँ 'तत्त्वार्थ'के नामसे शुरू होनेसे इस ग्रंथका प्राचीन नाम 'तत्त्वार्थसूत्र' रहा होगा, ऐसा कई इतिहासकारोंका मंतव्य है।

यह ग्रंथ सूत्रोंके रूपमें रचित होनेसे इसे संक्षिप्तमें 'सूत्रजी' भी कहा जाता है।

भगवान वादिराज मुनिराजके कथानुसार 'आकाशमें उड़नेकी इच्छा करनेवाले पक्षी, जिस प्रकार अपने पंखोंका सहारा लेते हैं, उसी प्रकार मोक्षरूपी नगरको जानेके लिए भव्यलोग जिस मुनीश्वरका सहारा लेते हैं; उन महामना अगणित गुणोंके भण्डारस्वरूप गृद्धपिच्छ नामक मुनिमहाराजके लिए मेरे सविनय नमस्कार हैं।—इस भांति गृद्धपिच्छ उमास्वामी जिनेन्द्रशासनके प्रसिद्ध आचार्य भगवन्त थे।

प्राप्त शिलालेखोंके अनुसार आप भगवान कुंदकुंदके वंशमें उत्पन्न हुए थे, व प्राणीरक्षा हेतु गृद्धपिच्छोंको धारण किया था। उन लेखोंमें आपका नाम उमास्वामी व उमास्वाति ऐसे दोनों रूपोंमें मिलता है। किन्हीं लेखोंमें आपका नाम 'गृद्धपिच्छ'के रूपमें भी दिखाया गया है तथा आपके एक शिष्यका नाम 'बलाकपिच्छ' था, ऐसा भी प्रतीत होता है।

आपने 'द्रव्य'का स्वरूप बताते हुए तीन सूत्र दिये हैं। (१) सत् द्रव्य लक्षणम्। (२) उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तं सत्। (३) गुणपर्ययवद् द्रव्यं।

ये तीनों ही सूत्र आचार्य कुंदकुंद भगवान प्रणीत ग्रंथोंसे लिये हुए है अतः सीधे आप आचार्य कुंदकुंद भगवन्‌के शिष्य यथार्थतया प्रतीत होते हैं। आप बड़े विद्वान व वाचक आचार्य थे।

तत्त्वार्थश्लोकवार्तिक टीकामें इस भाँतिका लिखा मिलता है, कि ''भगवान उमास्वामीसे द्विपायन नामा भव्यने पूछा–'भगवन्! आत्माके लिए हितकारी क्या है? भव्य द्वारा ऐसा प्रश्न करनेपर आचार्यवर्यने मंगलपूर्वक उत्तर दिया, 'मोक्ष'। यह सुनकर द्विपायनने पुनः पूछा–'उसका स्वरूप क्या है, और उसकी प्राप्तिका उपाय क्या है'? उत्तरस्वरूप आचार्यवर्यने कहा, कि 'यद्यपि प्रवादिजन इसे अन्यथा प्रकारसे मानते हैं, जैसे कोई श्रद्धानमात्रको मोक्षमार्ग मानते हैं, कोई ज्ञाननिरपेक्ष श्रद्धान व चारित्रको मोक्षमार्ग मानते हैं, परंतु जिस प्रकार औषधीके केवल ज्ञान, केवल श्रद्धान या केवल प्रयोगसे रोगकी निवृत्ति नहीं हो सकती है, उसी प्रकार केवल श्रद्धान, केवल ज्ञान या केवल चारित्रसे मोक्षकी प्राप्ति नहीं हो सकती। भव्यने पूछा—तो फिर किस प्रकार उसकी प्राप्ति होती है? इसीके उत्तरस्वरूप आचार्यने ''सम्यगदर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गः'' यह सूत्र रचा है और इसके पश्चात् अन्य सूत्रोंकी रचना हुई है।

ऐसा ही कुछ आचार्यवर पूज्यपादस्वामीजीने अपनी टीका 'सर्वार्थसिद्धि'में लिखा है, कि यह ग्रंथ आसन्नभव्यके प्रश्नके उत्तरमें रचा गया है' व प्रश्न 'मोक्ष' संबंधित होनेसे व मोक्षमार्गका उसमें वर्णन होनेसे, इस ग्रंथका नाम 'मोक्षशास्त्र' भी प्रसिद्ध है।

इस ग्रंथके बारेमें विविध स्थानों पर विविधरूपेण ऐसी ही कुछ जनश्रुति आती है, वह इस प्रकार है कि सौराष्ट्रदेशमें द्विपायन नामक एक श्रावक रहता था। उसने एक बार मोक्षमार्ग विषयक कोई शास्त्र बनानेका विचार किया और 'एक सूत्र रोज बनाकर ही भोजन करूँगा अन्यथा उपवास करूँगा'; ऐसा संकल्प लिया। उसी दिन उसने एक सूत्र बनाया 'दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गः'। विस्मरण होनेके भयसे उसने यह सूत्र घरके स्तम्भ पर लिख लिया। अगले दिन किसी कार्यवश वह बाहर चला गया और उसके घर एक मुनिराज आहारार्थ पधारे। लौटते समय मुनिकी दृष्टि स्तम्भ पर लिखे सूत्रपर पड़ी। उन्होंने चुपचाप 'सम्यक्' शब्द उस सूत्रके पहले लिख दिया और बिना किसीको कुछ कहे अपने स्थानको चले गए। श्रावकने लौटने पर सूत्रमें किए गए सुधारको देखा अपनी भूल स्वीकार की। उन मुनिको खोजकर उनसे ही विनयपूर्वक प्रार्थना की, कि वे इस ग्रन्थकी रचना करें, क्योंकि उसमें स्वयं पूरा करनेकी योग्यता नहीं थी। बस उसकी प्रेरणासे ही मुनिराजने 'तत्त्वार्थ सूत्र' (मोक्षशास्त्र)की १० अध्यायोंमें रचना की। वे मुनिराज उमास्वामीके अतिरिक्त अन्य कोई न थे।

सौराष्ट्रका द्विपायन श्रावक सूत्र लिखनेका विचार कर घरके स्तंभ पर सूत्र लिख रहा है

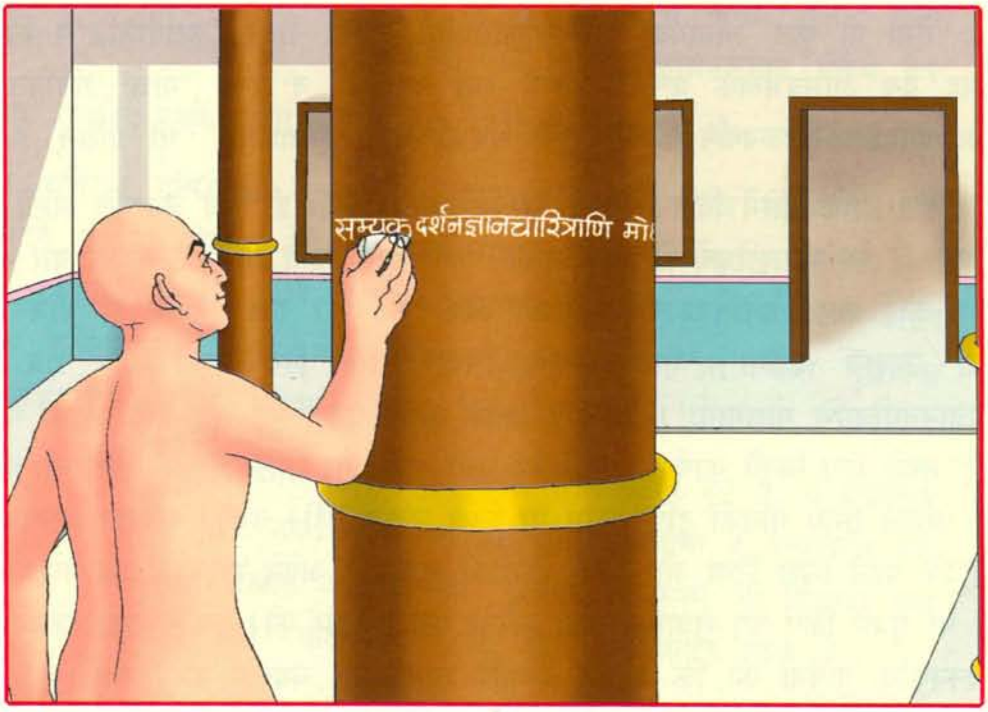

द्विपायन श्रावककी अनुपस्थितिमें मुनिराज उसके घर आहार हेतु पधारे और स्तंभमें लिखे हुए सूत्रमें सुधार किया।

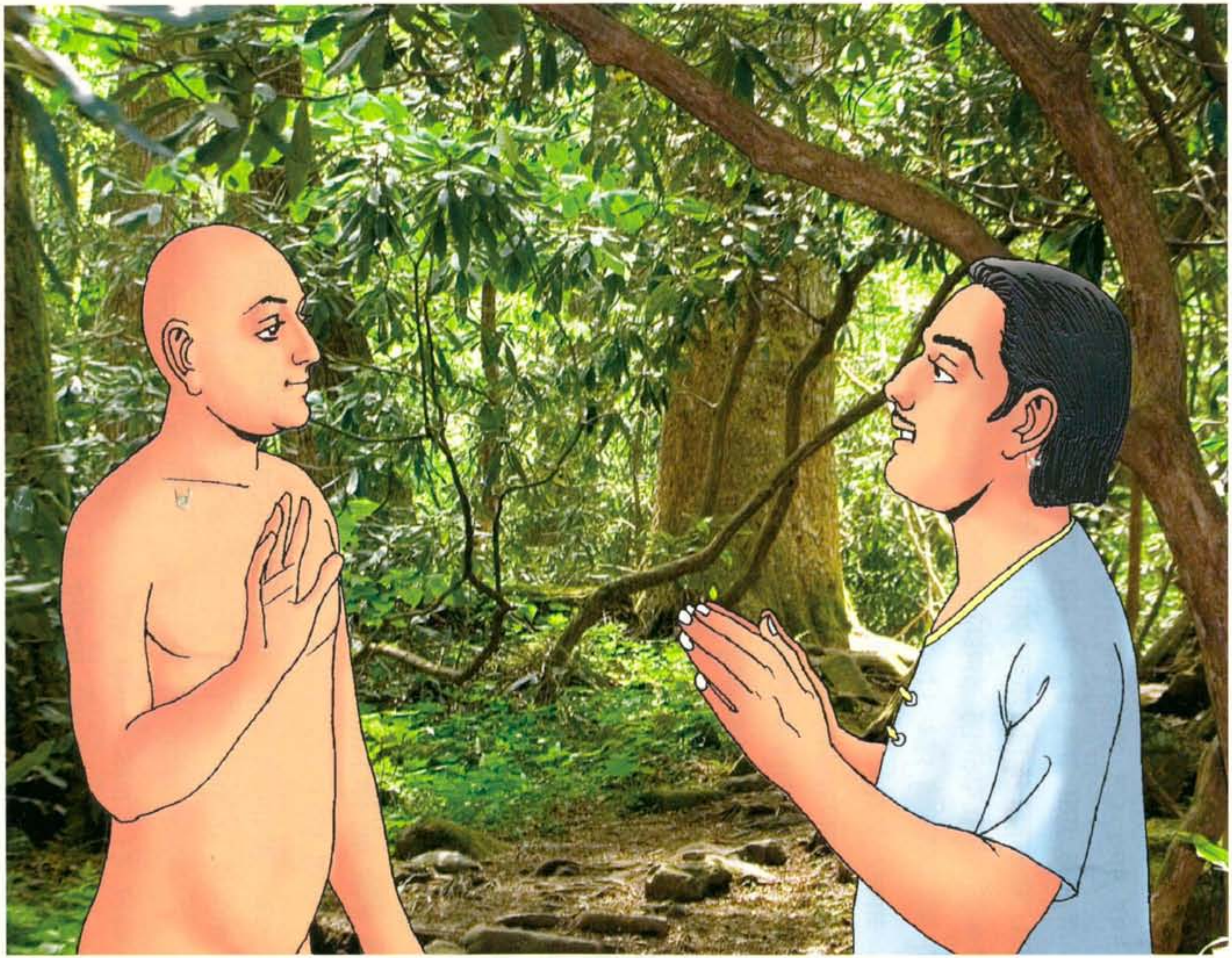

द्विपायन श्रावक द्वारा जंगलमें आचार्यको ढूँढ निकालना व उनसे शास्त्र लिखने हेतु नम्रतासे निवेदन

आपके इस ग्रन्थसे प्रतिफलित होता है, कि आपने चारों अनुयोगको अपने हृदयमें आत्मसात कर लिया था। इसलिए आपने अपने ग्रन्थमें संक्षिप्तसे द्रव्यानुयोग, करणानुयोग व चरणानुयोगका सार भर दिया है, कि जिससे उक्त तीन अनुयोगके दृष्टांतरूप प्रथमानुयोग भव्यजीवोंको सहज ही यथार्थरूपसे तात्त्विक दृष्टिकोणपूर्वक समझमें आ सके।

यह ग्रन्थ जैन साहित्यका संस्कृतमें लिखा सर्वप्रथम ग्रंथ है। यह 'सूत्रमें' होनेसे कंठस्थ हो सके ऐसा ग्रन्थ है। ये सूत्र दार्शनिक तत्त्वोंकी गंभीरतासे इतने भरपूर हैं, कि इस ग्रन्थ पर महान-महान आचार्यवरोंने गंभीर व दार्शनिक तत्त्वोंसे सभर टीकाएँ रची हैं, व कहीं-कहीं गंभीर दार्शनिक तथ्योंको बहुत ही खूबीसे खोला गया है। यह ही इस ग्रन्थकी अपनेमें बड़ी उपलब्धि है।

आपकी विद्वत्ता तो तत्त्वार्थसूत्रसे ही स्पष्ट है, कि जिसमें आपने अपने गुरु भगवान कुंदकुंदाचार्यदेवके पंचपरमागम आदिमें द्योतित भावोंको अत्यंत विद्वत्-निपुणतासे आत्मसात् कर लिया है, ऐसा 'तत्त्वार्थसूत्र'के वाचकको ज्ञात हुए बिना नहीं रहता। इससे ही प्राचीनकालमें कई लोग 'तत्त्वार्थसूत्र'को भगवान कुंदकुंदाचार्यकी रचना मानने लगे थे।

आपकी निरूपणशैली अत्यंत गंभीर थी। इस बारेमें कहा जाता है, कि आपने तत्त्वार्थसूत्रकी रचनाका मंगलाचरण जो कि "मोक्षमार्गस्य नेतारं, भेतारं कर्मभूभृताम्, ज्ञातारं विश्वतत्त्वानां वन्दे तद्गुणलब्धये।" है; उसकी टीका आचार्य समन्तभद्रजीने ११४ संस्कृत श्लोकोंमें रची, जिसका प्रथम शब्द 'देवागम' होनेसे वह 'देवागम स्तोत्र'के नामसे प्रसिद्ध है व उसमें 'आप्त'की मीमांसा (गहरी विचारणा) होनेसे 'आप्तमीमांसा'के नामसे भी प्रसिद्ध है। उसकी भगवान अकलंक आचार्यने ८०० श्लोक प्रमाण व उस पर भगवान विद्यानंदी आचार्यने ८००० श्लोकप्रमाण टीका रची, जिसका नाम क्रमशः 'अष्टशती'व 'अष्टसहस्री' है। इस परसे यह स्पष्ट होता है, कि 'तत्त्वार्थसूत्र'का मंगलाचरण ही इतना गंभीर था, कि जिसके भावोंको खोलनेके लिए ८००० श्लोकप्रमाण तककी टीका विद्यानंदी आचार्यको करनी पड़ी।

उक्त आचार्योंकी बनाई टीकाओंके अलावा भी जैन साहित्यमें इस ग्रंथकी अनेकानेक टीकाएँ उपलब्ध हैं। इस ग्रन्थमें दी गई तात्त्विक चिंतवना इतनी महान है, कि जैन संप्रदायके दिगम्बर व श्वेताम्बर दोनों ही आम्नायमें, पूज्यता व प्रमाणताकी दृष्टिकोणसे इस ग्रंथका समान महत्त्व है। आपके सूत्रोंका पश्चात्वर्ती आचार्योंने अपने शास्त्रोंमें भरपूर उपयोग किया है, इस परसे भी इस ग्रंथकी महानता व आचार्यदेवकी महानता हृदयमें उतरे बिना नहीं रहती। इतिहासकारोंका मानना है, कि आप ई.स. १७९-२४३के आचार्यवर थे।

तत्त्वार्थसूत्रके रचयिता आचार्यदेव उमास्वामी भगवंतको कोटि कोटि वंदन।

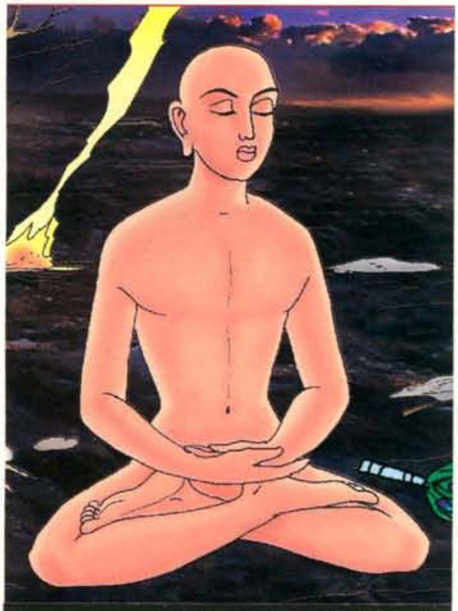

ध्यानस्थ वादविजेता आचार्य श्रीदत्तजी

भगवान आचार्यदेव
श्रीदत्तजी

आचार्यवर भगवान श्रीदत्तजी भावलिंगी मुनि धर्मात्मा, अपने आत्मामें मस्त रहते हुए महान दार्शनिक आचार्य थे। आप दार्शनिक ही नहीं, पर वाद विद्यामें भी पारंगत थे।

आचार्य विद्यानन्दजीने आपके 'जल्पनिर्णय' व 'वादन्याय विचक्षण' ग्रन्थका उल्लेख करते हुए, आपको ३६३ वादियोंको जीतनेवाला बताया है। इससे स्पष्ट है, कि आचार्यवर 'श्रीदत्त' बड़े तपस्वी और वादविजेता विद्वान थे। विक्रमकी छठी शताब्दीके पूर्वाधके विद्वान भगवान आचार्य देवनन्दी (पूज्यपाद)ने जैनेन्द्र व्याकरणमें आचार्यवर 'श्रीदत्त'जीका नामोल्लेख किया है। वैसा ही भगवान आचार्य जिनसेनजीने भी आपका नाम स्मरण किया है। इससे बहुत सम्भव है, कि आचार्य जिनसेन और देवनन्दी द्वारा उल्लिखित आचार्यवर 'श्रीदत्त' एक ही आचार्य हों। आदिपुराणकारने चूँकि आचार्यवर 'श्रीदत्त'को तपःश्रीदीप्रमूर्ति और वादिरूपी गजोंका प्रभेदक बतलाया है, इससे भी आचार्यवर 'श्रीदत्त'जी दार्शनिक विद्वान जान पड़ते हैं। जैनेन्द्र व्याकरणमें जिन छह विद्वानोंका उल्लेख किया है; उनमें केवल भूतबलि सिद्धान्तशास्त्रके मर्मज्ञ थे। उनके अलावा सभी दार्शनिक विद्वान थे।

यद्यपि आपने स्वयंने 'जल्पनिर्णय' व 'वादन्याय'के अलावा कोई विशेष उल्लेखनीय शास्त्र नहीं लिखा है, फिर भी कई शताब्दी तक महान शास्त्र रचयिता आचार्य पूज्यपाद स्वामी (अपरनाम देवनन्दी), अष्टसहस्रीके रचयिता आचार्यदेव विद्यानंदी, आदिपुराणके रचयिता आचार्य जिनसेन (द्वितीय) जैसे महान आचार्योंनें आपको बड़े पूज्यभावसे स्मरण किया है, वह आपके अन्तरकी विशुद्ध परिणतिकी अतिशयताको ही सूचित करता है।

आप ईसाकी चौथी शताब्दीके मध्यपादवर्ती आचार्यदेव थे।

आचार्यदेव श्रीदत्तस्वामीको कोटि कोटि वंदन।

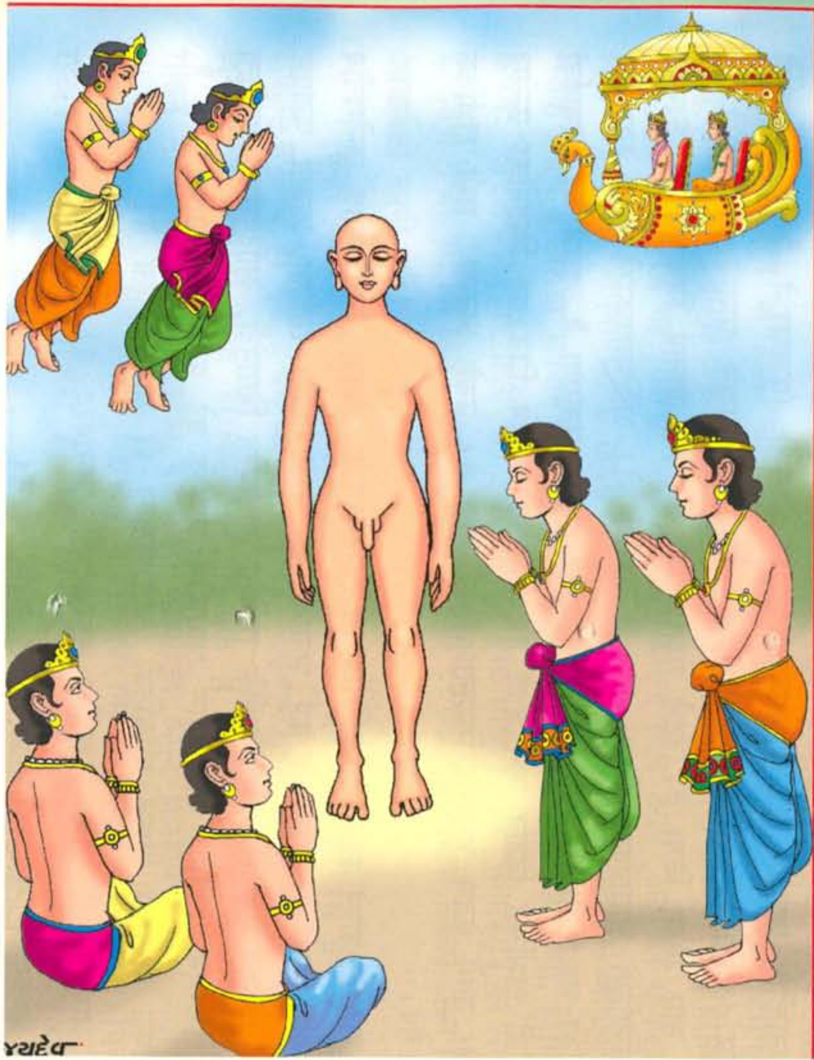

देवों द्वारा आपके चरण पूजे जानेसे आप
पूज्यपाद कहलाये।

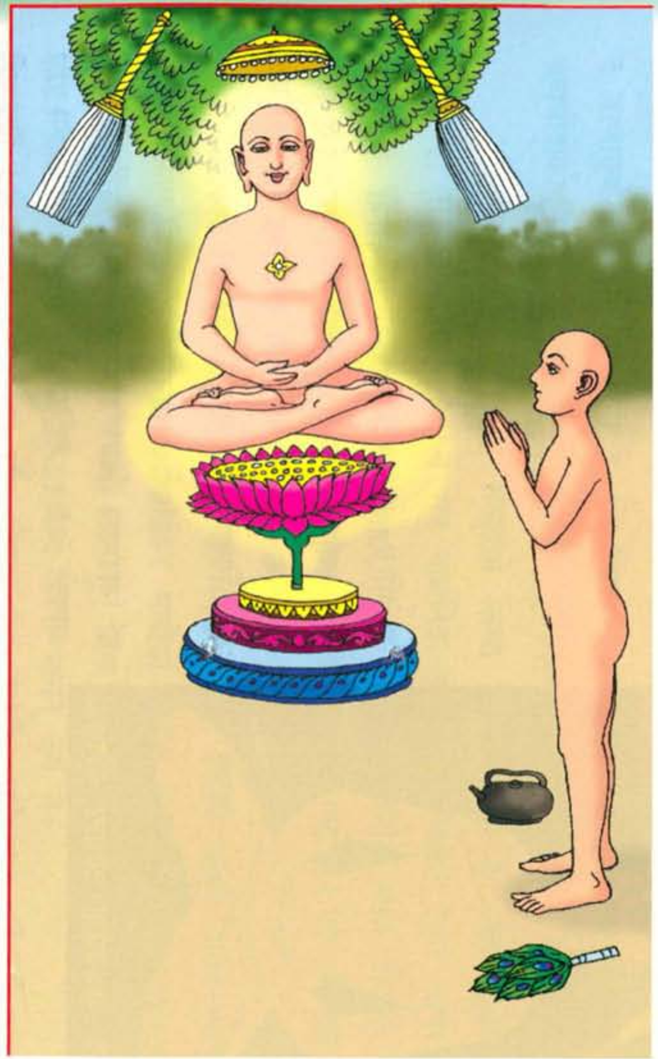

आप कई बार विदेहक्षेत्रमें सीमंधर भगवानके
दर्शन करने गये थे।

भगवान आचार्यदेव

श्री पूज्यपादस्वामी अपरनाम देवनन्दि

भारतीय परम्परामें जो लब्धप्रतिष्ठित तत्त्वदृष्टा, शास्त्रकार हुए हैं, उनमें आचार्य पूज्यपादका नाम प्रमुखरूपसे लिया जाता है। इन्हें प्रतिभा और विद्वत्ता दोनोंका समानरूपसे वरदान प्राप्त था। जैन परम्परामें आचार्य समन्तभद्र और सन्मतिके कर्ता आचार्य सिद्धसेनके बाद साहित्यिक जगत्में यदि किसीको उच्चपद पर बिठलाया जा सकता है, तो वे भगवान कुंदकुंदाचार्यवत् आचार्य पूज्यपाद हो सकते हैं। आपने अपने पीछे जो साहित्य छोड़ा है। उसका प्रभाव दिगम्बर और श्वेताम्बर दोनों परम्पराओंमें समानरूपसे दिखाई देता है। यही कारण है, कि उत्तरकालवर्ती प्रायः अधिकतर साहित्यकारों व इतिहास मर्मज्ञोंने आपकी महत्ता, विद्वत्ता और बहुज्ञता स्वीकार करते हुए आपके चरणोंमें श्रद्धाके सुमन अर्पित किये हैं।

शिलालेखों तथा दूसरे प्रमाणोंसे विदित होता है, कि गुरुके द्वारा दिया हुआ आपका दीक्षानाम 'देवनन्दि' था। बुद्धिकी प्रखरताके कारण इन्हें 'जिनेन्द्रबुद्धि' कहते थे और देवोंके द्वारा आपके चरण युगल पूजे गये थे। इसलिए आप 'पूज्यपाद' इस नामसे लोकमें प्रख्यात थे।

आचार्य पूज्यपाद मूलसंघके अन्तर्गत नन्दिसंघ बलात्कार गणके पट्टाधीश थे तथा अन्य प्रमाणोंसे यह भी विदित होता है, कि आपका गच्छ 'सरस्वती' इस नामसे प्रख्यात था। हमारे प्रसिद्ध आचार्य कुन्दकुन्द और गृद्धपिच्छ (उमास्वाति) इसी परम्पराके पूर्ववर्ती आचार्य थे। यह भी इससे विदित होता है।

'कर्णाटक देशके कोले' नामक ग्रामके माधवभट्ट नामक ब्राह्मण और श्रीदेवी ब्राह्मणीसे पूज्यपादका जन्म हुआ। ज्योतिषियोंने बालकको त्रिलोकपूज्य बतलाया। इस कारणसे भी आपका नाम पूज्यपाद रखा गया, ऐसा इतिहासविदोंका मानना है। माधवभट्टने अपनी स्त्रीके कहनेसे जैनधर्म स्वीकार कर लिया। उनके सालेका नाम 'पाणिनी' था। उसे भी आपने ही जैन बननेको कहा। परन्तु प्रतिष्ठाके ख्यालसे वह जैन न होकर मुंडीकुंड ग्राममें वैष्णव संन्यासी हो गया। पूज्यपादस्वामीकी कमलिनी नामक छोटी बहन हुई, वह गुणभट्टको ब्याही गयी और गुणभट्टको उससे नागार्जुन नामक पुत्र हुआ।

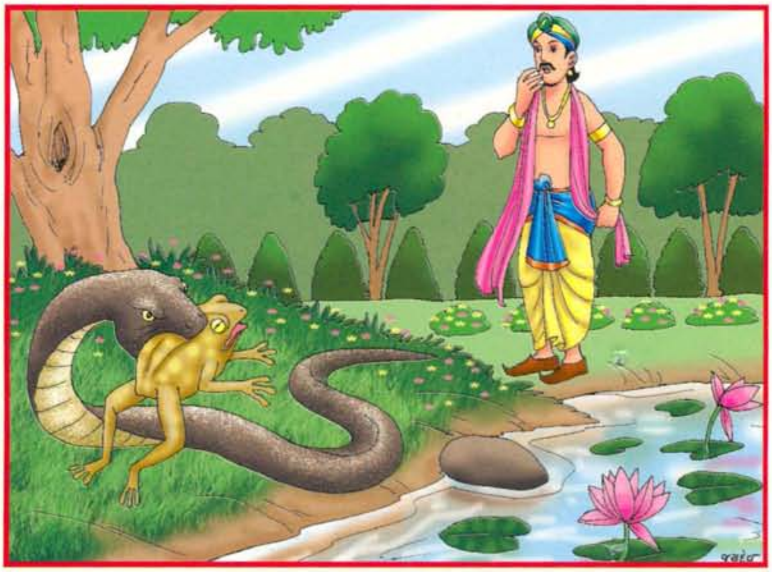

पूज्यपादजी सर्पके मुँहमें मेंढक देख वैराग्यकी वृद्धिसे मुनिदीक्षा लेने उद्यत।

पूज्यपादजीने विवाह न करके बचपनमें ही जैनधर्म स्वीकार कर लिया था। पश्चात् आपने एक बगीचेमें एक साँपके मुँहमें फँसे हुए मेंढकको देखा। इससे आपको वैराग्य हो गया और वे जैन साधु बन गये। पाणिनी अपना व्याकरण रच रहे थे। वह पूरा न हो पाया था। उन्होंने अपना मरणकाल निकट आया जानकर पूज्यपादसे कहा, कि इसे तुम पूरा कर दो। उन्होंने पूरा करना स्वीकार कर लिया। पाणिनी दुर्भाग्यवश मरकर सर्प हुए। एकबार उसने पूज्यपादको देखकर फूत्कार किया। इस पर पूज्यपादने कहा—'विश्वास रखो, मैं तुम्हारे व्याकरणको पूरा कर दूँगा'। इसके बाद उन्होंने 'पाणिनि व्याकरण'को पूरा कर दिया।

पूज्यपादस्वामी अनेकबार विदेहक्षेत्र गये थे व आपने अनेक तीर्थोंकी यात्रा भी की थी।

आपके शिष्य वज्रनन्दि थे। मार्गमें एक जगह उनकी दृष्टि नष्ट हो गई थी, सो उन्होंने एक शान्त्यष्टक बनाकर ज्योंकी त्यों दृष्टि प्राप्त कर ली। (इस बातकी सत्यतामें विविधमत हैं)। एक बात स्पष्ट है, कि आचार्य पूज्यपाद 'पाणिनी व्याकरण', उसके वार्तिक और महाभाष्यके मर्मज्ञ थे। पूज्यपाद मुनि बहुत समय तक आत्मध्यानरूप योगमय सारपदका अभ्यास करते रहे। इसके बाद उन्होंने अपने ग्राममें आकर समाधिपूर्वक मरण किया।

पूज्यपाद आचार्य द्वारा लिखित अब तक निम्नलिखित रचनाएँ उपलब्ध हैं— १. दशभक्ति, २. जन्माभिषेक, ३. तत्त्वार्थवृत्ति (सर्वार्थसिद्धि), ४. समाधितन्त्र, ५. इष्टोपदेश, ६. जैनेन्द्रव्याकरण, ७. सिद्धिप्रिय-स्तोत्र।

आचार्य देवनन्दि-पूज्यपादका समय ईसुकी पाँचवी शताब्दीका मध्यपाद सिद्ध होता है, जो सर्वमान्य है।

महान् आचार्यदेव श्री पूज्यपादस्वामी भगवंतको कोटि कोटि वंदन।

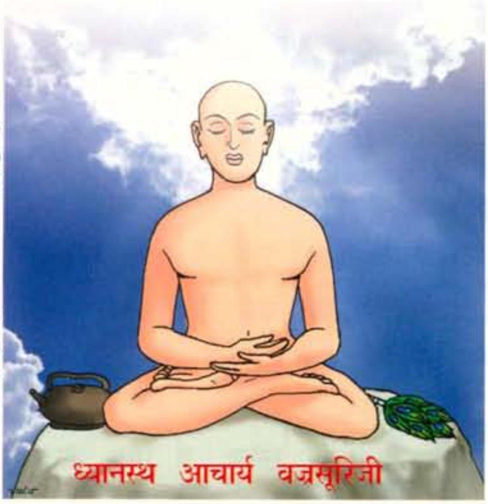

भगवान आचार्यदेव

श्री वज्रसूरि अपरनाम वज्रनन्दि

आचार्य वज्रसूरि, आचार्य देवनन्दि-पूज्यपादके शिष्य वज्रनन्दि जान पड़ते हैं। हरिवंशपुराणमें आपके सम्बन्धमें कहा है—

वरसूरेर्विचारिण्य सहेत्वोर्बन्धमोक्षयोः।
प्रमाणं धर्मशास्त्राणां प्रवक्तॄणामिवोक्तयः॥

अर्थ :-जो हेतु सहित बन्ध और मोक्षका विचार करनेवाली हैं, ऐसी श्री वज्रसूरिकी उक्तियाँ धर्मशास्त्रोंका व्याख्यान करनेवाले गणधरोंकी उक्तियोंके समान प्रमाणरूप हैं।

इस कथनसे यह ध्वनित होता है, कि वज्रसूरि प्रसिद्ध सिद्धान्तशास्त्रके वेत्ता हुए हैं। आपके वाक्य गणधरोंके वाक्योंके समान माने जाते हैं। अपभ्रंश भाषाके कवि धवलने अपने हरिवंश पुराणमें लिखा है—वज्रसूरि सुपसिद्धउ मुणिवरु, जेण पमाणगंथु किउ चंगउ॥

अर्थात् वज्रसूरि नामके प्रसिद्ध मुनिवर हुए, जिन्होंने सुन्दर प्रमाणग्रन्थ बनाया। आचार्य जिनसेन और कवि धवल, दोनोंने ही वज्रसूरिका उल्लेख पूज्यपादस्वामीके पश्चात् किया है। अतएव ये वही वज्रनन्दि मालूम होते हैं, जो पूज्यपादके शिष्य थे। जिन्हें आचार्य देवसेनसूरिने अपने दर्शनसारमें द्राविडसंघका बतलाया है; परंतु उस द्रविडसंघसे आप भिन्न प्रतीत होते हैं, क्योंकि वह द्रविड़ संघ भगवान पूज्यपादस्वामीजीके काफ़ी समयके बाद चला था। 'नवस्तोत्र'के अतिरिक्त इनका कोई प्रमाणग्रन्थ भी था। आचार्य जिनसेनजीके उल्लेखसे आपका कोई सिद्धान्तग्रंथ होनेकी भी सम्भावना की जा सकती है।

आपका अपरनाम वज्रनन्दि था।

आपका समय ईस. ४४२-४६४ ही प्रतीत होता है।

आचार्यदेव श्रीवज्रसूरि भगवंतको कोटि कोटि वंदन।

भगवान आचार्यदेव

श्री यशोभद्र

प्रखर तार्किकके रूपमें भगवान जिनसेनजीने आपका स्मरण किया है। आदिपुराणमें बताया है—

विदुष्विणीषु संसत्सु यस्य नामापि कीर्तितम्।
निखर्वयति तद्गर्व यशोभद्रः स पातु नः॥

वर्षाऋतुमें ध्यानस्थ आचार्य श्री यशोभद्रजी

अर्थात् विद्वानोंकी सभामें जिनका नाम कह देने मात्रसे सभीका गर्व दूर हो जाता है, वे यशोभद्र हमारी रक्षा करें।

जैनेन्द्र व्याकरणमें "क्ववृषिमृजां यशोभद्रस्य" (१-१-९९) सूत्र आया है। अतः आचार्य जिनसेनजीके द्वारा उल्लिखित आचार्य यशोभद्रजी और आचार्य पूज्यपादके जैनेन्द्र व्याकरणमें निर्दिष्ट भगवान यशोभद्रजी एक ही है। पर समयकी अपेक्षा योग्य नहीं प्रतीत होता है।

आपका समय ईसुकी छठी शती मध्यपाद होना चाहिये।

आचार्यदेव यशोधर भगवंतको कोटि कोटि वंदन।

भगवान आचार्यवर

श्री जोईन्दु अपरनाम योगीन्दु

सनातन जिनशासनमें हुए अत्यंत विरक्त चित्त जोईन्दु या योगीन्दु एक आध्यात्मिकवेत्ता आचार्य थे। उनके जीवन-वृत्तके बारेमें न तो आपके ग्रंथोंमेंसे कोई सामग्री उपलब्ध होती है और न ही अन्य वाङ्मयसे। फिर भी आप दिगम्बर आचार्य होनेके पूर्वमें वैदिक मतानुसारी रहे होंगे, क्योंकि आपकी कथनशैलीमें वैदिक मान्यताके शब्द बहुलतासे आते हैं। तदुपरांत आपके ग्रंथ परमात्मप्रकाश व अन्य ग्रंथोंसे इतना स्पष्ट भासित होता है, कि जिन वाङ्मयमें आपको जोइन्दु, योगीन्दु, जोगीचन्द्र, योगीचन्द्र आदि विविध नामोंसे पुकारा गया है, परन्तु विद्वानोंके मतानुसार आपका नाम 'जोइन्दु' या 'योगीन्दु' ही था, बाकी सभी 'जोइन्दु'के भाषानुवादका ही फ़रक है।

आपके शिष्यका नाम प्रभाकर भट्ट था, ऐसा परमात्मप्रकाश ग्रंथ परसे प्रतीत होता है। आपके परमात्मप्रकाश व योगसारके विषयानुसार आप कविके ब-निस्बत अध्यात्मरसिक अधिक थे, ऐसा प्रतीत होता है, क्योंकि आपने उक्त दोनों ग्रंथोंमें अध्यात्मतत्त्वको सुंदर, गहन व गूढतया भर दिया है। आपका अपभ्रंश भाषा पर अपूर्व अधिकार था।आपके ग्रंथोंसे यह भी पता चलता है, कि आप क्रांतिकारी विचारधाराके प्रवर्तक थे, क्योंकि आप अध्यात्मको जलद शब्दोंमें इस तरह रखते, कि सुनते ही एकबार सुननेवालेका मोह, (मिथ्या मान्यता) तो हिल ही जाए। इसलिए ही विद्वानोंका मानना है, कि जैसे 'कबीर'ने अन्यमतमें जिस क्रान्तिकारी विचारधाराकी प्रतिष्ठा की है, उसका मूल स्रोत आपकी रचनामें पाया जाता है। आपकी लेखन शैलीमें आपने भगवान कुंदकुंदाचार्यदेव व पूज्यपादस्वामीका बहुत ही अनुसरण किया है, ऐसा प्रतीत हुए बिना नहीं रहता।

आपने अपभ्रंश व संस्कृतके अनेक ग्रंथ रचे है, उनमेंसे निम्न विशेष प्रसिद्ध हैं। १. स्वानुभवदर्पण, २. परमात्मप्रकाश, ३. योगसार, ४. दोहापाहुड, ५. सुभाषिततन्त्र, ६. अध्यात्मरत्नसंदोह, ७. तत्त्वार्थ टीका, ८. अमृताशीति व निजात्माष्टक, १०. नौकार श्रावकाचार। इन ग्रंथोंमें परमात्मप्रकाश व योगसारके अलावा बाकी सभी इन्हीं आचार्य जोइन्दुदेवकी रचना है, या अन्य योगीन्दुकी—यह स्पष्ट नहीं कहा जा सकता।

भगवान श्री कुंदकुंदस्वामी व पूज्यपादस्वामीके पश्चात् अर्थात् ईसाकी छठवीं शताब्दीके उत्तरार्द्धमें आप होने चाहिए—ऐसा विद्वानोंका मत है।

अध्यात्मरसिक आचार्यदेव श्री योगीन्दुदेवको कोटि कोटि वंदन।

भगवान आचार्यदेव

श्री पात्रकेसरी या पात्रस्वामी

कवि और दार्शनिकके रूपमें पात्रकेसरीका नाम प्रसिद्ध है। आपका यश आचार्य जिनसेनस्वामी आदि पश्चात्‌वर्ती आचार्योंके हृदयमें अत्यधिक था।

पात्रकेसरीका जन्म उच्चकुलीन ब्राह्मण वंशमें हुआ था। सम्भवतः वे किसी राजाके महा-अमात्यपदपर प्रतिष्ठित थे। ब्राह्मण समाजमें आपकी बड़ी प्रतिष्ठा थी। आराधनाकोषमें लिखा है—'अहिच्छत्रके अवनिपाल राजाके राज्यमें ५०० ब्राह्मण रहते थे। इनमें पात्रकेसरी सबसे प्रमुख थे।' इस नगरमें तीर्थंकर पार्श्वनाथका एक विशाल चैत्यालय था। पात्रकेसरी प्रतिदिन उस चैत्यालयमें जाया करते थे। एक दिन वहाँ आपने चारित्रभूषण मुनिके मुखसे

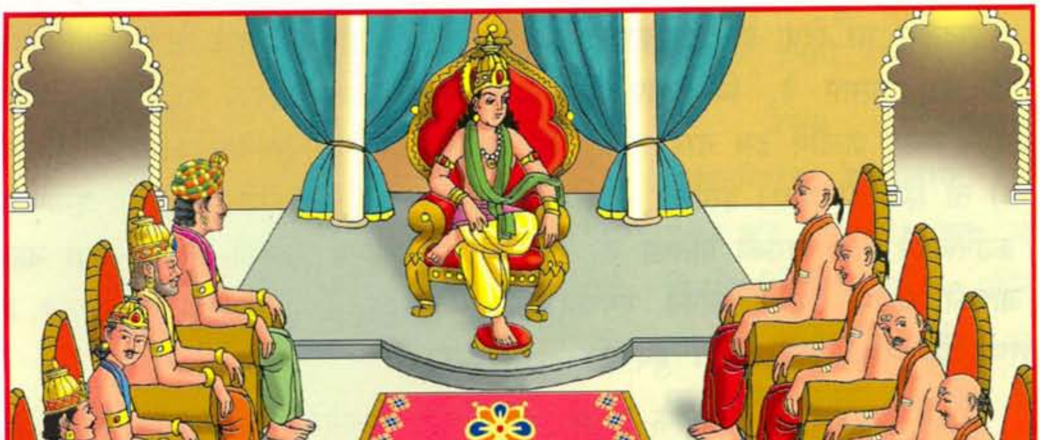

उच्चकुलीन ब्राह्मण पात्रकेसरी राजाके अमात्यपद पर

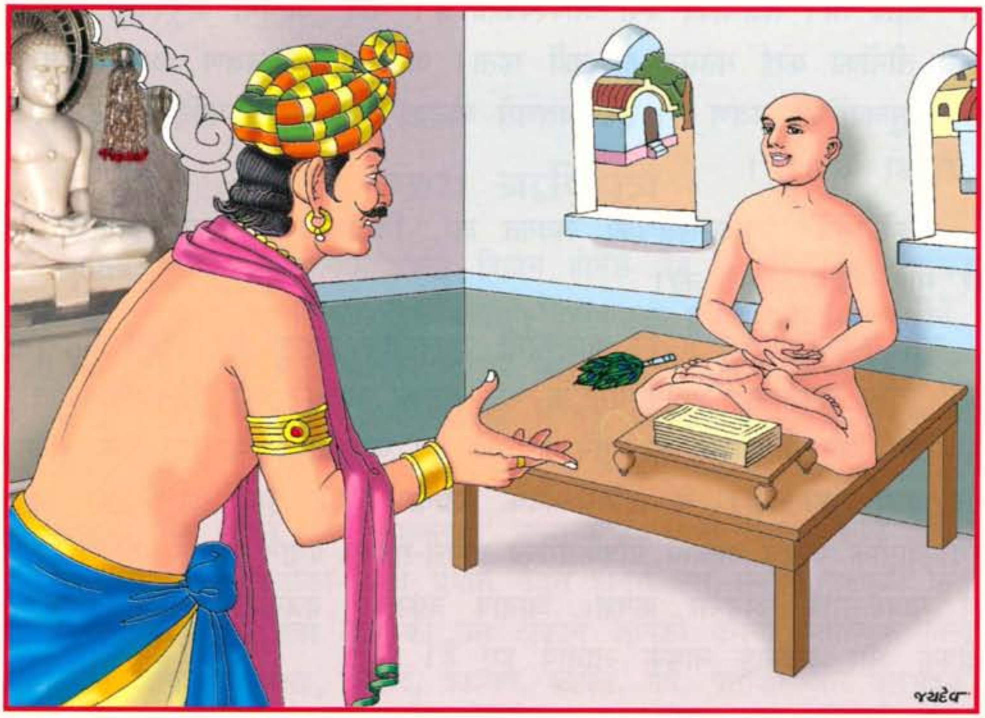

भगवान पार्श्वनाथके मंदिरमें चारित्रभूषण मुनिसे 'देवागम स्तोत्र' सुनकर अमात्य पात्रकेसरी आश्चर्यचकित होकर स्तोत्र कंठस्थ करते हैं।

आचार्य समन्तभद्रजीके 'देवागम' स्तोत्र अपरनाम आप्तमीमांसाका पाठ सुना। उन्होंने मुनिराजसे स्तोत्रका अर्थ पूछा, पर मुनिराज अर्थ न बतला सके। पात्रकेसरीने अपनी विलक्षण प्रतिभा द्वारा स्तोत्र कंठस्थ कर लिया और अर्थ विचारने लगे। विचारने पर वे आश्चर्यचकित हुए। जैसे-जैसे स्तोत्रका अर्थ स्पष्ट होने लगा वैसे-वैसे उनकी जैन तत्त्वोंपर श्रद्धा उत्पन्न होती गयी और अन्तमें उन्होंने जिनधर्म स्वीकार कर लिया।

पर उन्हें 'हेतु'के विषयमें सन्देह बना रहा और उस सन्देहको लिये हुए सो जाने पर रात्रिके अन्तिम प्रहरमें स्वप्न आया, कि पार्श्वनाथके मन्दिरमें 'फण' पर लिखा हुआ 'हेतु'का लक्षण प्राप्त हो जायगा। अतएव प्रातःकाल जब वे भगवान पार्श्वनाथके मन्दिरमें पहुँचे तो वहाँ उस मूर्तिके 'फण' पर निम्न प्रकार हेतुलक्षण प्राप्त हुआ—

अन्यथानुपपन्नत्वं यत्र तत्र त्रयेण किम्।
नान्यथानुपपन्नत्वं यत्र तत्र त्रयेण किम्॥

अर्थ : जहाँ 'अन्यथा अनुपपत्ति' लक्षण हो, वहाँ 'पक्षधर्मत्व', 'सपक्षसत्त्व', 'विपक्ष-

व्यावृत्ति' आदि तीन लक्षणोंकी क्या आवश्यकता है? यदि 'अन्यथा अनुपपत्ति' लक्षण नहीं तो उक्त तीनोंका कोई मतलब ही नहीं रहता। अतः हेतुका लक्षण 'अन्यथा अनुपपत्ति' लक्षण ही सुव्यवस्थित लक्षण है। इस लक्षणसे बौद्धका 'पक्षधर्मत्व' आदि त्रिलक्षणका निषेध सहज ही हो जाता है।

पात्रकेसरीने 'हेतु'के-लक्षणको अवगत कर, निश्चिन्त हो राज्यके अधिकारी पदको छोड़कर मुनि दीक्षा धारण की।

इस कथासे विदित है, कि पात्रकेसरी उच्चकुलीन ब्राह्मण थे। स्वामी समन्तभद्रजीके 'देवागम' स्तोत्र अपरनाम 'आप्तमीमांसा'के भाव सुनकर आपकी श्रद्धा जिनधर्मके प्रति जागृत हुई थी और जिनधर्म धारण कर मुनि हो गये थे। कथाकोषके अनुसार इन्हें अहिच्छत्रका निवासी कहा गया है। ये द्रमिल-संघके आचार्य थे। इस अभिलेखमें आचार्यदेव समन्तभद्रस्वामीके पश्चात् आचार्य पात्रकेसरीको द्रमिल-संघका प्रधान आचार्य सूचित किया है। आचार्य पात्रकेसरीके अनन्तर क्रमशः आचार्य वक्रग्रीह, वज्रनन्दि, सुमतिभट्टारक (देव), समयदीपक और अकलङ्क नामके आचार्य हुए हैं।

आपने 'त्रिलक्षणक वर्धन' व 'पात्रकेसरी स्तोत्र' अपरनाम 'जिनेन्द्र गुण स्तुति' दो ग्रंथोंकी रचना की है; ऐसा जाना जाता है। उसमेंसे 'त्रिलक्षणक वर्धन' शास्त्र अप्राप्य है, मात्र उसका नाम प्रसिद्ध है। इस ग्रंथकी मीमांसा बौद्ध विद्वान शान्तरक्षितने अपने तत्त्वसंग्रहमें की है, जिससे ज्ञात होता है कि इस ग्रंथमें आपने बौद्ध द्वारा प्रतिपादित 'हेतु'का लक्षण पक्षधर्मत्व, सपक्षसत्त्व व विपक्षव्यावृत्ति—ऐसे त्रिलक्षणका निषेध करते हुए 'अन्यथा अनुपपत्ति' ही 'हेतु'का लक्षण स्थापित किया है।

'पात्रकेसरी स्तोत्र'में आपने भगवानकी स्तुतिके रूपमें समन्तभद्राचार्यके 'आप्तमीमांसा' व 'युक्त्यानुशासन'की भाँति अनुपम, गंभीर विविध न्यायोंका ही वर्णन कर एक अनुपम न्यायशास्त्र ही जगतके जीवोंको प्रदान किया है।

आपके उक्त दोनों ग्रंथ परसे यह स्पष्ट होता है, कि आपका न्याय विषय पर अपूर्व प्रभुत्व-अधिकार था; इतना ही नहीं 'भूत चैतन्यवाद'के निरसनसे, आपकी सिद्धान्त विषयक ज्ञानमें भी प्रबलता प्रतीत होती है।

आपका समय ईसाकी ६-७वीं शताब्दी माना जाता है।

आचार्यदेव श्री पात्रकेसरी भगवंतको कोटि कोटि वंदन।

आचार्य ऋषिपुत्र

आचार्य ऋषिपुत्र ज्योतिषके प्रकांड विद्वान होनेसे जैन जगतमें अधिक प्रसिद्धताको प्राप्त नहीं है। तदुपरांत अपनी परिणतिमें वीतराग-विज्ञानताकी प्रचुरताके कारण आपने अपने साहित्यमें कहीं भी अपने वंश आदिका परिचय नहीं दिया है। मात्र अन्यमतके ग्रंथों परसे इतना ही पता चलता है, कि आप ज्योतिष विद्याके दिगम्बर प्रकांड पंडित व विशेषज्ञ आचार्य थे।

आपका एक प्रसिद्ध ग्रंथ 'पाशकेवली' उपलब्ध है, परन्तु आपके वचन जैनेतर ग्रंथ 'वाराहिसंहिता'की भट्टोत्पलि-टीका आदि ग्रंथोंमें उद्धृत होनेसे, उस समयमें आपकी प्रसिद्धिका काफ़ी अनुमान होता है। यहाँ तक की उस टीकामें आपकी गणना ज्योतिषके अन्यमतके प्राचीन विद्वान आचार्य आर्यभट्ट, कणाद, काश्यप, कपिल, गर्ग, पाराशर और बलभद्रके साथ की गई है। इससे आप प्राचीन एवं प्रभावक आचार्य ज्ञात होते हैं। आप ज्योतिष आचार्य गर्गके पुत्र होनेसे ही आपको ऋषिपुत्र कहा जाता हो, ऐसा इतिहासकारोंका अनुमान है। आपका निवासस्थान उज्जैनके आसपास ही होनेका भी इतिहासविदोंका अनुमान है।

निज आत्मस्वभावोत्पन्न रत्नत्रयमय परिणत आपको निमित्तशास्त्र, शकुनशास्त्र तथा ग्रहोंकी स्थिति द्वारा भूत, भविष्यत व वर्तमानकालीन फल, भूशोधन, दिक्शोधन, शल्योद्धार, मेलापक, आयाद्यानयन, गृहोपकरण, गृहप्रवेश, उल्कापात आदि निमित्त तथा अन्य विविध भाँतिके ज्योतिषक संबंधित बातोंका ज्ञान था। आपके ज्योतिषविषयक ग्रन्थोंका प्राचीन भारतमें पर्याप्त प्रचार रहा है, तथा उत्तरकालीन आचार्योंने आपके सिद्धान्तोंको अपने ग्रंथोंमें उद्धृत करके आपके वचनोंकी प्रमाणिकता स्वीकृत की है।

'त्रिस्कन्धात्मक ज्योतिष' आपकी प्रारम्भिक रचना मानी गई है, वह मात्र सूत्रात्मक रचना है। विभिन्न ग्रंथोंमें उद्धरित आपकी संहिता विषयक रचनाका भी अनुमान लगाया जाता है। इसके अलावा एक 'पाशकेवली' नामक, विषयकी दृष्टिसे महत्त्वपूर्ण ग्रंथ भी उपलब्ध होता है।

इतिहासकारोंके मतानुसार आप ईसाकी छठवीं-सातवीं शताब्दीके आचार्य माने गये हैं। आचार्यदेव श्री ऋषिपुत्र भगवंतको कोटि कोटि वंदन।

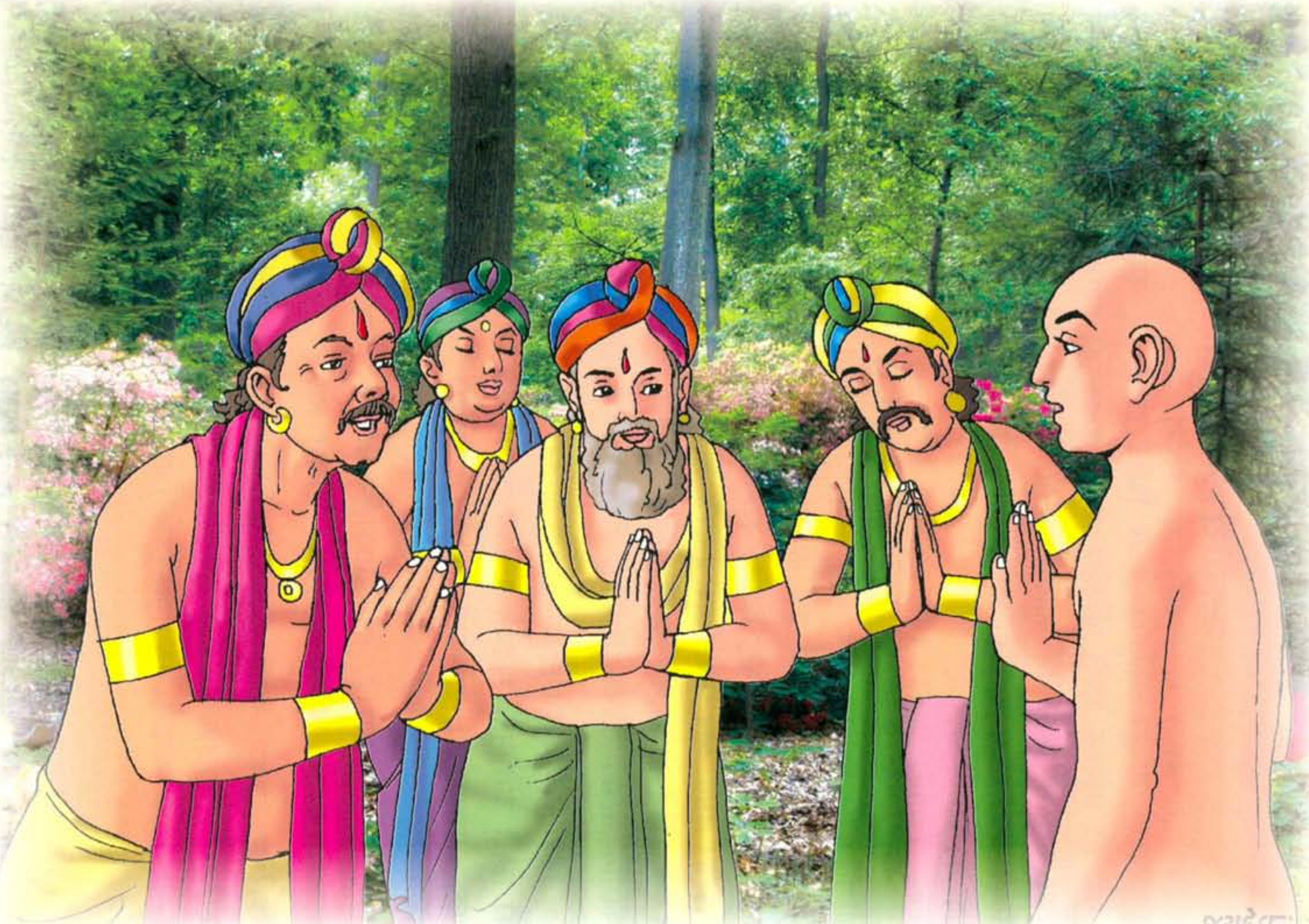

वादी लोग सिद्धसेन आचार्यसे वादमें अपनी हार स्वीकार कर जिनधर्म अपना रहे हैं।

भगवान आचार्यदेव

श्री सिद्धसेन : दीक्षा नाम कुमुदचंद्राचार्य

आचार्यदेव सिद्धसेन स्वामी महाकवि तथा तर्क व न्यायके महाज्ञाता होनेसे महा दार्शनिक भी थे। यद्यपि सिद्धसेन नामक जैन परम्परामें बहुत विद्वान हुए हैं, उनमें आप अनूठे ही थे, इसलिए ही आपको महाकविकी भाँति वादिगजकेसरी भी माना जाता है।

आदिपुराणके रचनाकार आचार्य जिनसेनस्वामी व पद्मपुराणके रचनाकार आचार्य रविषेणस्वामीने आपकी भूरि-भूरि प्रशंसा की है। इसी भांति कई आचार्योंने आपका सन्मानसे स्मरण किया है। तात्पर्य यह है, कि कवि व न्यायके विद्वान आचार्यके रूपमें पश्चात्‌वर्ती आचार्योंमें आपकी बहुत ही ख्याति थी।

कहा जाता है, कि आप उज्जयिनी नगरीके कात्यायन गोत्रीय देवर्षि ब्राह्मणकी देवश्री पत्नीके पुत्र थे। आप प्रतिभाशाली और समस्त शास्त्रोंके पारंगत विद्वान थे। वृद्धवादि जब उज्ञयिनी नगरीमें पधारे, तो उनके साथ सिद्धसेनका शास्त्रार्थ हुआ। सिद्धसेन वृद्धवादिसे बहुत प्रभावित हुए और उनका शिष्यत्व स्वीकार कर लिया।

गुरुने दीक्षा नाम कुमुदचंद्र रखा था व आपके गुरुका नाम धर्माचार्य था।

दिगम्बर आचार्य कि जो 'सन्मतिसूत्र' व 'कल्याणमंदिर' स्तोत्रके रचयिता हैं, वे सिद्धसेन आचार्य और श्वेताम्बरके न्यायावतार ग्रंथके रचयिता सिद्धसेन दिवाकरसे ये सिद्धसेन आचार्य भिन्न हैं। अतः ये सिद्धसेन आचार्य मात्र [१]आचार्य सिद्धसेनके नामसे जाने जाते हैं, जब कि 'श्वेताम्बर सिद्धसेन', 'सिद्धसेन दिवाकर'के नामसे प्रसिद्ध हैं।

फिर भी माना जाता है, दिगम्बर सिद्धसेन आचार्य जब श्वेताम्बरकी मान्यता धारक थे, तब उन्होंने प्राकृत श्वेताम्बर आगमोंको संस्कृतमें रूपान्तरित करनेकी भावनामें, उन्हें १२ वर्षके लिए श्वेताम्बर संघसे निष्कासित किआ गया था। तब वे दिगम्बर साधुओंके सम्पर्कमें आए व उनके तत्त्वसे प्रभावित हुए। विशेषतः आचार्य समन्तभद्रस्वामीके जीवन वृतांत व उनके साहित्यका उनपर भारी प्रभाव पड़ा। इस परसे कहा जाता है, कि वे आचार्य समन्तभद्रदेव

१. कहीं कहीं दिगम्बर आचार्य सिद्धसेनजीके लिए, वे सूर्यसमान होनेसे 'दिवाकर' ऐसी उपमा भी लगानेमें आती थी।

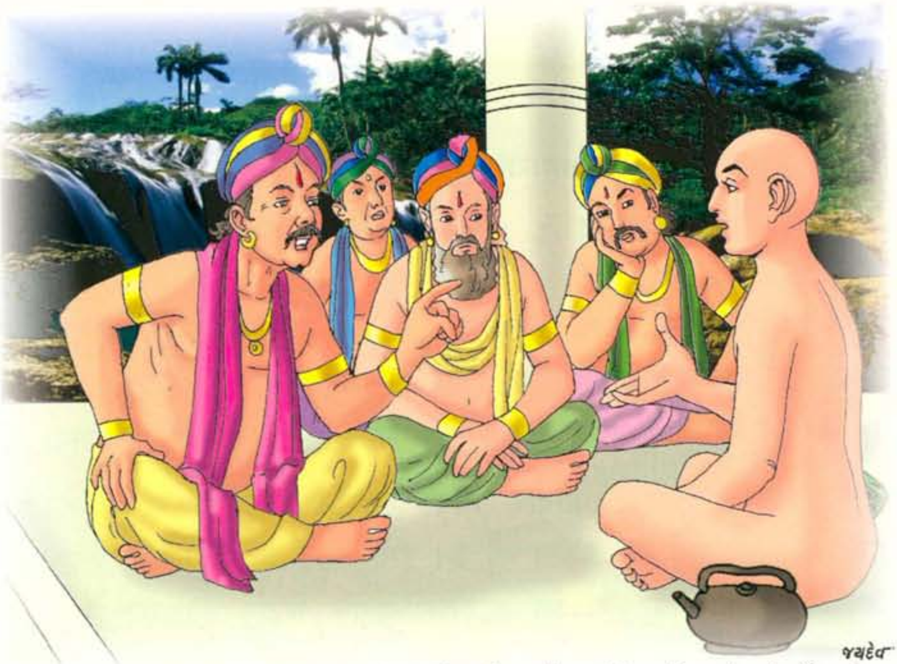

अन्यस्थल पर वाद करनेवाले लोगोंको अनेकांतविद्यासे उपदेश देते वादिगजकेसरी सिद्धसेन आचार्य

जैसी स्तुति आदि रचने लगे। आपका प्रभाव बहुत ही बढ़ने लगा, जिसके कारण श्वेताम्बर संघको अपनी भूलका एहसास हुआ होगा और प्रायश्चित्तकी शेष अवधिको रद्दकर उन्हें प्रभावक आचार्य घोषित किया होगा। लेकिन वे तो दिगम्बर आचार्य ही बने रहे।

आप दिगम्बर संप्रदायके 'सेन'गणके आचार्य माने जाते हैं। आपके बारेमें ऐसा भी कहा जाता है, कि उन्होंने उज्जयिनी नगरीके महाकालके मंदिरमें 'कल्याणमंदिर' स्तोत्र द्वारा रुद्र-लिंगका स्फोटन कर पार्श्वनाथ भगवानका जिनबिंब प्रकट किया। इससे भी आपकी बहुत ही प्रसिद्धि हुई तथा आपने [१]विक्रमादित्य राजाको सम्बोधन किया था।

आप आचार्य समन्तभद्रदेवके पश्चात्‌वर्ती आचार्य माने जाते हैं—अतः आप ई.स. ५६८के आचार्य माने जाते हैं।

आपकी 'सन्मतिसूत्र' व 'कल्याणमंदिर स्तोत्र' अति प्रसिद्ध रचनाऐं हैं। यद्यपि द्वात्रिंशिकाए श्वेताम्बर सिद्धसेन दिवाकरकी रचना मानी जाती है, फिर भी उसमें कुछ रचना दिगम्बर सिद्धसेन आचार्यकी है, व कुछ श्वेताम्बर सिद्धसेन दिवाकर की है।

कल्याणमंदिर स्तोत्रके रचयिता आचार्यदेव कुमुदचंद्रस्वामीको कोटि कोटि वंदन।

---

१. जिनके नामसे विक्रम संवत शुरु होता है, वे राजा विक्रम अन्य थे, व ये राजा विक्रम अन्य होने चाहिए क्योंकि दोनोंके बीच करीब ६०० वर्षका अन्तर है।

भगवान आचार्यदेव

श्री मानतुंग स्वामी

भक्तिपूर्ण काव्यके सृष्टा कविके रूपमें आचार्य भगवान मानतुंग प्रसिद्ध हैं। आप काशीनिवासी धनदेव ब्राह्मणके पुत्र थे। आपके संबंधमें विशेष कोई जानकारी उपलब्ध नहीं है,[1] फिर भी उपलब्ध जानकारी अनुसार वे प्रथम श्वेताम्बर साधु थे, पश्चात् दिगम्बरी दीक्षा धारण कर ली। आप श्वेताम्बर व दिगम्बर दोनों आम्नायमें सन्मानित हैं।

आपके संबंधमें एक प्रसिद्ध कथानुसार, आप एक बार विहार करते हुए [2]उज्जैन पधारे। आपकी चहुँमुखी प्रतिभासे प्रभावित होकर राजा भोज भी दर्शनके लिए गये। भोजके साथ संस्कृतके

श्री मानतुंगाचार्यको राजा भोज द्वारा कालिदासके साथ वाद करनेकी आज्ञा पर मौन देख बेड़ियाँ बांधकर जेलमें ड़ालनेका आदेश

१. कुछेक इतिहासकारों अनुसार आप राजा हर्षके आसपासके कालके आचार्य हैं, ऐसा भी माना जाता है। २. पाठान्तर = धारा नगरी

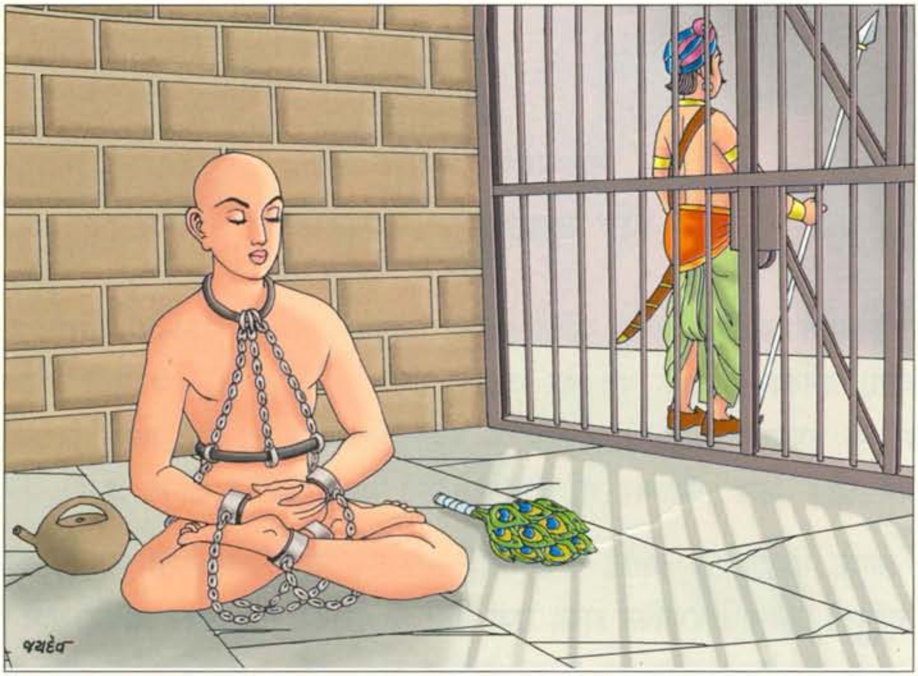

जेलमें श्री मानतुंगआचार्य द्वारा 'भक्तामरस्तोत्र'की रचना करना

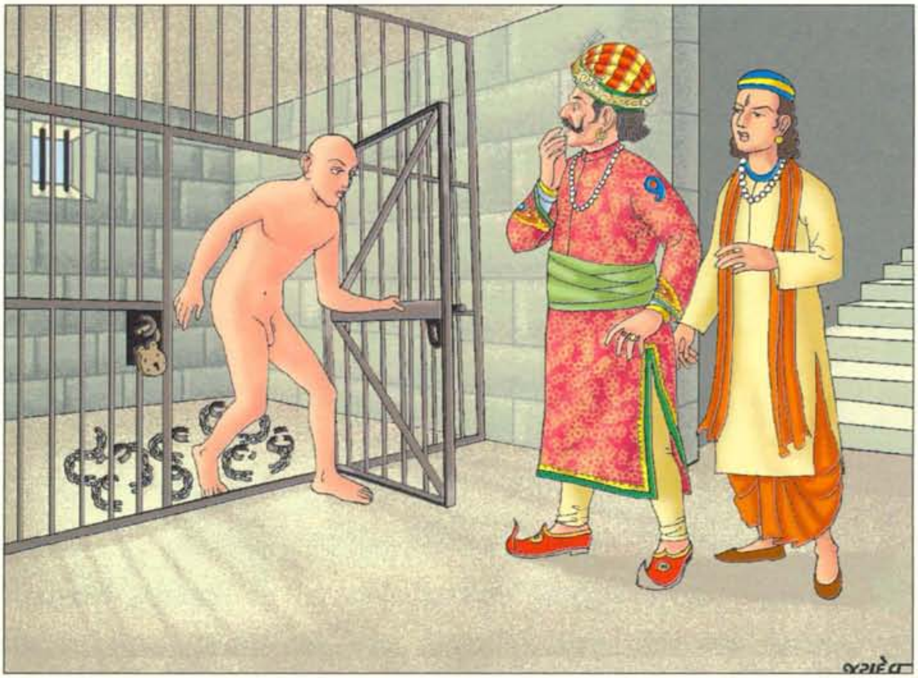

जेलमें भक्तामरस्तोत्रकी रचना करनेसे बेड़ियाँ टूट गई और आचार्य जेलसे बाहर आ गये उन्हें देख राजा व कालिदास आश्चर्यचकित हो जिनधर्मी बनते हैं।

प्रसिद्ध कवि कालिदास भी थे। कालिदासने अपनी विद्वत्ताका प्रभाव दिखानेके लिए मानतुंगाचार्यसे वाद-विवाद प्रारंभ कर दिया। भगवान मानतुंगाचार्यका दार्शनिक व तात्त्विक ज्ञान बहुत उन्नत था। उन्होंने थोड़े समयके विवादमें ही कालिदासको निरुत्तर कर दिया। कालिदास बहुत लज्जित हुए और रात्रिमें कालीदेवीकी आराधना करके, दूसरे दिन भगवान मानतुंगसूरिको राज सभामें बुलाकर शास्त्रार्थ करनेका आग्रह किया। राजाने भगवान मानतुंगसूरिको बुलानेके लिए अपने सिपाही भेजे। परन्तु वे नहीं आए। राजाने भगवान मानतुंगाचार्यको जबरदस्ती पकड़कर बुलाया और कालिदासके साथ शास्त्रार्थ करनेको कहा। भगवान मानतुंगाचार्यने राजाकी आज्ञाका कोई जवाब नहीं दिया, तो राजाने क्रोधित होकर सूरीजीको ४८ कोठोंके भीतरवाले कोटेमें बेडियाँ लगाकर बन्द कर दिया और कड़ा पहरा लगा दिया। रात्रिके पिछले पहरमें सूरिजीने अपने १४८ कर्मोंके नाश हेतु, 'भक्तामर स्तोत्र'की रचना की और भक्तिमें लीन होकर स्तोत्रका पाठ किया। पाठ करते हुए जब ४६वाँ 'आपाद-कण्ठमुरु-श्रृङ्खल-वेष्ठिताङ्गा' पढ़ने लगे, तब ऐसा चमत्कार हुआ, कि हथकड़ी और ताले स्वयं टूट गये और वे ४८ कोठोंके बाहर आ गये। इस चमत्कारको जानकर राजा भी वहाँ आया और सूरिजीके चरणोंमें नमस्कार कर अपने अपराधकी क्षमा मांगी।

आपकी कवित्व शक्तिको विद्वानोंने राजा भोजके राज्यसभाके कवि कालिदास तथा अन्य कवि भारवी, भर्तुहरि, शुभचन्द्र, धनंजय, कवि बाण व वररुचिके समान बिरदाई है।

आपकी मात्र एकही रचना 'भक्तामर स्तोत्र' अति प्रसिद्ध रचना है, जिसमें आचार्यदेवने आदिनाथ भगवानकी स्तुति की है, परन्तु इस स्तोत्रका प्रथम शब्द 'भक्तामर' होनेसे यह स्तोत्र 'भक्तामर-स्तोत्र'के नामसे प्रसिद्ध है।

आप ई.स. ६१८-६५०के आचार्य होंगे—ऐसा इतिहासकारोंका मानना है।

भक्तामर स्तोत्रके रचयिता आचार्यदेव मानतुंगस्वामीको कोटि कोटि वंदन।

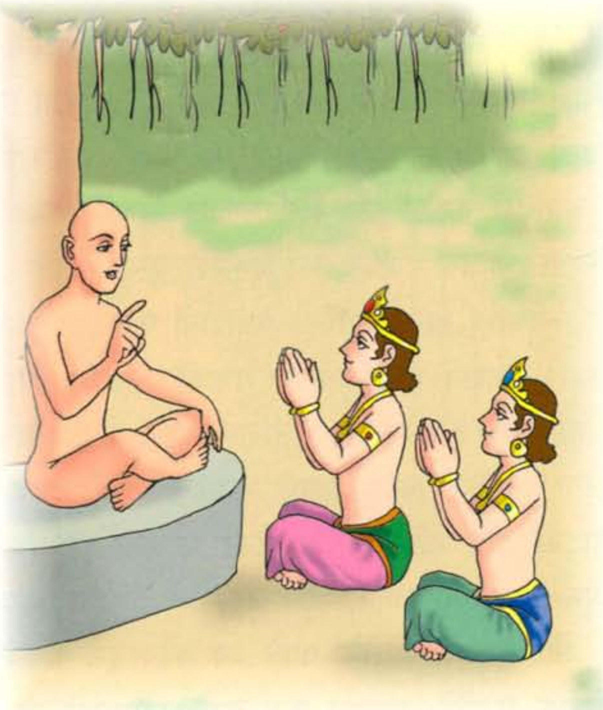

शिष्योंको उपदेश देते आचार्य प्रभाचन्द्र(द्वितीय)

भगवान आचार्यदेव

श्री प्रभाचन्द्र आचार्य (द्वितीय)

'प्रभाचन्द्र' नामक कई आचार्य हुए हैं, उसमें आप ई.की ७वीं शताब्दिके आचार्य हैं। वैसे आपका जीवन विशेष अधिक परिचित नहीं है, और कहीं विशेष नाम-उल्लेख भी नहीं आता। परन्तु आपने अपने जीवनकालमें एक नवीन ही 'तत्त्वार्थसूत्र'की रचना की है। यद्यपि इसमें श्रुतधर आचार्य गृद्धपिच्छस्वामीके तत्त्वार्थसूत्रका अनुसरण तो है ही, परन्तु सूत्र रचना संक्षिप्त व अन्य आचार्योंकी अन्य रचनाओंके आधारसे विशेष स्पष्टता सह है। कहीं-कहीं उमास्वामीके तत्त्वार्थसूत्रसे आधिक्यता भी प्रतीत होती है।

इस 'तत्त्वार्थसूत्र'का गहरा अवलोकन करनेसे यह भी ज्ञात होता है, कि आपने 'अर्हत्प्रवचन'का अवलोकन कर ही यह रचना बनाई है।

आपका अपरनाम 'बृहद्प्रभाचन्द्र'के रूपमें भी प्रसिद्ध है।

आप ई.स.की सातवीं शताब्दी उत्तरार्धके आचार्य थे।

आचार्यदेव प्रभाचंद्र(द्वितीय)को कोटि कोटि वंदन।

भगवान आचार्यदेव

श्री अकलंक भट्ट

जैन साहित्यके अद्वितीय कार्य करनेके पश्चात् भी प्रसिद्धिसे दूर रहते हुए, निज आत्माकी आराधनामें निरत रहते, जैन न्यायशास्त्रके सूर्यरूप भट्ट अकलंकदेवको कोई भी जैन, स्मरण किए बिना नहीं रहता।

वैसे तो भगवान समन्तभद्राचार्यदेव जैन न्यायके संस्थापकरूपमें अति प्रसिद्ध हैं। फिर भी अकलंकदेव भी उसी भांति जैन न्यायके संस्थापकरूपमें बहुत प्रसिद्ध हैं। आपके पश्चात्वर्ती उच्चकोटिके आचार्यवर अनन्तवीर्य, विद्यानन्दि आचार्य, वादिराज आचार्य तथा प्रभाचन्द्र आचार्य जैसे जैन वाङ्मयके न्याय विषयक ग्रंथोंके रचयिता प्रकाण्ड विद्वद्वर्योंने भी आपकी भूरी-भूरी प्रशंसा सह आपको स्मरण किया है। इतना ही नहीं, आपके गूढ़ न्यायोंके भाव खोलनेमें स्वयंकी असमर्थता भी प्रदर्शित की है।

आपके बारेमें विविध ग्रंथोंमें विविध कथानक मिलते हैं, उनमेंसे कतिपय उल्लेख निम्न प्रकार हैं, जिससे आपके संबंधमें कुछ-कुछ प्रकाश पड़ता है। जैसे :—

(१) आराधनाकथाकोषमें बताया है, कि 'मान्यखेटके राजा शुभतुंग थे। उनके मंत्रीका नाम पुरुषोत्तम था। पद्मावती उनकी पत्नी थी। पद्मावतीके गर्भसे दो पुत्र उत्पन्न हुए– अकलंक और निष्कलंक।

(२) आचार्यदेव प्रभाचन्द्रके शब्दकोषमें आपकी कथा देते हुए लिखा है, कि एकबार अष्टाह्निका पर्वके अवसरपर आपके माता-पिता अपने पुत्र अकलंक और निष्कलंक सहित मुनिराजके पास दर्शन करने गये। धर्मोपदेश श्रवण करनेके पश्चात् उन्होंने आठ दिनोंके लिए ब्रह्मचर्य व्रत ग्रहण किया और पुत्रोंको भी ब्रह्मचर्यव्रत दिलाया। जब दोनों भाई वयस्क हुए और माता-पिताने उनका विवाह करना चाहा, तो उन्होंने मुनिके समक्ष ली गई प्रतिज्ञा याद दिलायी और विवाह करनेसे इन्कार कर दिया। पिताने पुत्रोंको समझाते हुए कहा, कि 'वह व्रत तो केवल आठ दिनोंके लिये ही ग्रहण किया गया था। अतः विवाह करनेमें कोई भी रुकावट नहीं है।' पिताके उक्त वचनोंको सुनकर पुत्रोंने उत्तर दिया—'उस समय,

समय-सीमाका जिक्र नहीं किया गया था। अतः ली गयी प्रतिज्ञा तोड़ी नहीं जा सकती।'

पिताने पुनः कहा—'वत्स! तुम लोग उस समय अबुध थे। अतः ली गयी प्रतिज्ञामें समय-सीमाका ध्यान नहीं रखा। वहाँ लिए गए व्रतका आशय केवल आठ दिनोंके लिये ही था, जीवन-पर्यन्तके लिये नहीं। अतएव विवाह कर तुम्हें हमारी इच्छाओंको पूर्ण करना चाहिए।'

पुत्र बोले—'पिताजी! एक बार ली गयी प्रतिज्ञा तोड़ी नहीं जा सकती। अतः यह व्रत तो जीवन-पर्यन्तके लिये है। विवाह करनेका अब प्रश्न ही नहीं उठता।'

पुत्रोंकी दृढ़ताको देखकर माता-पिताको आश्चर्य हुआ। पर वे उनके अभ्युदयका ख्यालकर उनका विवाह करनेमें समर्थ न हुए। अकलंक और निष्कलंक ब्रह्मचर्यसे साधना करते हुए विद्याध्ययन करने लगे।

(३) आराधना कथाकोष अनुसार उस समय बौद्धधर्मका सर्वत्र प्रचार था व युवावस्था होनेपर पुत्रोंने विवाह करनेसे इन्कार कर दिया तथा वे दोनों भाई विद्याध्ययनमें संलग्न होने हेतु महाबोधि-विद्यालयमें बौद्ध-शास्त्रोंका अध्ययन करने लगे।'

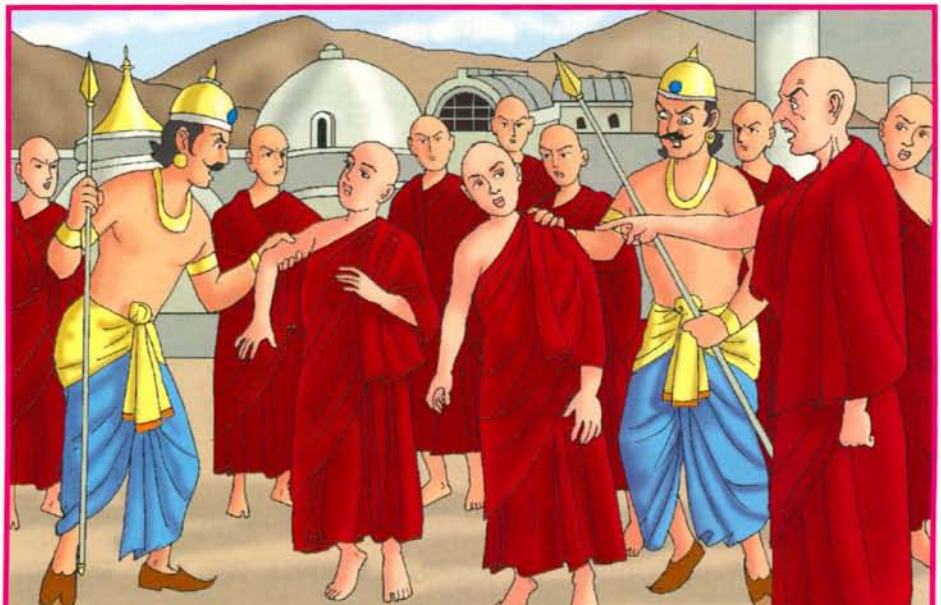

बौद्ध विद्यालयमें अकलंक व निकलंक ही मात्र जैनधर्मी हैं,
ऐसा बौद्ध साधुओंको पता लगने पर उन्हें पकड़कर जेलमें ड़ालना।

एक दिन गुरुमहोदय शिष्योंको सप्तभंगी समझा रहे थे, पर पाठ अशुद्ध होनेके कारण वे उसे ठीक नहीं समझा सके। गुरुके कहीं चले जाने पर, अकलंकने उस पाठको शुद्ध कर दिया। इससे गुरुमहोदयको शिष्योंमें कोई शिष्य जैन होनेका सन्देह हुआ। कुछ दिनोंमें उन्होंने अपने प्रयत्नों द्वारा उनको जैन प्रमाणित कर लिया। दोनों भाई कारागृहमें बन्द कर दिए गए। रात्रिके समय दोनों भाईयोंने कारागृहसे निकल जानेका प्रयत्न किया। वे अपने प्रयत्नमें सफल भी हुए और कारागृहसे निकल भागे। प्रातःकाल ही बौद्ध गुरुको उनके भाग जानेका पता चला। उन्होंने चारों ओर घुड़सवारोंको दौड़ाकर दोनों भाईयोंको पकड़ लानेका आदेश दिया।

घुड़सवारोंने उनका पीछा किया। कुछ दूर आगे चलने पर दोनों भाईयोंने अपने पीछे आनेवाले घुड़सवारोंको देखा और अपने प्राणोंकी रक्षा न होते देख अकलंक निकटके एक तालाबमें कूद पड़े और कमलपत्रोंसे अपने आपको आच्छादित कर लिया। निष्कलंक भी प्राणरक्षाके लिए शीघ्रतासे भाग रहे थे। उन्हें भागता देख तालाबका एक धोबी भी भयभीत होकर साथ-साथ भागने लगा। घुड़सवार निकट आ चुके थे। उन्होंने दोनोंको शीघ्रतासे पकड़ लिया और उनका वध कर डाला। घुड़सवारोंके चले जाने पर, अकलंक तालाबसे निकल निष्कलंक और निर्दोष धोबीको मरा देख दुःखित हो भ्रमण करने लगे।

(४) कलिंग देशके रतनसंचयपुरका राजा हिमशीतल था। उनकी रानी मदनसुंदरी जिनधर्मकी भक्त थी। वह बड़े उत्साहके साथ जैनरथ निकालना चाहती थी। किन्तु बौद्ध गुरु जैन रथ निकलने देनेके पक्षमें नहीं थे। उनका कहना था, कि कोई भी जैन विद्वान जब तक मुझे शास्त्रार्थमें पराजित नहीं कर देगा, तब-तक जैन रथ नहीं निकाला जा सकता है। गुरुके विरुद्ध राजा कुछ नहीं कर सकता था। बड़े धर्मसंकटका समय उपस्थित था। जब अकलंकदेवको यह समाचार मिले, तो वे[१] राजा हिमशीतलकी सभामें गये और बौद्ध गुरुको शास्त्रार्थ करनेको कहा। अकलंकदेव बाहर व बौद्धगुरु परदेके अन्दर रहकर दोनोंके बीच कुछ समय तक शास्त्रार्थ होता रहा। अकलंकदेवको इस शास्त्रार्थसे बड़ा आश्चर्य हुआ। उन्होंने इसका रहस्य जानना चाहा। उन्हें शीघ्र ज्ञात हो गया, कि बौद्ध गुरुके स्थान पर, परदेके अन्दर घड़ेमें बैठी बौद्धदेवी 'तारा' शास्त्रार्थ कर रही है। उन्होंने परदेको खोलकर घड़ेको फोड़ डाला। 'तारा'देवी भाग गयी और बौद्धगुरु पराजित हुए। खूव धामधूमसे जैनरथ निकाला गया और जैनधर्मका महत्त्व प्रकट हुआ।

---

१. पाठान्तर : कुछ इतिहासकारोंनें श्री अकलंकदेवको मुनिलिंगमें हिमशीतलकी सभामें चर्चा करते हुए दिखाया है ।

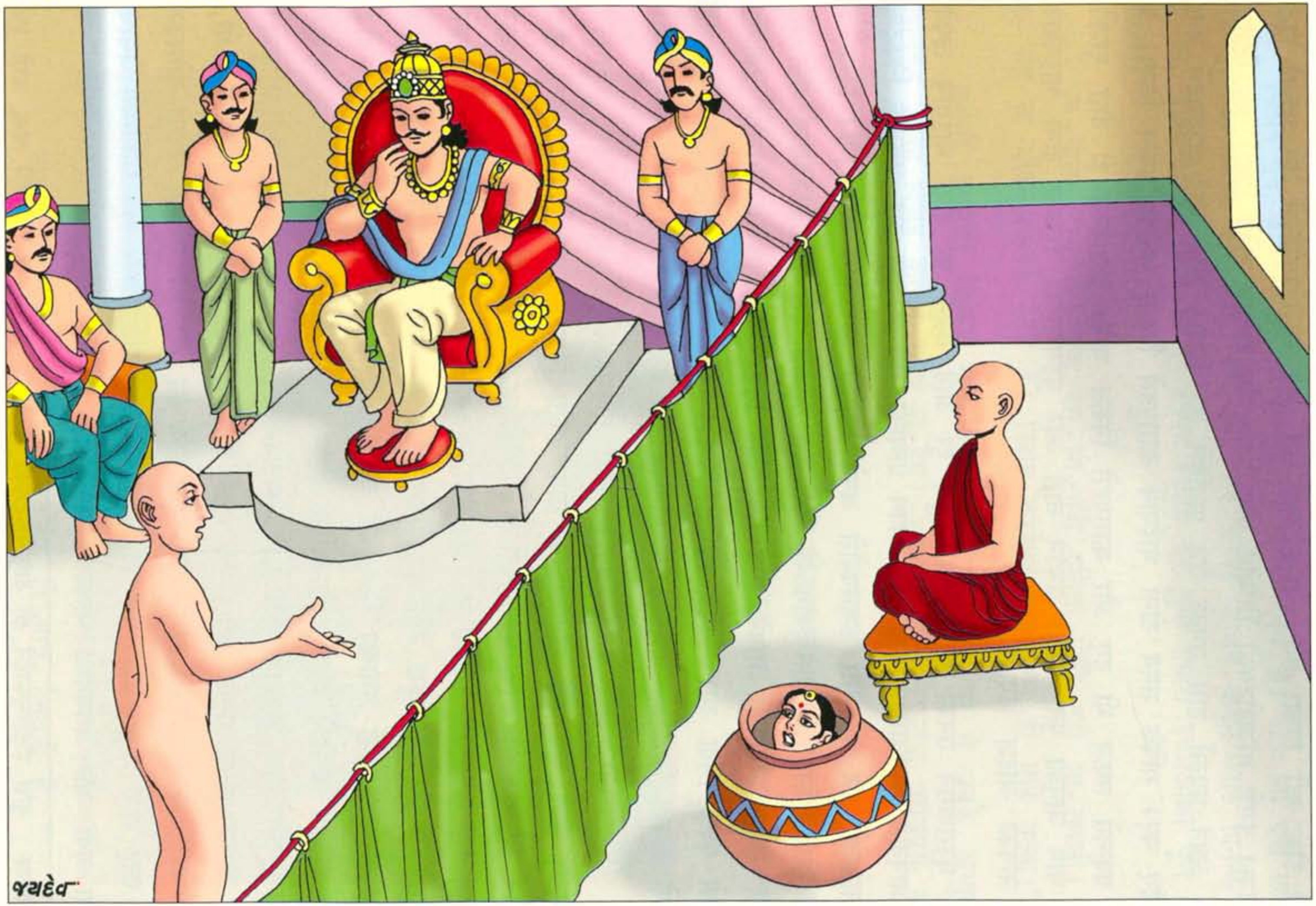

हिमशीतलकी सभामें पर्दे पीछे रहकर, तारादेवीको साधकर बौद्धगुरु श्री अकलंक आचार्यसे वाद-विवाद करते हैं।

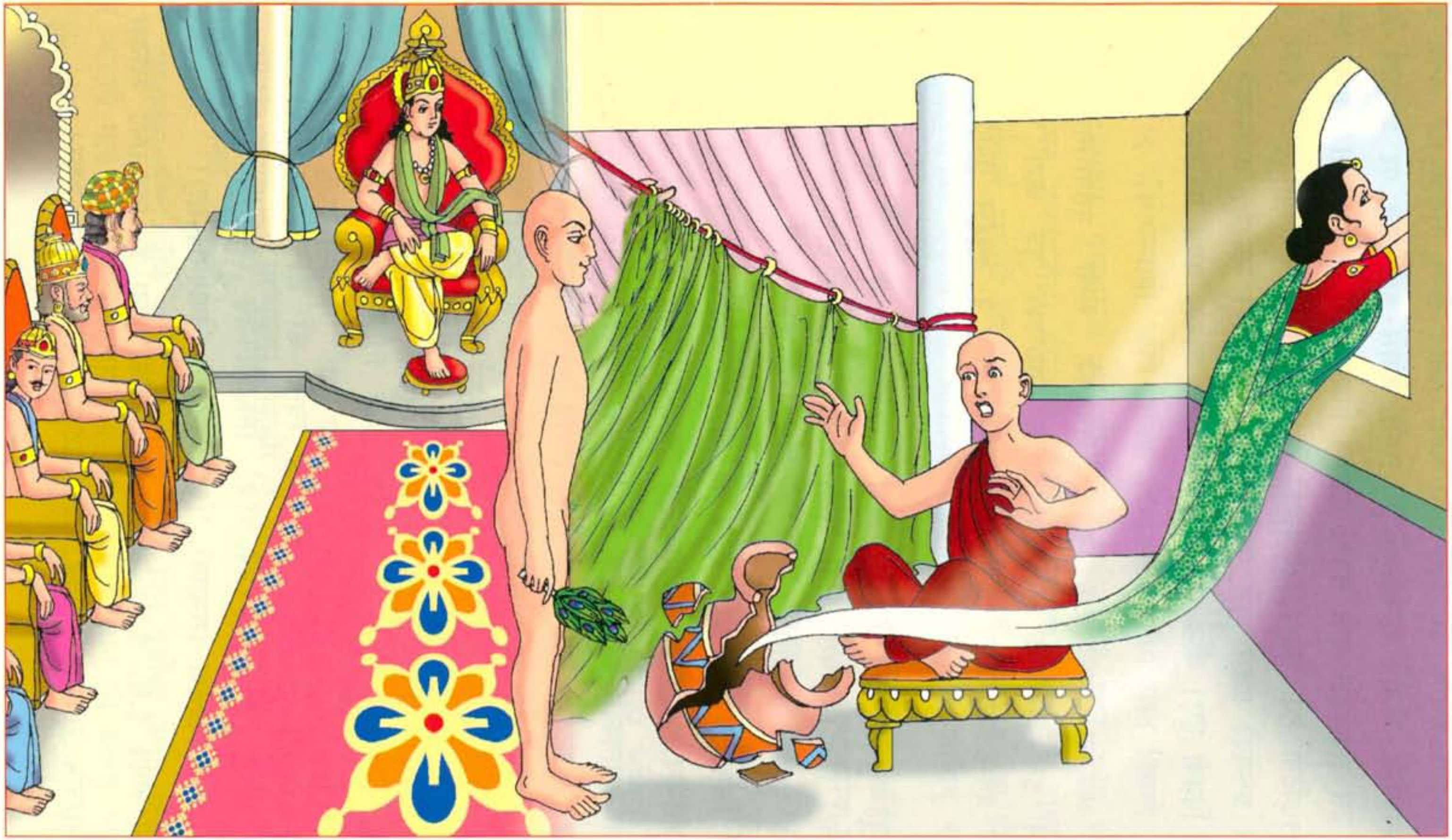

तारादेवी द्वारा बौद्धगुरुको चर्चा करते हुए जानकर श्री अकलंक आचार्य द्वारा तारादेवीकी मटकी फूटना, तारादेवीका भागना और बौद्धोंका हारना

(५) 'राजावलिकथे'में भी उक्त कथा प्रायः समान रूपमें मिलती है। अन्तर इतना ही है, कि काञ्चीके बौद्धोंने हिमशीतलकी सभामें जैनोंसे इसी शर्त पर शास्त्रार्थ किया, कि हारने पर उस संप्रदायके सभी मनुष्य कोल्हूमें पिलवा दिये जायेंगे। इस कथाके अनुसार यह शास्त्रार्थ १७दिनों तक चला। अकलंकको कुसुमाण्डिनी देवीने स्वप्नमें दर्शन देकर कहा, कि तुम अपने प्रश्नोंको प्रकारान्तरसे उपस्थित करने पर जीत सकोगे। अकलंकने वैसा ही किया और वे विजयी हुए। बौद्ध कोल्हूमें पिलवा दिये जानेके भयसे कलिंगसे सिलोन(लङ्का) चले गये।

(६) अकलंक मान्यखेटके राजा, शुभतुंगके मन्त्री पुरुषोत्तमके पुत्र थे। 'राजावलिकथे'में इन्हें काञ्चीके जिनदास नामक ब्राह्मणका पुत्र कहा गया है। पर तत्त्वार्थवार्तिकके प्रथम अध्यायके अन्तमें उपलब्ध प्रशस्तिसे ये लघुहव्व नृपतिके पुत्र प्रतीत होते हैं।

ये लघुहव्वनृपति कौन हैं और किस प्रदेशके राजा थे, यह इस परसे या अन्य कहींसे ज्ञात नहीं होता। नामसे इतना प्रतीत होता है, कि वे दक्षिणके होने चाहिए और उसी क्षेत्रके वे नृपति रहे होंगे।

आपने किनसे व कब दीक्षा ग्रहण की थी, वह कथानक प्राप्त नहीं हुआ, फिर भी आप अति प्रशंसनीय, विद्वत्तायुक्त भावलिंगी आचार्य भगवंत थे, इसमें दो मत नहीं है।

उपर्युक्त कथानकोंसे यह स्पष्ट है, कि भगवान अकलंकदेव वादक्षेत्रमें दिग्विजयी शास्त्रार्थी विद्वान थे तथा राष्ट्रकूटवंशी राजा साहसतुंगकी सभामें उन्होंने सम्पूर्ण बौद्ध विद्वानोंको पराजित किया। काञ्चीके पल्लवीवंशी राजा हिमशीतलकी राजसभामें भी आपने अपूर्व विजय प्राप्त की थी। इसी कारण आचार्य भगवंत विद्यानन्दिदेवने आपको सकलतार्किकचूड़ामणि कहा है।

आपके शिष्यका नाम महादेव भट्टारक था। उनके बारेमें विशेष कोई जानकारी नहीं मिलती है।

आपने न्याय विषयक अनेक ग्रंथोंकी रचना की हैं। आपके (१) लघीयस्त्रय (स्वोपज्ञवृत्तिसहित), (२) न्यायविनिश्चय, (३) सिद्धिविनिश्चय (सवृत्ति), (४) प्रमाणसंग्रह (सवृत्ति), (५) तत्त्वार्थवार्त्तिक (सभाष्य), (६) अष्टशती-(देवागमविवृत्ति)।

आपका समय ई.स. ६२० से ६८०के बीचका होना ही विद्वानोंको स्वीकार है।

न्यायशास्त्रके सूर्यरूप आचार्य अकलंकदेवको कोटि कोटि वंदन।

भगवान आचार्यदेव
श्री रविषेणस्वामी

आचार्यदेव रविषेणस्वामी अपने ज्ञायक स्वभावकी मस्तीमें मस्त विचरते होने पर भी, आपका महान धर्मात्मा पुराणपुरुष श्री रामचन्द्रजी मुनीन्द्र पर हृदय उमड़ आया। जिससे प्रेरित होकर आपने रामचंद्रजीकी गौरवपूर्ण गाथाको 'पद्मपुराण'में एकतान होकर लेखनीरूपसे आकार दिया। जिसमें आपकी श्री रामचन्द्रजी भगवानके प्रति भक्ति प्रचुरता ही प्रतीत होती है। ऐसे शुद्धोपयोगकी प्रचुरता सह भक्तिकी प्रचुरताके धारक ये आचार्य रविषेणजी थे।

जिनवाणीका लोकप्रिय अंग प्रथमानुयोग अर्थात् कथा-साहित्यके संस्कृत रचयिताके रूपमें सर्वप्रथम रविषेणाचार्य ही हैं, उनसे पहले इतने विस्तृतरूपमें प्रथमानुयोग रचयिता अन्य कोई आचार्य नहीं हुए हैं। 'पद्मपुराण' रचकर पाठकोंको संसारसे विरक्त कर धर्ममार्गमें ला दे–ऐसे हृदयको छू जानेवाला अनुपमग्रंथ आपने अत्यंत सरल भाषामें रचा होनेसे आप जैन समाजमें अत्यंत प्रिय हैं।

आपके पश्चात्वर्ती समर्थ आचार्य जिनसेनस्वामीने भी आपको भक्तिसे स्मरण किया है।

आचार्य रविषेण किस संघ या गण-गच्छके थे, इसका उल्लेख उनके ग्रन्थ 'पद्मचरित'में उपलब्ध नहीं होता। 'सेन' नामक अन्त शब्द ही इस बातका सूचक प्रतीत होता है, कि आप 'सेनसंघ'के आचार्य थे। 'पद्मचरित'में निर्दिष्ट गुरु परम्परासे अवगत होता है, कि इन्द्रसेनके शिष्य दिवाकरसेन थे और दिवाकरसेनके शिष्य अर्हत्सेन थे व इन अर्हतसेनके शिष्य लक्ष्मणसेन हुए और लक्ष्मणसेनके शिष्य रविषेण हुए।

आपके जन्मस्थान, बाल्यकाल, किशोर व युवावयके जीवन आदि सम्बन्धित कुछ भी जानकारी नहीं मिल पायी है।

आचार्यवर रविषेणजीने पद्मचरितके ४३वें पर्वमें जिन वृक्षोंका वर्णन किया है, वे वृक्ष दक्षिण भारतमें पाये जाते हैं। इस तरह आपका भौगोलिक ज्ञान भी दक्षिण भारतका जितना स्पष्ट और अधिक है, उतना अन्य भारतीय प्रदेशोंका नहीं। अतएव आपका जन्मस्थान दक्षिण

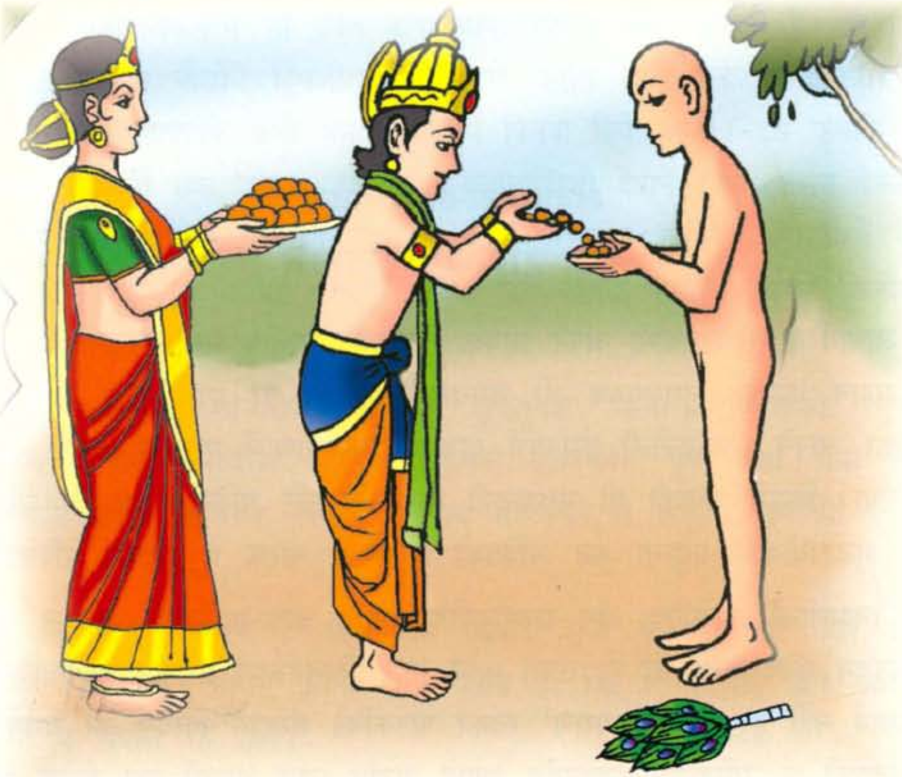

नवधाभक्तिपूर्वक आहारदान ग्रहण करते आचार्य रविषेणजी

भारतका भूभाग होना चाहिए।

यद्यपि आपने पद्मचरित (पद्मपुराण)की रचनामें विमलसूरिकृत प्राकृत 'पद्मचरियम्'का आधार लेनेपर भी आपकी रचना मौलिक रचना ही हो ऐसा प्रतीत होता है। इस पुराणके कथानायक मुनि रामचन्द्रजी हैं, पर अवान्तर प्रसंग भी हृदयको छू जाए इस तरहसे रखे गए हैं व लेखन शैली सभी रसोंकी गारवताको रखती हुई पाठकके हृदयको लुभाती है।

आपने मात्र एक 'पद्मचरित (पद्मपुराण)' ग्रंथकी रचना की है।

आपके 'पद्मपुराण'की रचना वि.सं. ७३४ अर्थात् ई.स. ६७७ में हुई होनेसे आपका काल ई.स. ६७७ है।

पद्मपुराणके रचयिता आचार्यदेव रविषेण भगवंतको कोटि कोटि वंदन।

भगवान आचार्यदेव
श्री जटासिंहनन्दि
अपरनाम **जटाचार्य**

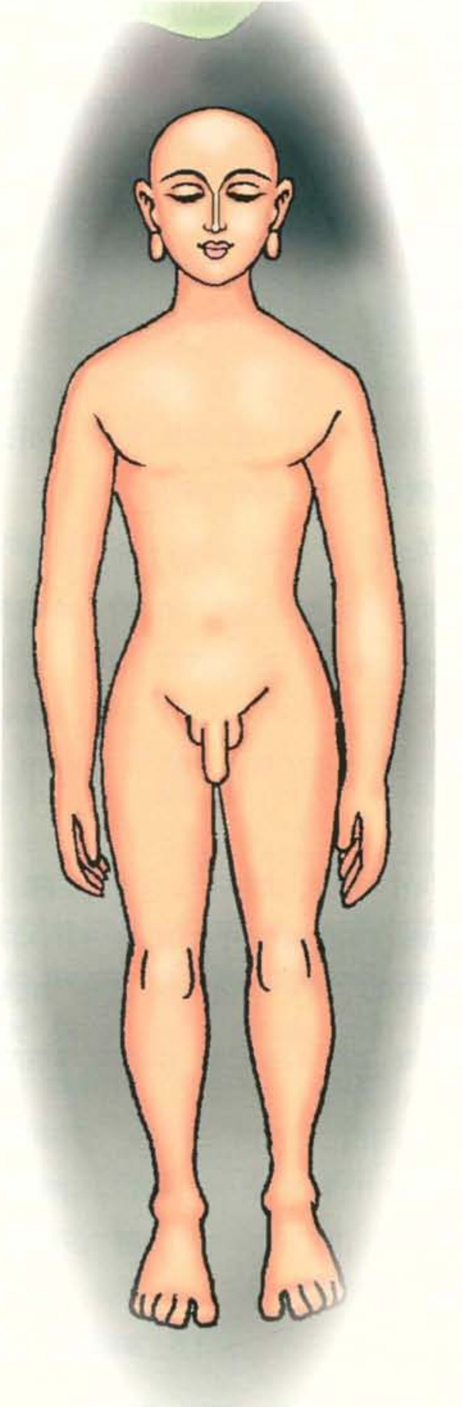

कायोत्सर्गधारी आचार्य जटासिंहनन्दीजी

ज्ञानानन्दस्वभावकी मस्तीकी प्रचुरतामें रत्नत्रयमयरसके भोजी, दक्षिणदेशके प्राचीन आचार्य जटासिंहनंदिकी मुख्यरूपसे एक ही सुंदर रचना 'वराङ्गचरित्र' नामसे प्रसिद्ध है।

आप इतने प्रसिद्ध थे, कि जैनाचार्य ही नहीं, परन्तु अन्यमतके विद्वानोंने भी आपको गौरवसे स्मरण किया है। जैनाचार्यमें हरिवंशपुराणके रचयिता आचार्यदेव जिनसेनस्वामी (प्रथम) व आदिपुराणके रचयिता आचार्यदेव जिनसेन (द्वितीय)ने बहुत ही सन्मानसे 'वराङ्गचरित्र'को व आपको अर्थात् जटासिंहनन्दि आचार्यको सन्मानित किया है।

ख्याति, कुल, जाति, कुटुम्बादिसे अति निस्पृह रहते जैनाचार्योंकी यह विशेषता, उनके प्रत्येक ग्रंथोंमें झलकती है, कि वे हमेशा इस बारेमें मौन रहते हैं। मात्र आपकी ख्याति ही आपके पश्चात्वर्ती आचार्योंके ग्रंथोंमें झलकती है, उससे ही आपके संबंधमें यत्किंचित् जाना जाता है। उसी तरह भगवान श्री जटासिंहनन्दीके बारेमें कहें तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी।

फिर भी विद्वानोंके एक शोधपूर्ण लेखके आधारसे यह जाना जाता है, कि 'किसी समय निजाम स्टेटका 'कोपल' ग्राम, जिसे 'कोपण' भी कहते हैं, जैन संस्कृतिका एक प्रसिद्ध केन्द्र था। मध्यकालिन भारतके जैनोंमें इसकी अच्छी ख्याति थी और आज भी यह स्थान पुरातन-प्रेमियोंके स्नेहका भाजन बना हुआ है। इसके निकट 'पल्लकीगुण्डु' नामकी पहाड़ीपर अशोकका एक अभिलेख उत्कीर्ण है, जिसके निकट दो पद-चिह्न अंकित हैं। उनके ठीक नीचे पुरानी कन्नड़में दो पंक्तिका एक अभिलेख उत्कीर्ण है, जिसमें लिखा है, कि 'यावय्यने जटासिंहनन्द्याचार्यके पदचिह्नोंको तैयार कराया'।

यह भी जाना जाता है, कि आप एक महाकवि थे तथा कन्नड साहित्यमें आपके संबंधमें आई भूरि-भूरि प्रशंसासे यह सूचित होता है, कि आपका अधिकांश विहार कर्णाटक प्रदेशमें हुआ था व 'कोपल'में आपने अन्तिम जीवन व्यतीत किया था।

आचार्यदेव जिनसेन (द्वितीय)ने आपके लिए लिखा है, उस परसे प्रतीत होता है, कि आपकी लहराती हुई कीर्तिरूप जटाएँ लम्बी-लम्बी थी। यह मात्र आपकी ख्यातिरूपी जटाओंके बारेमें ही उल्लेख हो, ऐसा प्रतीत होता है। उसी भांति आप अपने शरीरके प्रति इतने अधिक निस्पृह होंगे व गहन जंगलोंमें ही विशेष विचरण करते होनेसे आपको 'आदिवासी'के रूपमें ही लोग स्मरण करते रहे होंगे। इतिहासकारोंकी ऐसी कल्पनामात्र ही प्रतीत होती है।

आपकी जानी पहचानी मात्र एक ही कृति 'वरांङ्गचरित्र' होनेका उल्लेख मिलता है, फिर भी अन्य शास्त्रोंमें आपके नामसे दिये जाते श्लोक 'वराङ्गचरित्र'में उपलब्ध नहीं होनेसे विद्वानोंका मानना है, कि आपकी 'वराङ्गचरित्र'के अलावा अन्य कृति भी होनी चाहिए।

आपका काल ई.की ७वीं शताब्दीका उत्तरार्ध व ८वीं शताब्दीका पूर्वार्धके आसपास ही होना निश्चित होता है।

आचार्यदेव जटासिंहनन्दि भगवंतको कोटि कोटि वंदन।

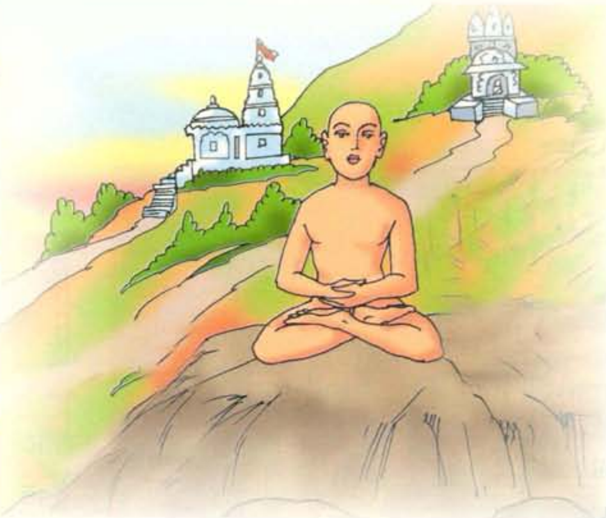

भगवान आचार्य श्री शान्त अथवा शान्तिषेण

भगवान आचार्य शान्त अथवा शान्तिषेणका साहित्यमें सविशेष उल्लेख है। इनकी उत्प्रेक्षालंकारसे युक्त वक्रोक्तियोंकी प्रशंसा की गई है। बताया है–

शान्तस्यापि च वक्रोक्ती रम्योत्प्रेक्षा बलान्मनः।
कस्य नोद्घाटितेऽन्वर्थे रमणीयेऽनुरञ्जयेत्॥

अर्थात् श्री शान्त कविकी वक्रोक्तिरूप रचना रमणीय उत्प्रेक्षाओंके बलसे मनोहर अर्थके प्रकट होने पर किसके मनको अनुरक्त नहीं करती है?

पुन्नाट संघकी गुर्वावलि अनुसार आप आचार्य जयसेनजीके गुरु थे।

आचार्य जिनसेनने अपनी गुरु परम्पराका वर्णन करते हुए आचार्य जयसेनजीके पूर्व एक भगवान शान्तिषेण आचार्यका नामोल्लेख किया है। आचार्य जिनसेनजीकी गुरु परम्परामें नाम आनेके कारण आपका समय ७वीं शताब्दी होना चाहिए। हरिवंशपुराणके अन्तमें दी हुई प्रशस्तिमें विनयन्धर, गुप्तश्रुति, गुप्तऋषि, मुनीश्वर, शिवगुप्त, अर्हद्बलि, मन्दरार्य, मित्रविरवि, बलदेव, मित्रक, सिंहबल, वीरवित, पद्मसेन, व्याघ्रहस्त, नागहस्ति, जितदण्ड, नन्दिषेण, दीपसेन, श्रीधरसेन, सुधर्मसेन, सिंहसेन, सुनन्दिषेण, ईश्वरसेन, सुनन्दिषेण, अभयसेन, सिद्धसेन, अभयसेन, भीमसेन, जिनसेन और शान्तिषेण आचार्य हुए। अनन्तर जयसेन, अमितसेन, कीर्तिसेन और जयसेन हुए हैं। स्पष्ट है कि शान्तिषेण अच्छे कवि और दार्शनिक थे।

आपका समय ईसुकी सातवीं शताब्दी माना जाता है।

आचार्यदेव शान्तिषेण भगवंतको कोटि कोटि वंदन।

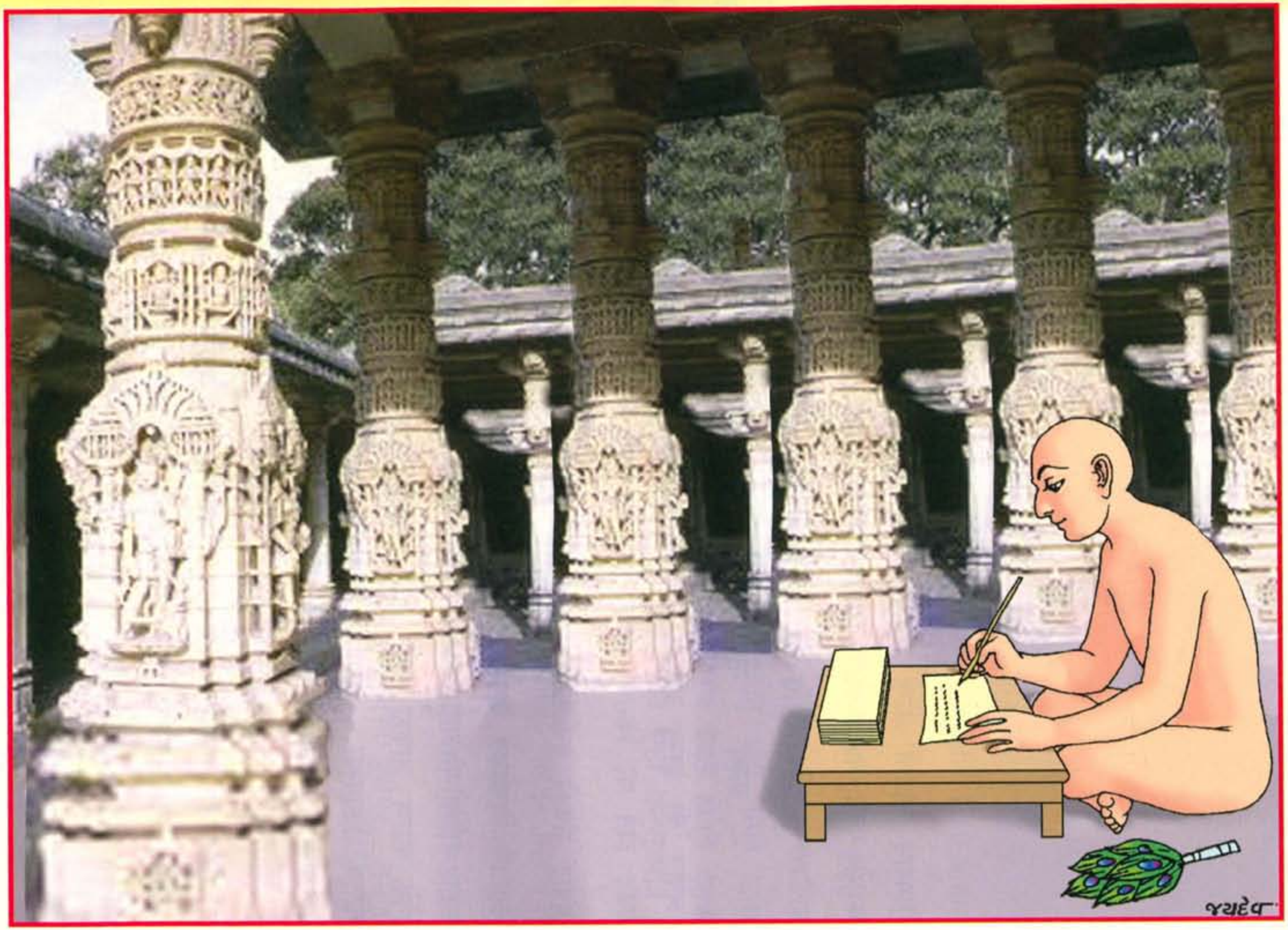

गिरनार यात्राके समय वढ़वाणके पार्श्वनाथ जिनमन्दिरमें 'हरिवंशपुराण'की रचना शुरू करते जिनसेनाचार्य

भगवान आचार्यदेव

श्री जिनसेनस्वामी (प्रथम)

अंतरमें आत्मस्वभावकी महिमाकी प्रचुरतामें लवलीन रहते हुए, पुरुषार्थकी कमजोरीसे आँखके टिमकार मात्र, स्वरूपसे उपयोग बाहर आने पर, करुणासे महान शास्त्रोंके रचयिता होने पर भी, स्वयं अपनी महानताके बारेमें कुछ भी नहीं लिखनेवाले व बाह्यरूपसे जंगलमें रहते आचार्य जिनसेनस्वामी (प्रथम) पर जैन समाज बहुत आदरसे समर्पित है। इस हेतु आपकी अद्वितीय ऐतिहासिक रचना 'हरिवंशपुराण' एक ही पर्याप्त है।

आचार्यवर जिनसेनस्वामी (प्रथम) पुन्नाट संघके आचार्य थे। 'पुन्नाट' शब्द कर्णाटकी होनेसे वे दक्षिण प्रांतके होनेका अनुमान है। आपके गुरुका नाम कीर्तिषेण था। आपने हरिवंशपुराणमें यह रचना कहाँ बैठकर लिखी है, उसका तत्कालीन इतिहास लिखा है, उससे ज्ञात होता है, कि आप विहार प्रिय थे। गिरनार यात्रा हेतु गुजरात राज्यके सौराष्ट्रदेश स्थित सुवर्णसे बढ़नेवाली विपुल लक्ष्मीसे संपन्न अत्यंत समृद्ध वर्द्धमानपुरी (वढ़वाण–पूज्य बहिनश्रीका जन्मस्थल) आये।—उस वढ़वाणको आपने पावन किया था, क्योंकि आपने इस हरिवंशपुराणका प्रारंभ वढ़वाणके नन्नराज बसदि नामसे प्रसिद्ध पार्श्वनाथ जिनालयमें किया था व उसकी पूर्णता गिरनारसे आते समय रास्तेमें 'दोस्तटिका'के शांतिनाथ भगवान जिनमंदिरमें की थी। इतिहासविदोंको अन्य प्रमाणोंसे ज्ञात होता है, कि उस समय 'दोस्तटिका' कि, जो गिरनार जाते समय मार्गमें आता वर्तमानका 'दोत्तड़िड्ड' ही है। उस शास्त्रका अधिकांश भाग 'दोस्तटीका'में रचा गया हो–ऐसा मानना है।

इतिहाससे यह भी पता चलता है, कि आप कर्णाटकसे अपनी गुरु परम्पराके आचार्य अमितसेनजीके साथ ससंघ गिरनार वन्दनार्थ पधारे थे।

कुछ इतिहासकार 'वर्द्धमानपुरी'का होना मध्यप्रदेशके धार जिलेके 'बदनावर'को मानते हैं। यदि ऐसा हो तो आपका विहार मालवाके उधर रहा होना माना जाता है, पर वह गिरनार यात्राके साथ सुसंगत नहीं है। जो भी हो, इतना स्पष्ट है, कि यह ग्रंथ विहारकालमें पार्श्वनाथजिनमंदिरमें रचा गया था। अधिकांश इतिहासकार 'वर्द्धमानपुरी'को सौराष्ट्रका वढ़वाण ही मानते हैं।

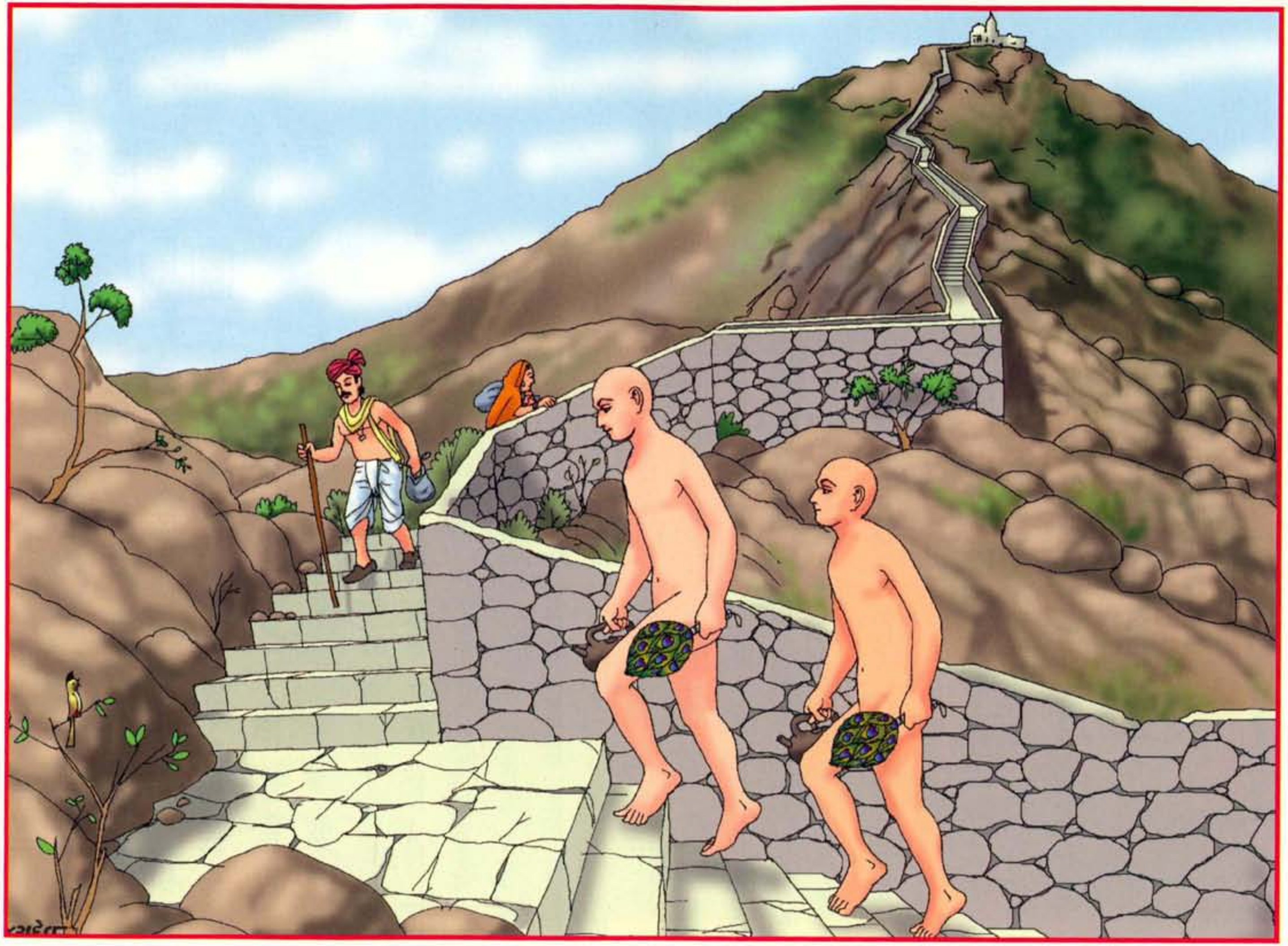

शिष्यके साथ गिरनार यात्रा करते हुए आचार्य जिनसेनजी (प्रथम)

आपके साहित्यमें आते आचार्यवरोंके नाम जैसे आचार्यवर समंतभद्र, सिद्धसेन, देवनंदी (पूज्यपादस्वामी), वज्रसूरि, रविषेण, जटासिंहनंदी, शांत, कुमारसेन आदि परसे प्रतीत होता है, कि आपने अपने पूर्ववर्ती आचार्योंको बड़े भावसे स्मरण किया है, इससे लगता है, कि आप काफ़ी शास्त्रविद् भी थे। साथ-साथमें आपने आचार्यवर वीरसेनस्वामी व जिनसेनस्वामी (द्वितीय)की भी प्रशंसा की है। जो ई.स. ९वीं शतीके आचार्य थे। इस परसे ज्ञात होता है, कि आपका काल ९वीं शतीके पूर्वार्ध तक होनेसे आप (धवला, जयधवला आदिके रचयिता) आचार्यवर वीरसेनस्वामी व (गुरुकी अधूरी टीकाको पूर्ण करनेवाले और आदिपुराणके रचयिता) आचार्यवर जिनसेनस्वामी (द्वितीय)के विशाल ज्ञानसे भली-भांति परिचित ही नहीं, पर उनके गहन ज्ञानके यत्किंचित् (चर्या आदि द्वारा) रसास्वादी भी हुए हों। तदुपरांत तत्त्वार्थसूत्र, तिलोयपण्णति, राजवार्तिक आदि शास्त्रोंके अनुरूप ही कथन हरिवंशपुराणमें होनेसे आप उन शास्त्रोंके पारगामी थे, यह प्रतीत होता है। आपने एक मात्र 'हरिवंशपुराण' ग्रंथकी रचना की है। जो अपने आपमें एक अद्वितीय पुराण है।

'हरिवंशपुराण'की रचनाकाल शक संवत ७०५ अर्थात् वि.सं. ८४० (ई.स. ७८४) प्राप्त होता है। अतः आप ई.स. ७४८ से ८१८के आचार्यवर हो, ऐसा इतिहासविदोंका मानना है।

हरिवंशपुराणके रचयिता आचार्यदेव जिनसेनस्वामी(प्रथम)को कोटि कोटि वंदन।

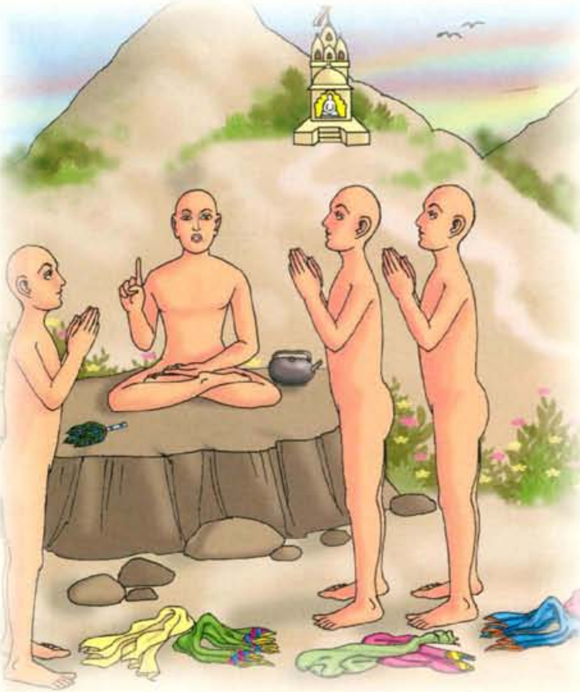

दीक्षा देते आचार्य काणभिक्षु

भगवान आचार्यदेव

श्री काणभिक्षु

आचार्य जिनसेनजीने आचार्य काणभिक्षुका कथा-ग्रन्थ रचयिताके रूपमें उल्लेख किया है। इससे ज्ञात होता है, कि आपका कोई प्रथमानुयोग-सम्बन्धी ग्रन्थ रहा है। आचार्य जिनसेनजीने लिखा है—

धर्मसूत्रानुगा हृद्या यस्य वाङ्मणयोऽमलाः।
कथालङ्कारतां भेजुः काणभिक्षुर्जयत्यसौ॥

अर्थात् वे काणभिक्षु जयवन्त हों, जिनके धर्मरूप सूत्रमें पिरोये हुए, मनोहर वचनरूप निर्मलमणि कथाशास्त्रके अलङ्कारपनेको प्राप्त हुए थे अर्थात् जिनके द्वारा रचे गये कथाग्रन्थ श्रेष्ठ थे। आपने एक चारित्रग्रंथ लिखा हो ऐसा भी मानना है।

आपका कोई कथा-ग्रंथ वर्तमानमें उपलब्ध हो—ऐसा ज्ञात नहीं होता।

ये आचार्य जिनसेनजी द्वारा उल्लिखित होनेसे, आप उनसे पूर्ववर्ती विद्वान थे।

वे ईसुकी ८वीं शताब्दी मध्यपादके आचार्य थे।

आचार्यदेव काणभिक्षु भगवंतको कोटि कोटि वंदन।

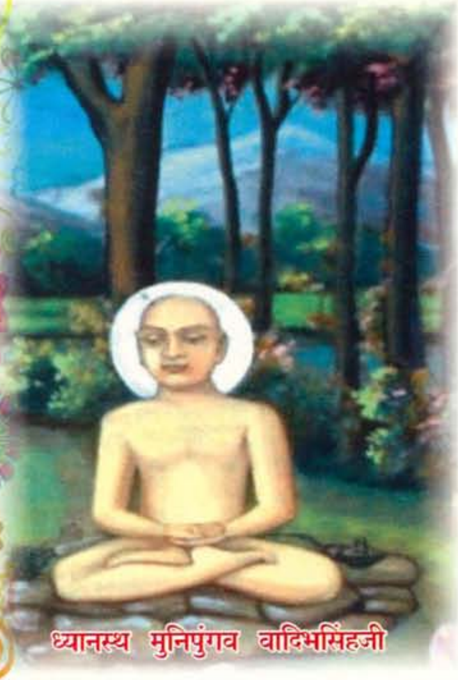

मुनिपुंगव वादीभसिंह

जिनाम्नायमें वादीभसिंह उपनाम धारक दो धर्मात्मा हुए हैं। (१) ओड़यदेव (ई.सन्की आठवीं-नौवीं शताब्दी) व (२) अजितसेन ई.सन्की ११वीं शताब्दी। उनमेंसे हिन्दी साहित्यके 'बाणकवि'के समान जैन संस्कृत-गद्य साहित्यमें प्रथम वादीभसिंहका स्थान है। जब कि दूसरे वादीभसिंह तो अजितसेन वादीभसिंह दार्शनिक विद्वान थे।

आपके द्वारा रचित 'गद्यचिन्तामणि' ऐसा ग्रन्थ है, वह मानों 'कादम्बरी'की प्रतिस्पर्धा करता हो, ऐसे काव्यरसके भावोंसे भरपूर है।

आचार्य अकलंकदेवके गुरुभाई दिगम्बर आचार्य पुष्पसेनके आप शिष्य थे। आचार्य पुष्पसेन आपके काव्यगुरु व दीक्षागुरु थे। आपको अपने गुरु प्रतापसे मुनिपुंगवता प्राप्त हुई थी।

आप कलिंगके गंजाम जिलेके आस-पासके निवासी थे, ऐसा इतिहासकारोंका मानना है, क्योंकि गंजाम जिला मद्रासके उत्तरमें उड़ीसामें सम्मिलित है। वहाँ पर ओड़ेय और मोड़ेय दो जातियाँ निवास करती हैं। सम्भवतः आप ओड़ेय जातिके हों।

दूसरा आपने गद्यचिन्तामणिमें जीवन्धर स्वामीकी कथा लिखी है और गंजाम जिलेमें प्रचलित लोक-कथाओंमें जीवन्धरचरित आज भी उपलब्ध होता है।

आप वही वादीभसिंह है, जिन्हें आचार्य जिनसेन व आचार्य वादिराजने 'वादिसिंह' उल्लिखित किया है।

आपकी दो रचनाएँ है : (१) क्षत्रचूडामणि व (२) गद्यचिन्तामणि। 'स्याद्वाद्सिद्धि' भी आपकी रचना बताई जाती है।

आप ईस्वीकी ७७०-८६०के आचार्य थे।

मुनिपुंगव वादीभसिंह भगवंतको कोटि कोटि वंदन।

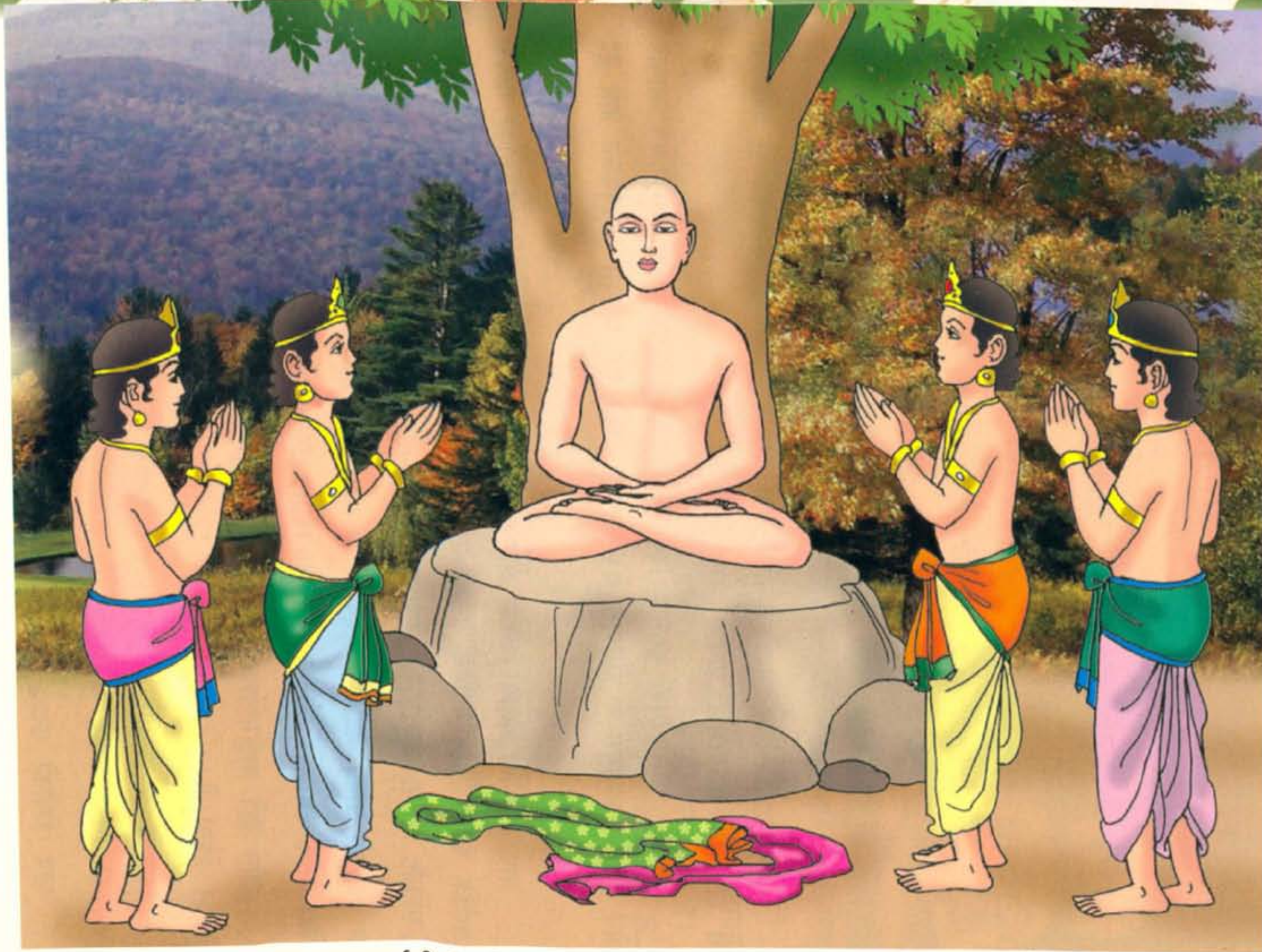

एलाचार्यजीकी दीक्षाके समय जयजयकार करते हुए राजादि

भगवान श्री एलाचार्य

यद्यपि 'एलाचार्य' नाम भगवान कुंदकुंदाचार्यदेवके विविध नामोंमेंसे एक है। फिर भी ये एलाचार्य उनसे भिन्न महासमर्थ आचार्य भगवंत हैं।

यद्यपि आप स्वयंने कोई ग्रंथ रचना नहीं की हैं; फिर भी जिसमें जिनधर्मके गंभीर रहस्य खुले, ऐसे धवलाजी व जयधवलाजीकी रचनाका एक प्रकारसे आपको श्रेय दिया जाए तो अतिशयोक्ति नहीं होगी, क्योंकि आपने धवलाजीके पूर्ण व जयधवलाजीके आद्यभागके रचयिता भगवान वीरसेन स्वामीको सिद्धांत ग्रंथकी विद्या सिखाई । इतना ही नहीं, ये रचना करनेका आदेश भी उन्हें दिया था। अतः आपकी कृपाके फलसे ही धवलाजी व जयधवलाजीके रूपमें वाङ्गमय जिनवाणी आज हमें संप्राप्त हुई है।

आप सिद्धान्तके विशाल ज्ञाता थे व भगवान वीरसेनस्वामीके विद्यागुरु होनेसे उनके समकालिन थे। धवलाजी व जयधवलाजीसे ज्ञात होता है, कि आपका सिद्धांत संबंधित पाण्डित्य अत्यधिक था, तब ही तो आप भगवान वीरसेन स्वामीको यह शिक्षा प्रदान कर सके।

आचार्य इन्द्रनन्दिने अपने श्रुतावतारमें आपके संबंधमें लिखा है, कि आप चित्रकूट (हालका चित्तौड़) नगरके निवासी थे व आपके पासमें रहकर भगवान वीरसेनस्वामीने सिद्धांतोंका अध्ययन करके निबन्धनादि आठ अधिकारोंको लिखा है।

आप वात्सल्यकी मूर्ति थे। अतः आपके वात्सल्यभावकी भगवान वीरसेनस्वामीने भूरी-भूरी प्रशंसा की है। इससे यह भी ज्ञात होता है, कि भगवान वीरसेनस्वामी आपके अत्यंत स्नेहयुक्त कृपापात्र रहे होंगे।

यद्यपि आपने किसी भी ग्रंथकी रचना नहीं की थी, क्योंकि आपकी किसी भी कृतिका उद्धरण आपके पश्चात्‌वर्ती किन्हीं भी आचार्योंने नहीं दिया है, परंतु आपने भगवान वीरसेन स्वामीको सिद्धांत-शिक्षा दी होनेसे आप सिद्धान्तोंके पारगामी व मर्मज्ञ थे । चूँकि भगवान वीरसेन स्वामीने जयधवला टीकामें मतभेदोंका निर्देश करते हुए स्पष्ट लिखा है, कि भट्टारक एलाचार्यका उपदेश ही समीचीन होनेसे ग्राह्य है। इससे अनुमान लगता है, कि आप वाचकगुरु थे व आपकी प्रतिभा अप्रतिम थी।

इतिहासकारोंके आधारसे यह ज्ञात होता है, कि आपका समय ई.स. ७७० के आस-पासका है।

सिद्धान्तज्ञानदाता भगवान श्री एलाचार्यस्वामीको कोटि कोटि वंदन।

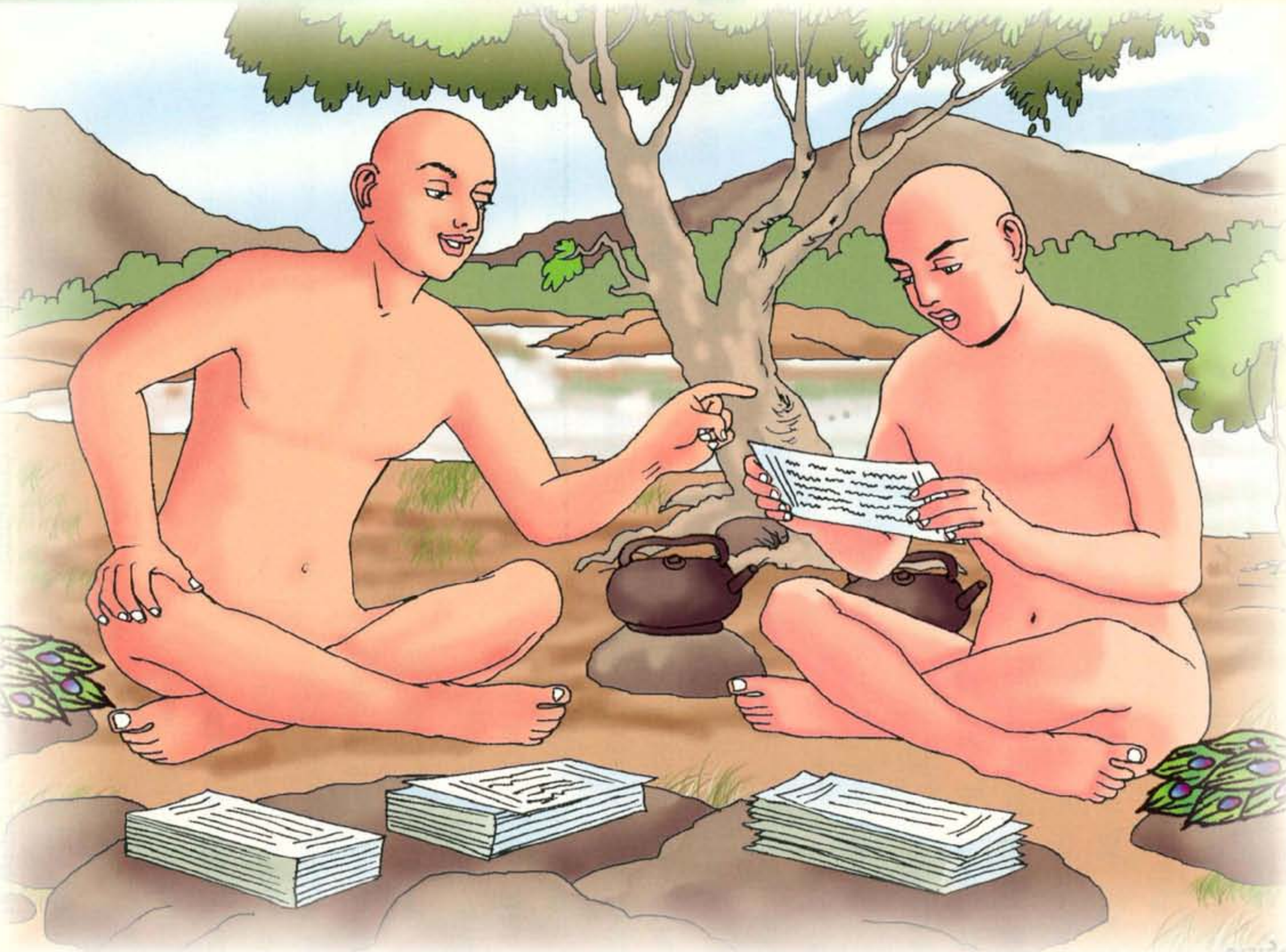

एलाचार्य द्वारा चित्तौड़में वीरसेनस्वामीको सिद्धान्तबोध

भगवान आचार्य

श्री वीरसेन स्वामी

दिगम्बर आम्नायमें 'वीरसेन' नामक कई आचार्य हुए हैं, पर उन सबमें धवला टीकाके रचयिता श्री वीरसेनस्वामीकी निर्मल कीर्ति दिगम्बर आम्नायमें उज्ज्वल रूपसे प्रकाशित हो रही है।

आप अपने समयके बहुत बड़े विद्वान थे। आपकी विद्वत्ताकी भूरि-भूरि प्रशंसा आपके पश्चात्‌वर्ती आचार्योंने तो की ही है, पर आपके समकालीन आचार्य जिनसेनस्वामी (प्रथम)ने भी स्व-पर पक्षके विजेता आदि उपमाओंसे आपको अलंकृत किया है।

आप जिनेन्द्र भगवान प्ररूपित सिद्धान्तोंके पारगामी होनेसे आपने षट्‌खंडागमकी पूर्णरूपेण ७२००० श्लोकप्रमाण धवला टीका व गुणधर आचार्य कृत कसायप्राभृत ग्रंथकी २०००० श्लोकप्रमाण टीका लिखी थी। आपके समाधिस्थ होने पर उस ग्रंथकी बाकीकी ४०००० श्लोकप्रमाण जयधवला टीका आचार्य जिनसेनस्वामी (द्वितीय)ने पूर्ण की। एक व्यक्ति द्वारा एक लाख श्लोक प्रमाण यह टीका लिखनेसे निम्नोक्त यह निष्कर्ष निकलता है—

१. जैसे भरत चक्रवर्तीकी आज्ञा छहों खण्ड़ोंमें प्रवर्तित होती हुई लक्ष्मीवन्तोंको प्रसन्न करती थी, वैसे आचार्य भगवान वीरसेनस्वामीकी मधुरवाणी, समस्त प्राणीओंको प्रमुदित करती हुई, आपकी कुशाग्रबुद्धिरूप आज्ञा समस्त विषयोंमें—सिद्धांत, व्याकरण, न्याय, ज्योतिष, काव्य, गणित व आगम आदि सर्व— विषयगामिनी थी अर्थात् आपकी वाणीका संचार छ् खण्ड़रूप षट्‌खंड़ागम नामक परमागमके सब ही विषयोंमें निर्विवादरूपसे मान्य था।

२. आपकी प्रत्येक विषयकी प्ररूपणा विस्तृत, दार्शनिकतापूर्ण व परम्परानुमोदनके साथ-साथ उस-उस विषय सबंधित वस्तुका स्वरूप, प्रकृति, गुण-दोष आदिकी दृष्टिसे तर्कपूर्ण और समालोचनपूर्ण थी। जिसमें अनुभवशीलता, विषयकी प्रौढता आदि देख उस समयके विद्वानोंको सर्वज्ञके सद्भाव विषयक शंका नष्ट हो गई थी। यतः जब एक छद्मस्थ व्यक्ति

आगम द्वारा इतना बड़ा ज्ञानी हो सकता है, तो अतीन्द्रियप्रत्यक्षज्ञानधारी सर्वज्ञ भगवान समस्त पदार्थोंके ज्ञाता हो, इसमें कौनसा आश्चर्य है!!

३. यद्यपि आप केवली या श्रुतकेवली न होने पर भी आपकी द्वादशांगी आगम प्रज्ञाको देख विद्वत्वर्ग आपको 'श्रुतकेवली' व 'प्रज्ञाश्रमणोंमें श्रेष्ठ' तक मानते थे और मानते हैं। आपकी प्रज्ञाशक्तिका दर्शन आपकी टीकाओंमें पद-पद पर होता है।

४. आप भट्टारक उपमारूप पदवीको प्राप्त केवलीके समान सभी विद्याओंके पारगामी थे।

५. आपने अपनी टीकामें जिन-जिन विषयोंकी जो स्पष्टता की है, उसका खण्ड़न कोई नहीं कर सकता है।

६. जरूरत हुई तो स्पष्टता करते हुए आपने लिखा है, कि 'केवली और श्रुतकेवलीके न रहनेके कारण उपलब्ध सूत्रोंमें कौनसा सूत्र आवश्यक है और कौनसा आवश्यक नहीं, इसका निर्णय करना सम्भव नहीं है। अतएव सूत्रकी अशातनाके भयसे दोनों ही सूत्रोंकी व्याख्या करना आवश्यक है। हमने तो गौतमस्वामी द्वारा प्रतिपादित अभिप्रायका कथन किया है।' इसी भाँति ऐसा भी आपने लिखा है, कि 'यदि ऐसा है, तो यह सूत्र है और यह सूत्र नहीं है, इसका कथन उपदेश पाकर वे करें कि, जो आगममें निपुण हैं। हम इस प्रसंगमें कुछ नहीं कह सकते, क्योंकि इसके सम्बन्धमें हमें उपदेश प्राप्त नहीं है।

पंचस्तूप संघके अन्वयमें आप आचार्य आर्यनन्दीके शिष्य थे व आपके दादागुरु आचार्य चन्द्रसेन थे। आपके विद्यागुरु भगवान एलाचार्य थे। एलाचार्यदेवके पास ही वीरसेनस्वामीने सिद्धांत शिक्षाको ग्रहण किया था। आप स्वयं आचार्य जिनसेन (द्वितीय)के गुरु थे।

चित्रकूट (चित्तौड़) निवासी भगवान एलाचार्यके पास सिद्धान्तग्रंथोंका अभ्यास करनेके पश्चात् आप वटग्राम (वड़ोदरा) पधारे। वहाँके [1]आनतेन्द्र द्वारा बनवाए हुए जिनालयमें आपने बप्पदेव रचित षट्खंडागम व कसायपाहुड़की व्याख्या देखी, जिससे प्रेरित होकर व अपने विद्यागुरुके आदेशको शिरोधार्य करके आपने प्रथम षट्खंडागमकी प्राकृत व संस्कृत मिश्रित धवला टीका पूर्ण की। पश्चात् कसायपाहुड़की टीका-जयधवलाका प्रारंभ किया। उसमें प्रथम करीब २०००० श्लोक प्रमाण रचनाके पश्चात् आप समाधिस्थ हुए। कहा जाता है, कि

---

१. वड़के पेड़की आधिक्यता देख, जिसे वट्टपुरी (वड़ोदरा) कहा जाता था। वह वड़ोदरा नगर उस समय पावागढ तक फैला हुआ था व आनतेन्द्र द्वारा बनवाए हुए जिनालय पावागढ़में काफी थे।

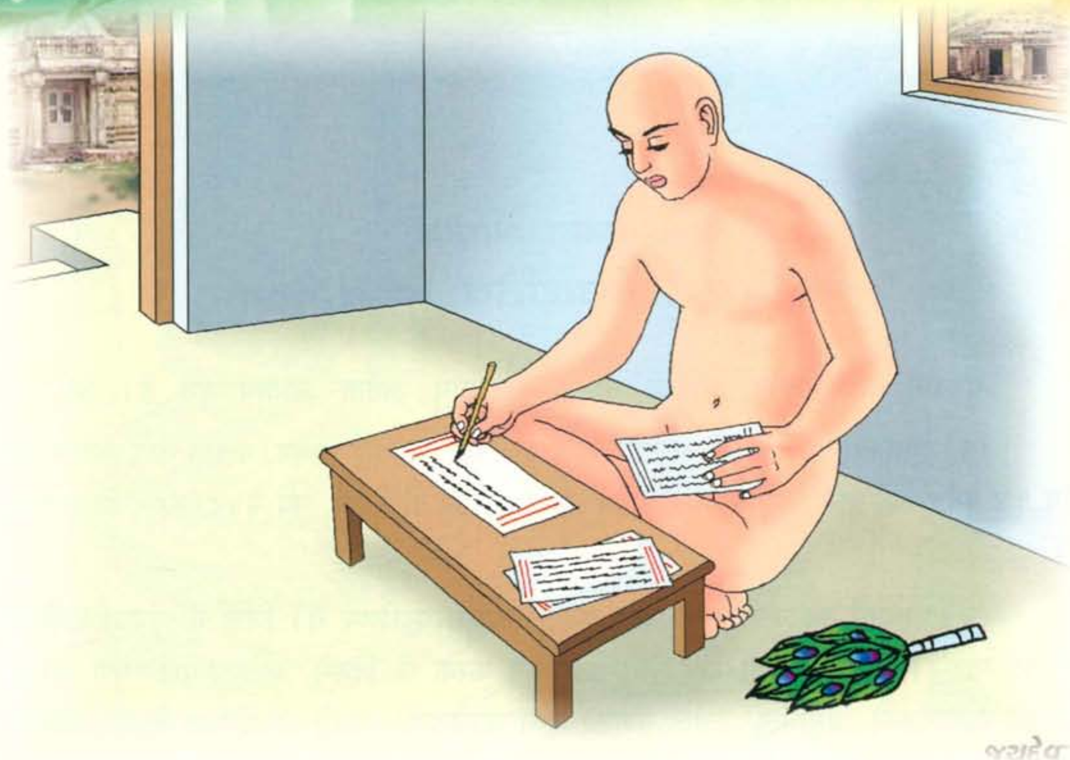

पावागढ मन्दिरसे धवला टीकाकी शुरूआत करते आचार्य वीरसेनस्वामी

धवला व जयधवला टीका पावागढ अर्थात् वटग्रामके जंगलोंमें लिखी गई थी।

आपने अपनी टीकामें ढेर सारे ग्रंथोंके प्रमाण दिए हैं, उससे स्पष्ट होता है, कि आप अत्याधिक आगमप्रिय व आगमाभ्यासी थे।

आपकी रचना शैली शंका-समाधानयुक्त, सरल, स्वच्छ, आडम्बररहित, आगमप्रमाण, अनुभवपूर्ण तर्क व न्यायसे तटस्थतायुक्त थी । नानाप्रकारके विकल्प उठाकर विषयको प्रस्तुत कर अंतमें आप निष्कर्ष निकालते थे। आपने विभिन्न दिशाओंसे तथ्योंका चयनकर उदाहरणों द्वारा अपने पासमें पाठकको शिष्यरूपसे बैठाकर समझाते न हों, इस भांति विषयबोध कराया है। साथमें आपने अपने अभिमतकी पुष्टीके लिए प्रमाणिक व्यक्तियोंके मतोंका उद्धरण भी उपस्थित किया है। अतः आपकी रचना, टीकाग्रन्थ होने पर भी स्वतंत्र रचना हो— ऐसी आपकी अद्भुत रचना शैली थी।

आपका समय ई.स. ७७० से ८२७ तकका माना जाता है।

धवला-जयधवला टीकाकार भगवान आचार्य श्री वीरसेन स्वामीको कोटि कोटि वंदन।

भगवान आचार्य

श्री जयसेनाचार्यदेव (चतुर्थ/पंचम)

भगवान श्री जयसेन आचार्य नामक मूलसंघमें अनेक आचार्य हुए हैं। जैसे :

(१) श्रुतावतारकी पट्टावली अनुसार आप श्रुतकेवली भद्रबाहु (प्रथम) पश्चात् चौथे नंबरके ११ अंग १४ पूर्वज्ञानके धारी जयसेन आचार्य थे। आपका काल वी.नि.सं. पूर्व २६८-२८९ गिना जाता है।

(२) आचार्य श्री जयसेन भगवान कुंदकुंदाचार्यके पट्टशिष्य थे। जिन्हें कुंदकुंदआचार्यदेवने 'प्रतिष्ठा-पाठ' लिखनेकी आज्ञा दी, जिसे शिरोधार्य करके दो दिनमें 'प्रतिष्ठा-पाठ' पूर्ण करनेसे आपको आचार्यवरने 'वसुबिन्दु' (आठ कर्मको शून्य करनेवाले) नामसे भी घोषित किया। आपका संक्षिप्त शब्दोंमें व गंभीरता लिये हुए एक मात्र 'प्रतिष्ठा-पाठ' ग्रंथ प्रतीत होता है। आपका समय ई.स. १२७ से १७९के आसपास होना प्रतीत होता है।

(३) पुन्नाटसंघीय आचार्य जयसेनजीके बारेमें हरिवंशपुराणमें लिखा है, कि वे १०० वर्षकी उम्रधारक, सद्गुरु, इन्द्रिय व्यापारजयी, कर्मप्रकृतिरूप आगमके धारक, प्रसिद्ध वैयाकरणी, प्रभावशाली, सम्पूर्ण शास्त्र समुद्रके पारगामी, सैद्धान्तिक विद्याके धारक भावलिंगी सन्त थे।

(४) पुन्नाटसंघकी गुर्वावली अनुसार शान्तिसेनके शिष्य व अमितसेनके गुरु जयसेनाचार्य थे। आपका काल ई.स. ७२३-७७३ गिना जाता है। यदि ये ही आचार्य पंचस्तूप गुर्वावलीके आचार्य जयसेनजी हों तो उनका समय इस समयके पश्चात्का होना चाहिए।

(५) पंचस्तूप संघकी गुर्वावली अनुसार आचार्य आर्यनन्दिके शिष्य व धवलाकार आचार्य वीरसेनस्वामीके सहधर्मा जयसेनाचार्य थे। आपका काल ई.स. ७७० से ८२७ था।

हालमें धवलाकार आचार्य श्री वीरसेनस्वामीके सधर्मा आचार्यके बारेमें यहाँ दिया जा रहा है।

आप बड़े तपस्वी, प्रशान्तमूर्ति, शास्त्रज्ञ, पण्डितजनोंमें अग्रणी भावलिंगी सन्त आचार्यवर थे।

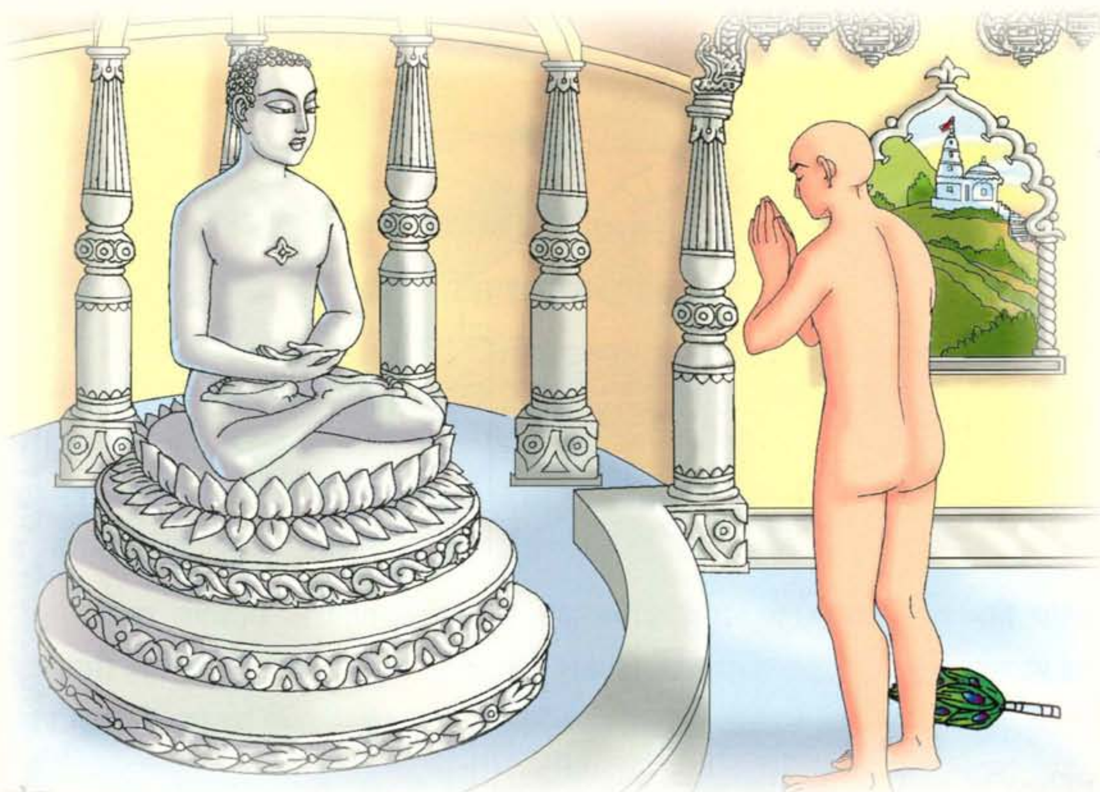

जिनेन्द्र भगवानके दर्शन करते हुए श्री जयसेनाचार्य (चतुर्थ/पंचम)

इस प्रकार १०० वर्षीय आयुधारक व कर्मप्रकृतिके ज्ञाता, वैयाकरणी व शास्त्र-समुद्रके ज्ञाता आदि विशिष्टताओंसे यह स्प्ष्ट होता है, कि पुन्नाटसंघीय व पंचस्तूपीय दोनों आचार्य एक ही हों और वे ही धवलाकार जैसे शास्त्र-समुद्रके पारगामी, वैयाकरणी सिद्धान्तसागरके धारक आचार्य वीरसेनस्वामीके सधर्मा होनेको समर्थ हैं।

यद्यपि आपने कोई शास्त्र नहीं लिखा है, फिर भी आप अमित ज्ञानके सागर व महातपस्वी थे। इतना ही नहीं शास्त्र न लिखनेके बावजूद भी उनके पश्चात्वर्ती आचार्यवर आपको बड़े सन्मानसे स्मरण करनेमें अपना गौरव समझते हैं।

ऐसे अन्तरंग आत्मज्ञानकी विशुद्धदशाके धारी महान तपस्वी, ज्ञान-ध्यानके भंडार आचार्य सदा जयवंत रहें। पुन्नाटसंघीय व पंचस्तूपीय जयसेनाचार्य एक ही हो, उस अनुसार आपका काल ई.स. ७७० से ८२७ होना योग्य प्रतीत होता है। इससे अधिक जानकारी आपके बारेमें हमें प्राप्त नहीं होती।

भगवान श्री जयसेनाचार्य भगवंतको कोटि कोटि वंदन।

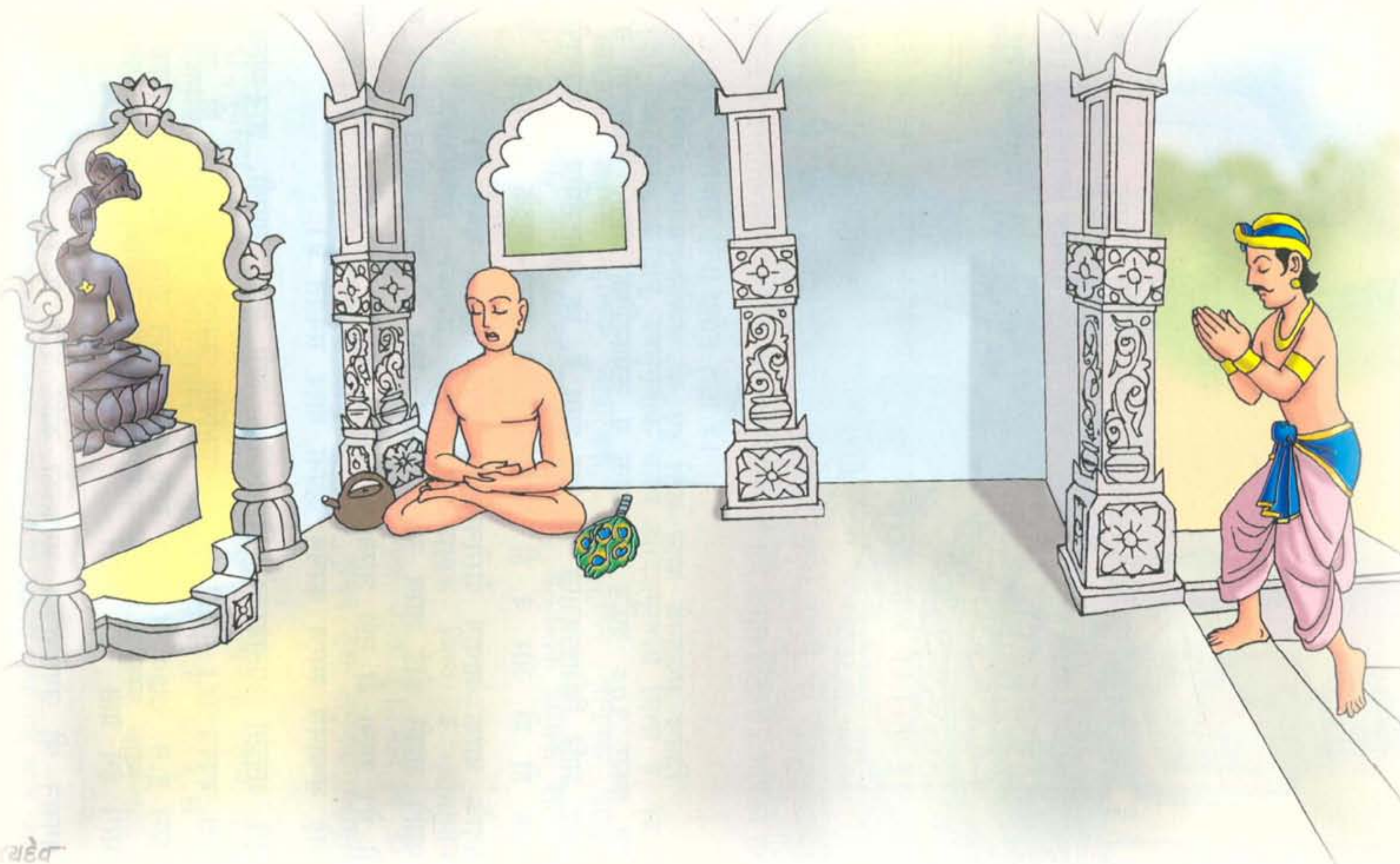

'देवागम स्तोत्र' सुनते पूर्व संस्कारवश उसके भाव समझमें आनेसे 'विद्यानंद' मंदिरमें प्रवेश करते हैं

भगवान आचार्य

श्री विद्यानन्दस्वामी

जिनशासनके बालब्रह्मचारी समर्थ आचार्य भगवंतोंमें आपकी गणना है। इतना ही नहीं, आपने एक महान सारस्वताचार्यकी भांति मौलिक व टीकाग्रन्थों द्वारा जिनेन्द्र भगवानकी वाङ्मय जिनवाणीको अति सुदृढ किया है। आपकी अपनी मौलिक प्रतिभा आपके न्याय व दर्शनशास्त्रोंमें स्पष्ट झलकती है।

आप मगधराज अवनिपालकी सभाके एक प्रसिद्ध विद्वान थे। आपका पूर्व नाम यद्यपि पात्रकेसरी होने पर भी, आप आचार्य पात्रकेसरीसे भिन्न ही हैं व काफी शताब्दी पश्चात्के आचार्य हैं। आप कर्णाटक प्रान्तके निवासी थे। आपका जन्म प्रखर ब्राह्मण परिवारमें हुआ था।

एक दन्तकथा ऐसी भी है, कि वे मूलतः वैदिक मतानुयायी थे। अतः जिनमन्दिर नहीं जाते थे। किन्तु एक बार ऐसी घटना घटी, कि वे जब जिनमन्दिरके निकटसे जा रहे थे, उस समय मन्दिरमेंसे देवागमस्तोत्र (आप्तमीमांसा)के शब्द उनके कर्णपट पर पड़े। पूर्व संस्कारसे या स्वयं स्फूरणासे उस स्तोत्रके भाव सहज ही समझमें आने लगे। अतः उनके पाँव मन्दिरकी ओर बढ़ने लगे। ज्यों-ज्यों मन्दिरकी ओर बढ़ते गये त्यों-त्यों उन स्तोत्रके शब्दोंके भाव स्पष्ट होते गये। इस स्तोत्रके भाव ग्रहणसे वे भावरूप विद्या+आनन्द=विद्यानन्द बन गये अर्थात् जिनभक्त बन गये। ऐसा आप स्वयम्ने भी लिखा है।

कई लोगोंका ऐसा मानना है, कि आपको उस समयमें भिन्न-भिन्न मतोंके विद्वानों द्वारा होते शास्त्रार्थोंको देखने व भाग लेनेका शौक था। उसमेंसे जैनके अनेकान्त व स्याद्वाद दर्शनकी गहनता, गंभीरता, सचोटता, न्यायपूर्ण व अकाट्य प्रतीत होनेसे आपको जैनधर्ममें विशेष दृढ़ श्रद्धा हो गई।

जन्मसे वैदिकधर्मी होनेसे आपके समयके प्रसिद्ध वैदिकधर्म जैसे, कि न्याय (नैयायिक), मीमांसक, वेदान्त, सांख्य, योग, प्रभाकर आदि वैदिक दर्शनका आपको भरपूर अभ्यास होनेसे, आप वैदिक धर्ममें पांडित्य व प्रसिद्ध विद्वान थे। आपको बौद्ध दर्शनका भी काफी अभ्यास था। जैनमतानुयायी होने पर आपको देवागम-स्तोत्र (आप्तमीमांसा),

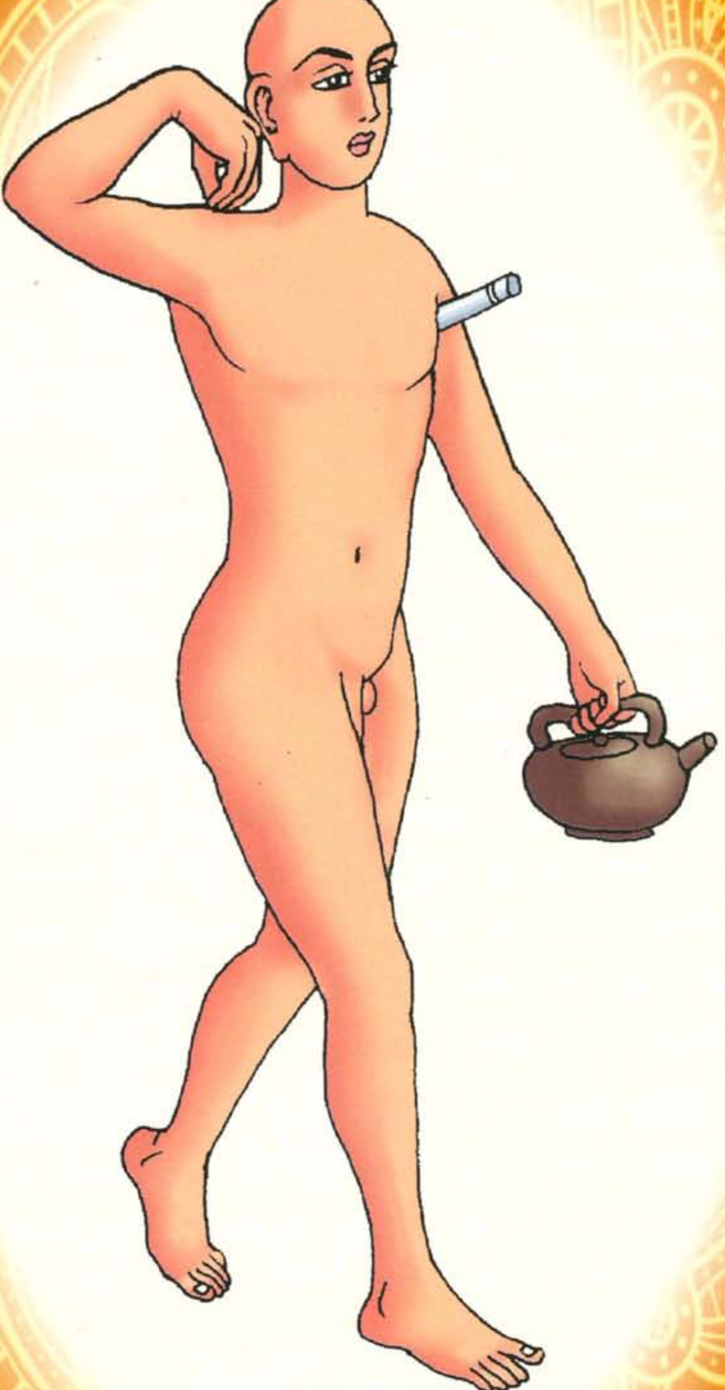

मुनिचर्यामें अत्यंत भावात्मक
आचार्य विद्यानंदस्वामी

अष्टशती, तत्त्वार्थसूत्र, जल्पनिर्णय, वादन्याय, सर्वार्थसिद्धि, तत्वार्थवार्तिक, स्वयम्भूस्तोत्र, युक्त्यानुशासन, सन्मतिसूत्र, रत्नकरण्डकश्रावकाचार, न्यायविनिश्चय, प्रमाणसंग्रह, लघीयस्त्रयी, त्रिलक्षणादर्शन, वादन्यायविचिक्षण, षट्खण्डागम व कई श्वेताम्बर ग्रंथ—ऐसे अनेक ग्रंथोंका अभ्यास था। ऐसा आपके ग्रंथोंमें आये उद्धरणोंसे प्रतीत होता है। उद्धरणोंके अलावा आपके जीवनसे प्रतीत होता है, कि आपको समयसारादि अनेक अध्यात्म शास्त्रोंका भी अभ्यास था।

आपने नन्दिसंघ अन्तर्गत दीक्षा ग्रहण की थी। आपकी लेखनी परसे स्पष्ट होता है, कि आपने अल्पवयमें अन्तरंगमें आत्मज्ञान प्राप्त कर द्रव्य-भावमय् मुनिपना अंगीकार किया था। अतः वे मुनिधर्मकी जीवनचर्याके बारेमें अति ही सुस्पष्टरूपसे भावात्मक (भावलिंगमय) थे।

आपका प्रभाव आपके पश्चात्‌वर्ती भगवान आचार्य माणिक्यनन्दि, वादिराज, प्रभाचन्द्र, अभयदेव, देवसूरि आदि कई आचार्योंकी रचनाओंमें प्रतीत होता है।

अन्ततः आप बाल-ब्रह्मचारी, महान तपस्वी, सिद्धान्त व दार्शनिकताके प्रखर विद्वान आचार्य थे। आपकी भाषा बड़ी परिमार्जित, संक्षिप्त व प्रभावशाली थी।

आपकी रचनाएँ :—(१) आप्तपरीक्षा (स्वोपज्ञटीका सहित), (२) प्रमाण-परीक्षा, (३) पत्र-परीक्षा, (४) सत्यशासन परीक्षा, (५) श्रीपुर पार्श्वनाथस्तोत्र, (६) विद्यानन्द महोदय, (७) अष्टसहस्त्री, (८) तत्त्वार्थश्लोकवार्तिकालंकार, (९) युक्त्यानुशासनालंकार हैं।

इतिहासकारोंके अनुसार आपका समय ई.स. ७७६ से ८४०के बीच होना निर्णित होता है।

'अष्टसहस्री' व 'तत्त्वार्थश्लोकवार्तिकालंकार'के रचयिता आचार्य विद्यानंदस्वामीको कोटि कोटि वंदन।

भगवान आचार्य

श्री अनन्तकीर्तिजी

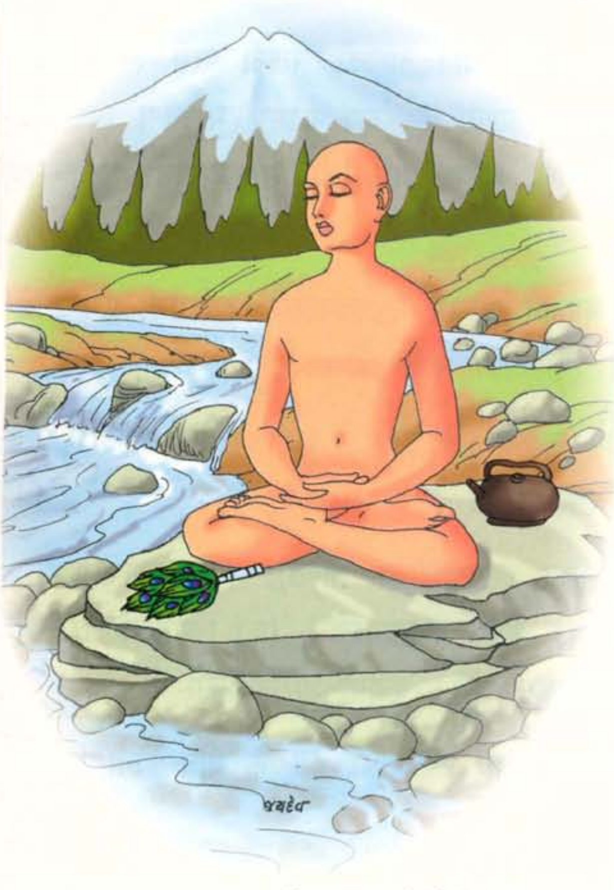

ध्यानस्थ आचार्य अनन्तकीर्तिजी

दर्शन साहित्यके ज्ञाता कई अनन्तकीर्ति आचार्योंमें आप अपनेमें अनुठे हैं। आपने 'बृहत्सर्वज्ञसिद्धि' व 'लघुसर्वज्ञसिद्धि' नामक दो ग्रंथोकी रचना करके, दिगम्बर जैन साहित्यमें अपनी अमीट सुगँधको महकाकर जैन जगतमें आप अमर वरदानरूप हुए हैं।

आप अपने युगके प्रख्यात तार्किक विद्वान आचार्य थे। आपने स्वप्नज्ञानको मानस प्रत्यक्ष ज्ञान माना है।

आपके ग्रंथमें सन्मतितर्कके टीकाकार आचार्य अभयदेवसूरि व आचार्य विद्यानन्दस्वामीकी छाप स्पष्ट प्रतिबिम्बित होती है। आपकी महिमा आपके पश्चात्‌वर्ती आचार्य वादिराजने भी गाई है।

विद्वानोंके मतानुसार आप भगवान आचार्य विद्यानंदीजीके समवर्ती प्रतीत होते हैं। आपके समयके बारेमें विविध विद्वान अलग-अलग मत रखते हैं, फिर भी आप ईसाकी ८वीं शताब्दीके उत्तरार्धवर्ती आचार्य हैं, ऐसा आपका समय माननेमें कोई दो मत नहीं है।

'सर्वज्ञकी सिद्धि करनेमें निपुण' आचार्य अनंतकीर्तिदस्वामीको कोटि कोटि वंदन।

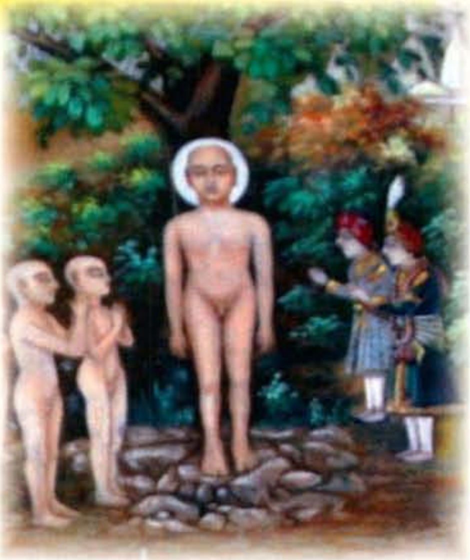

आचार्य श्री कुमारनन्दिका दर्शन करते मुनिराज व श्रावकगण

भगवान आचार्य
श्री कुमारनन्दि

श्री कुमारनन्दि दक्षिण प्रदेशके महान प्रभावशाली, वादन्याय विचिक्षण, व तार्किक चूडामणि महान आचार्यदेव हुए हैं। विद्यानन्दी आचार्यदेवने 'पत्र परीक्षा', 'प्रमाण-परीक्षा' व 'तत्त्वार्थश्लोकवार्तिकालंकार'में आपका भूरा-भूरा गुणकीर्तन ही किया हो, ऐसा नहीं परन्तु आपके प्रभावके रूपमें आपके कई उदाहरण भी अपने ग्रंथमें प्रस्तुत किये हैं।

वैसे जिनशासनमें आपका नाम अप्रसिद्ध रहा है, क्योंकि आपकी कोई रचना वर्तमानमें उपलब्ध नहीं है, पर आपके बारेमें आपके साहित्य संबंधित जो प्रकाश हुआ है, वह महान आचार्य विद्यानन्दिकृत विविध ग्रंथोंमें, कई स्थानों पर मिले उल्लेखोंसे ज्ञात होता है।

दक्षिणमें श्रीपुर जिनालयसे मिले 'नाममंगल' ताम्रपत्रसे ज्ञात होता है, कि ई.सन् आठवीं शताब्दीके बीच आपका समय होता चाहिये। उस ताम्रपत्रसे यह भी पता चलता है, कि आपके गुरु भगवान आचार्य चन्द्रनन्दी थे। आपके शिष्य कीर्तिनन्दी व प्रशिष्य विमलचन्द्र थे।

आपका एक ही ग्रंथ 'वादन्याय विचक्षण' प्रसिद्ध है। हो सकता है, अन्य ग्रन्थ भी हो, पर उल्लेख नहीं मिला है, पर यह 'वादन्यायविचिक्षण' ग्रंथ भी उपलब्ध नहीं है।

जो कुछ भी हो, इतना स्पष्ट है, कि आचार्य कुमारनन्दि एक प्रभावशाली तार्किक व जैन न्यायके महान विद्वतायुक्त ज्ञाता आत्मज्ञानी भावलिंगी संत थे।

आप ईसुकी ८वीं-९वीं शताब्दीके आचार्य हों, ऐसा विद्वानोंका मत है।

आचार्यदेव कुमारनन्दि भगवंतको कोटि कोटि वंदन।

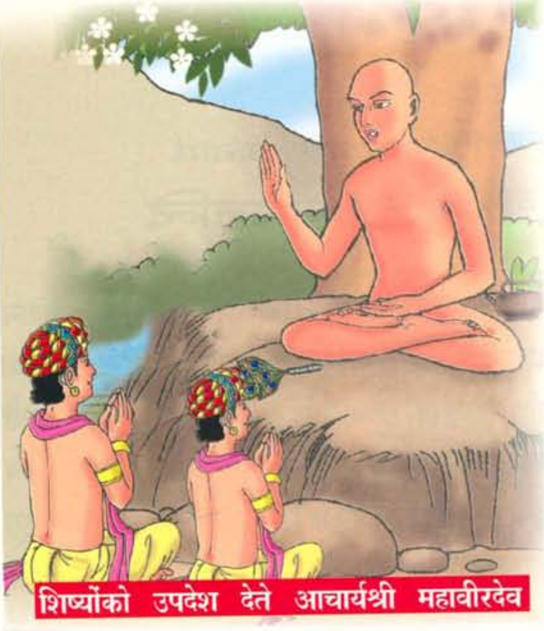

शिष्योंको उपदेश देते आचार्यश्री महावीरदेव

भगवान आचार्य
श्री महावीरदेव

भारतीय गणितके इतिहासमें श्री महावीराचार्यका नाम बड़े आदरके साथ लिया जा सकता है। जैन गणितको व्यवस्थितरूप देनेका श्रेय आपही को प्राप्त है।

आपके गणित ग्रंथकी पाण्डुलिपियाँ एवं कन्नड व तामिल टीकाओं परसे इतिहासकार यह निष्कर्ष निकालते हैं, कि आप मैसुर प्रान्तके किसी कन्नड भागमें हुए होंगे।

उस समय सुदूर दक्षिणमें गणित-विज्ञानको वृद्धिगत करनेका श्रेय आपने प्राप्त किया। जब कि उत्तरीय भारतमें ब्रह्मगुप्त और भास्करके समयमें श्रीधराचार्यको छोड़कर कोई अन्य प्रकाण्ड गणितज्ञ नहीं हुआ।

आपने पूर्ववर्ती गणितज्ञोंके कार्यमें पर्याप्त संशोधन व परिवर्द्धन किया था। आपने ही शून्यके विषयमें भाग क्रिया करनेकी प्रणालिका आविष्कार किया। किसी संख्यामें शून्य द्वारा विभाजन किये फलोंका निरूपण करते हुए बताया, कि संख्या शून्य द्वारा विभाजित होने पर परिवर्तित नहीं होती है। जिस दृष्टिकोणको लेकर यह सिद्धांत निबद्ध किया है, वह सिद्धान्त स्थूल विभाजन पर आवृत है।

आपने (१) गणितसार संग्रह व (२) ज्योतिषपटल, ये दो ग्रंथ रचकर जैन गणितको समृद्ध किया है।

आप राजा अमोघवर्ष (प्रथम)के मित्र थे। आप दोनों साथ-साथ रहते थे। पीछेसे श्री महावीराचार्यने भगवती जिनदीक्षा ग्रहण की थी। आपका समय अमोघवर्ष (प्रथम) अनुसार ई.स. ८००-८३० इतिहासकार निर्णित करते हैं।

आचार्य श्री महावीरदेव भगवंतको कोटि कोटि वंदन।

भगवान आचार्यवर

श्री जिनसेन (द्वितीय)

राजा अमोघवर्षका काल (ई.स. ८१५-८७७) विद्वानोंके सन्मानका सुन्दर काल था। ऐसे सुन्दरकालमें राजा अमोघवर्ष जिनके बड़े भक्त थे, ऐसे मूलसंघके पञ्चस्तूपान्वयी आचार्यदेव जिनसेनाचार्य (द्वितीय), निज आत्मानुभवकी प्रचुरधारामें रहते-रहते साहित्य-गगनके भास्कर समान निरन्तर प्रकाशित हैं।

दिगम्बर मुनिराज पक्षियोंकी भांति अनियतवासी होते हैं। अतः उनका कोई नियत स्थान तो नहीं होता तथा वे गृहवास निरत वनवासी होनेसे उनके गृहवास-जीवनके बारेमें भी अक्सर जानने नहीं मिलता। उसमें भी विशेषतौर पर आचार्यदेव जिनसेन (द्वितीय)के बारेमें तो जो [1]आजन्म दिगम्बर थें—अतः उनके सम्बन्धमें कोई विशेष जानकारी उपलब्ध होना मुमकीन नहीं।

फिर भी आपके परदादागुरु व दादागुरु क्रमशः आचार्य चन्द्रसेन तथा आचार्य आर्यनन्दी थे व आचार्य वीरसेन स्वामीके आप शिष्य थे। बुद्धिमान आचार्य दशरथगुरु आपके सधर्मा बन्धु–गुरुभाई थे। आपने आदिपुराणमें एक अन्य गुरुभाई आचार्य जयसेन(चतुर्थ/ पंचम)का भी स्मरण किया है। आपके शिष्य भावलिंग सह कवित्व आदि गुणोंयुक्त जिनशासनके ज्ञाता गुणभद्राचार्यदेव थे। भगवान गुणभद्रस्वामीको आप पर बड़ी भारी श्रद्धा व भक्ति थी।

आचार्य भगवान जिनसेन स्वामी (द्वितीय) का चित्रकूट (चित्तौड़), बंकापुर (जिला–धारवाड) व वटग्राम (वड़ोदरा) से काफी संबंध रहा है। आनतेन्द्र (ज्ञानेन्द्र) कि जो अमोघवर्षका सामन्त होनेका अनुमान है, उसने पावागढ़ आदिमें अनेक मंदिर बनवाये थे। उन्हीं मंदिरोंमेंसे एक मंदिरमें धवला टीका रची गई थी, ऐसा भी कुछ इतिहासकारोंका अनुमान है। इन सबसे यह ज्ञात होता है, कि आप अमोघवर्षके विस्तृत राज्यमें अत्यंत सन्मानित होनेसे आपका जन्मस्थान महाराष्ट्र और कर्णाटककी सीमाभूमि भी अनुमानित की जाती है।

---

१. भगवान आचार्य जिनसेन (द्वितीय) बचपनसे ही आचार्य वीरसेन गुरुके साथ-साथ जंगलमें चले जाया करते थे। तत्पश्चात् उन्होंने कर्णसंस्कार पूर्व ही दीक्षा धारण कर दिगम्बर मुनिराज हो गये थे। अतः आपने इस भवमें कपड़े पहने ही नहीं। अतः आप आजन्म दिगम्बर कहलाए।

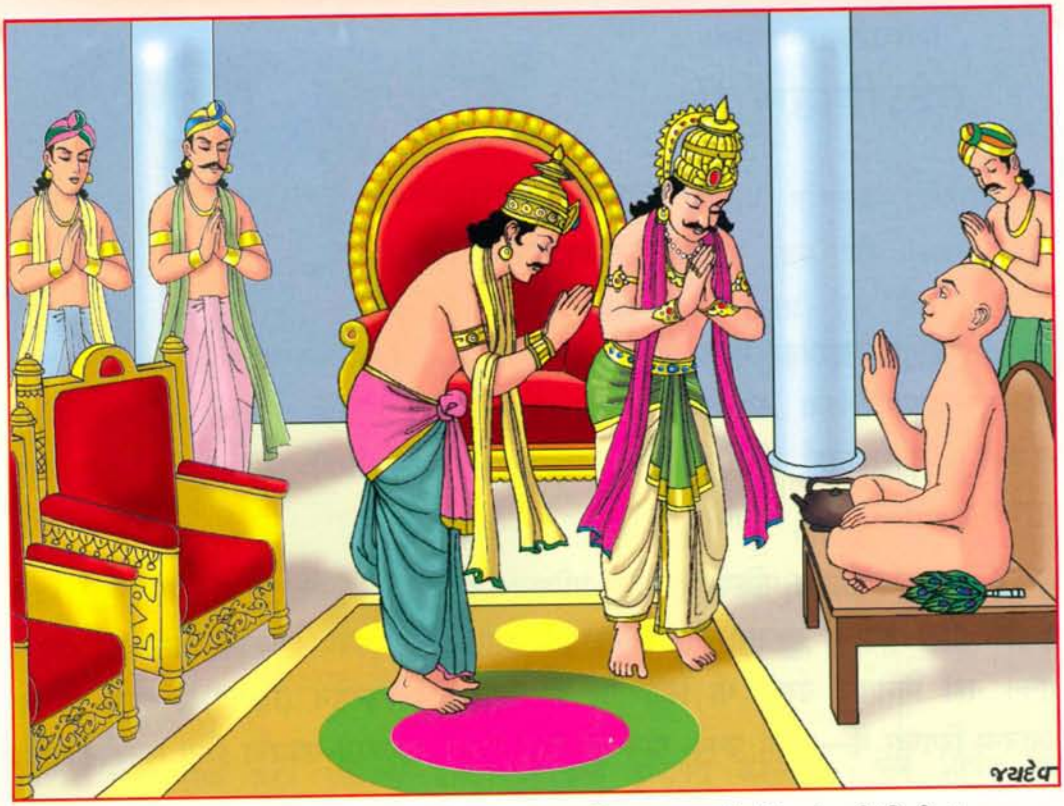

राजदरबारमें राजा अमोघवर्ष द्वारा सम्मानित आचार्य जिनसेनजी(द्वितीय)

आपके व्यक्तित्वके बारेमें शिलालेख भी उपलब्ध है, जो आपके कालमें आपकी धवलकीर्तिकी ध्वजा फहराते हैं। बालब्रह्मचारी ऐसे आपने कठोर ब्रह्मचर्यकी साधना की थी। अतः जिससे वाग्देवी आप पर अत्यंत प्रसन्न थी।

आपका शरीर कृश था, आकृति भी भव्य और रम्य नहीं थी। इस भांति बाह्य व्यक्तित्वके मनोरम न होने पर भी, आत्मज्ञानकी प्रचुरतासे तपश्चरण, ज्ञानाराधन एवं कुशाग्र आराधक बुद्धिके कारण आपका अंतरंग व्यक्तित्व बहुत ही भव्य था। आप ज्ञान व अध्यात्मके अवतार थे। आपका जन्म किस जाति-कुलको प्राप्त हुआ, यह निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता है।

आप काव्य, व्याकरण, नाटक, दर्शन, अलंकार, आचार, कर्मसिद्धान्त प्रभृति आदि अनेक गहन विषयोंके विद्वान थे। आपकी केवल तीन ही रचनाएँ उपलब्ध है। 'वर्धमानचरित' भी आपकी ही रचना होनेकी सूचना प्राप्त होती है, पर यह कृति अभी तक देखनेमें नहीं आयी है। आपकी निम्न तीन रचनाएँ हैं व उनका रचनाक्रम निम्नानुसार है।

१. पार्श्वाभ्युदय, २. जयधवला टीका, ३. आदिपुराण(सर्ग-४२ तक)।

इतिहासकारोंनुसार सर्वप्रथम पार्श्वाभ्युदय लिखनेके पश्चात् अपने गुरु वीरसेनस्वामीकृत जयधवला टीका पूर्ण करनेके बाद अन्तसमयमें आपने आदिपुराणकी रचना की हो, जिससे वह अपूर्ण रही और उसे आपके शिष्य आचार्य गुणभद्रस्वामीने पूर्ण की।

(१) यह एक पार्श्वप्रभुके दीक्षा पश्चात् कमठ द्वारा हुए उपसर्गके समय, पार्श्वप्रभुके आत्मध्यानको दर्शाता सुंदरकाव्य है। आपका पार्श्वाभ्युदय कालिदासके 'मेघदूत'की समस्यापूर्ति है। इसमें आपने 'मेघदूत'के कहीं एक और दो पदोंको लेकर रचना की है। इस रचनामें सारा मेघदूत समाविष्ट होने पर भी जहाँ 'मेघदूत' एक श्रृंगाररससे ओतप्रोत है, वहीं यह रचना आपने शान्तरसमें परिवर्तित कर दी है। साहित्यिक दृष्टिसे यह काव्य बहुत सुंदर व काव्यगुणोंसे मंडित है।

आचार्य जिनसेनके कथनानुसार आपने जयधवलाके पूर्वमें ही पार्श्वाभ्युदय ग्रंथकी रचना पूर्ण कर दी थी। जिससे विद्वानोंके मतानुसार पार्श्वाभ्युदय ग्रंथकी रचना आपने मात्र करीब २० वर्षकी उम्रमें ही पूर्ण की थी।

(२) ४००००श्लोक प्रमाण जयधवला टीका पूर्ण की जो, कि आठ कर्मोंमेंसे मात्र मोहनीयकर्मकी ही विस्तृत विवेचना है व उसमें मोहके नाशका विस्तृत उपाय बताया है। यह टीका यद्यपि आचार्य वीरसेनस्वामी द्वारा रची गयी टीकाका बाकी रहा बहुअंश भाग है, जो आपके द्वारा पूर्ण हुआ है। इस टीकाके अभ्याससे पाठक आपके द्वारा प्ररूपित कर्म-सिद्धान्तकी महिमा सह नत-मस्तक हुए बिना नहीं रहता। इसकी भाषा-शैली अत्यंत सुगम है।

(३) आदिपुराणमें भगवान आदिनाथका जीवन–चित्रण इतना विस्तृत व सुंदर है, कि पाठक रसिकतासे इसे पढ़ा ही करे व इसे पढ़ते–पढ़ते किसी भी स्थलमें अघाते नहीं हैं।

आपका काल ई.स. ८१८-८७८के आसपास होना इतिहासविद मानते हैं। आपका आयुष्य करीबन ९०-९५ वर्षका हो एसा अनुमान है।

जयधवला टीका (पूर्ण) व आदिपुराण(आद्य भाग)के रचयिता आचार्य जिनसेन (द्वितीय) भगवंतको कोटि कोटि वंदन।

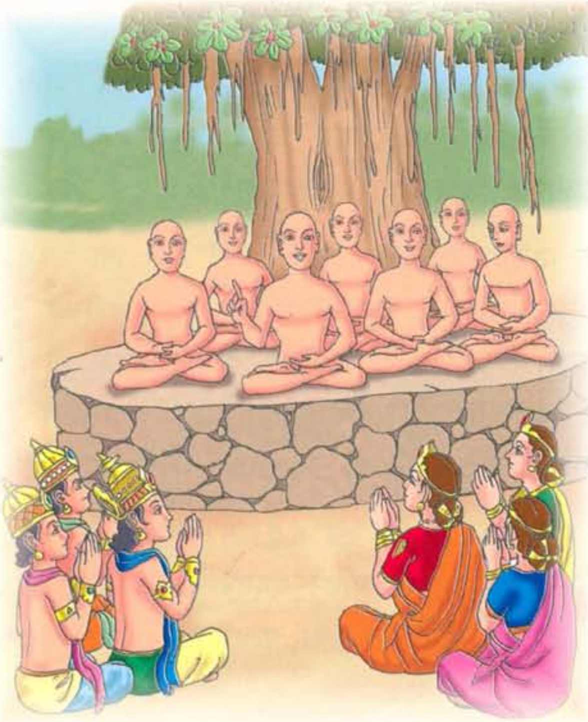

श्रावकोंको उपदेश देते हुए श्री दशरथस्वामी आचार्य एवं मुनिसंघ

भगवान आचार्यदेव

श्री दशरथस्वामी

आचार्य दशरथस्वामी सिद्धान्त ग्रंथोंके ज्ञाता थे। आचार्य गुणभद्रजीने आपको अपना गुरु माना है, परंतु पंचस्तूप संघकी पट्टावलियों अनुसार आप धवला टीका रचयिता भगवान आचार्य वीरसेनस्वामीके शिष्य थे। आचार्य जिनसेन (द्वितीय) भी भगवान वीरसेन स्वामीके शिष्य थे। अतः आचार्य दशरथजी आचार्य वीरसेनजीके द्वितीय शिष्य रहे हों। भगवान गुणभद्राचार्यने आपको गुरु माना होनेसे प्रतीत होता है, कि आप भगवान आचार्य गुणभद्रजीके विद्यागुरु रहे हों।

आपने कोई ग्रंथ लिखा हो ऐसा नहीं मिलता; परंतु आचार्य गुणभद्रजीके विद्यागुरु होनेसे व आचार्य वीरसेनस्वामीके शिष्य होनेसे आप सिद्धान्तोंके व प्रथमानुयोगके ज्ञाता होंगे, यह अवश्य है।

इतिहासकार आपका काल ई.स. ८२०-८७० निर्णित करते हैं।

आचार्य दशरथस्वामीको कोटि कोटि वंदन।

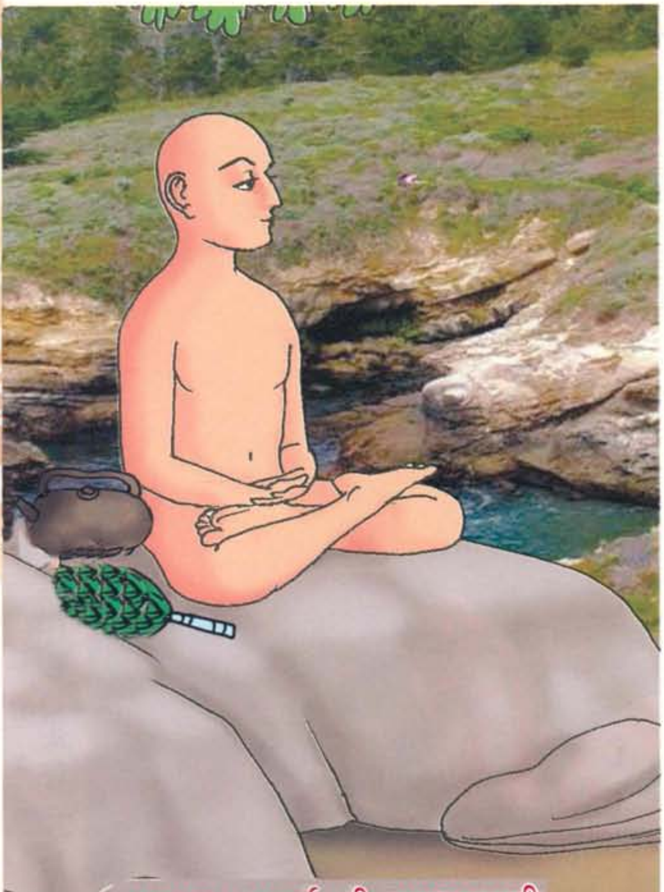
ध्यानस्थ आचार्य श्री गुणभद्रस्वामी

भगवान आचार्यदेव
श्री गुणभद्रस्वामी

आचार्यदेव गुणभद्रस्वामी अनेक महान आचार्योंमेंसे एक हैं, जो स्वयं भावलिंग मुनिधर्म सह यथातथ्य द्रव्यलिंगरूप आचारसे अलंकृत थे और वैसा ही उन्होंने अपनी पैनी लेखनीसे लिखा भी है, कि जैसे : (१) मणियोंके मध्यमें कान्तिमान मणि विरले ही पाये जाते हैं, वैसे ही आजके साधुओंमें समीचीन संयमका परिपालन करनेवाले साधु विरले ही रह गये हैं।' (२) उसी भांति 'जैसे पलंग आदि ऊँचे स्थान पर स्थित अल्पवयस्क अज्ञानी बालक तो उसके ऊपरसे गिर जानेकी शंकासे भयभीत होता है, किन्तु तीनों लोकोंके शिखररूप तपके ऊपर स्थित वह विचारशील साधु अपने अधःपतनसे, भयभीत नहीं होता है, यह बड़े आश्चर्यकी बात है।

आपके माता-पिता-कुल आदिकी जानकारी प्राप्त हो, ऐसी सामग्री अपने साहित्यमें आपने नहीं रखी है, फिर भी आपके साहित्यसे इतना निश्चित है, कि आप अपने समयके बहुश्रुत विद्वान आचार्य भगवंत थे। आप श्री जिनसेनाचार्य (द्वितीय) और श्री आचार्य दशरथगुरुके शिष्य थे। हो सकता हैं, 'दशरथगुरु' आपके विद्यागुरु हों। आपके दादागुरु धवला ग्रंथके रचयिता आचार्य गुरुवर्य वीरसेनस्वामी थे। आचार्य गुणभद्रजीके शिष्य लोकसेन आचार्य थे।

प्रतिभामूर्ति आप संस्कृत भाषाके श्रेष्ठ कवि भी थे। आप योग्य गुरुके योग्यतम शिष्य थे। आपकी रचनाओंमें सरलता व सरसताके साथ प्रसादगुण भी समाहित है। आप

स्मशानमें ध्यानस्थ मुनिवर

उत्कृष्ट ज्ञानी व महातपस्वी तो थे, पर साथ हीमें आप अखण्ड बाल-ब्रह्मचारी भी थे। आपका निवासस्थान दक्षिणके आरकट जिलेका 'तिरुमरुड़कुण्डम्' नगर माना जाता है। आपके ग्रन्थोंकी प्रशस्तियोंसे ज्ञात होता है, कि आप सेनसंघके आचार्य थे।

भगवान आचार्य जिनसेन (द्वितीय)की भांति आपकी अपनी साधनाभूमि कर्णाटक व महाराष्ट्रकी भूमि ही रही है, क्योंकि इन्हीं स्थानोंमें आपने अपने ग्रंथोंकी रचना की है।

इतना ही नहीं, आप अपने गुरुके ऐसे शिष्य थे, कि जिन्होंने अपने गुरुकी भांति, अपने गुरुके अधूरे कार्यको पूर्ण किया। आप अपने गुरुके अतिशय प्रिय भक्त थे। आपकी गुरुभक्तिका एक ही उदाहरण पर्याप्त है, वह यह कि आपने अपने गुरुके महापुराण अर्थात् आदिपुराणके ४२ सर्गके पश्चात्का कार्य यानि कि २३ तीर्थंकर सह ६३ शलाका पुरुषका जीवनचरित्ररूप उत्तरपुराण रचा है। वह बनाते समय लिखते हैं कि, 'इस रचनामें मेरे वचन श्रोताओंको सुस्वादु (आनन्ददायक) प्रतीत हों, तो वह मेरे गुरुओंका ही प्रभाव समझना चाहिए, क्योंकि आम्र आदि फलोंमें जो सुस्वादुता देखी जाती है, वह उन फलोंके उत्पादक उनके वृक्षके कारण ही है। इतना ही नहीं, 'मेरे ये वचन जिस हृदयसे निकलनेवाले हैं, उस हृदयमें तो गुरुओंका वास निरन्तर है, अतः वे उनके संस्कारसे संयुक्त–रस, भाव व अलंकारादिसे विभूषित होंगे ही।' वे गुरु भक्त इतने हैं, कि वे लिखते हैं, 'जगतमें श्रेष्ठ गुरु सर्वत्र दुर्लभ है व इस पुराणरूप समुद्रको पार करनेमें मेरे आगे चल रहे हैं'।

आपकी रचनाओंसे गुरुभक्तिसह उत्कृष्ट विद्वता व आपकी शालीनताका ही परिचय मिलता है, कि जिससे ज्ञात होता है, कि ऐसे उत्कृष्ट महाकाव्यकी रचना बनना आपकी असाधारण प्रतिभा व उत्कृष्ट विद्वता बिना असंभव ही था।

आपने निम्न ग्रंथोंकी रचना की है।

(१) आदिपुराण ४३वे पर्वके चौथे पद्यसे ४७ सर्ग तक पूर्णतया, (२) उत्तरपुराण : भगवान जिनसेनाचार्य (द्वितीय)की महापुराण रचनाका आदिभाग 'आदिपुराण'के नामसे प्रसिद्ध हुआ, अतः यह उत्तरभाग 'उत्तर पुराण'के नामसे प्रसिद्ध हुआ है। (३) आत्मानुशासन, (४) जिनदत्त चरित काव्य।

आपका समय विद्वानोंने ई.स. ८९८ निर्णित किया है।

परम वैराग्यवंत 'आत्मानुशासन'के रचयिता आचार्य गुणभद्रस्वामीको कोटि कोटि वंदन।

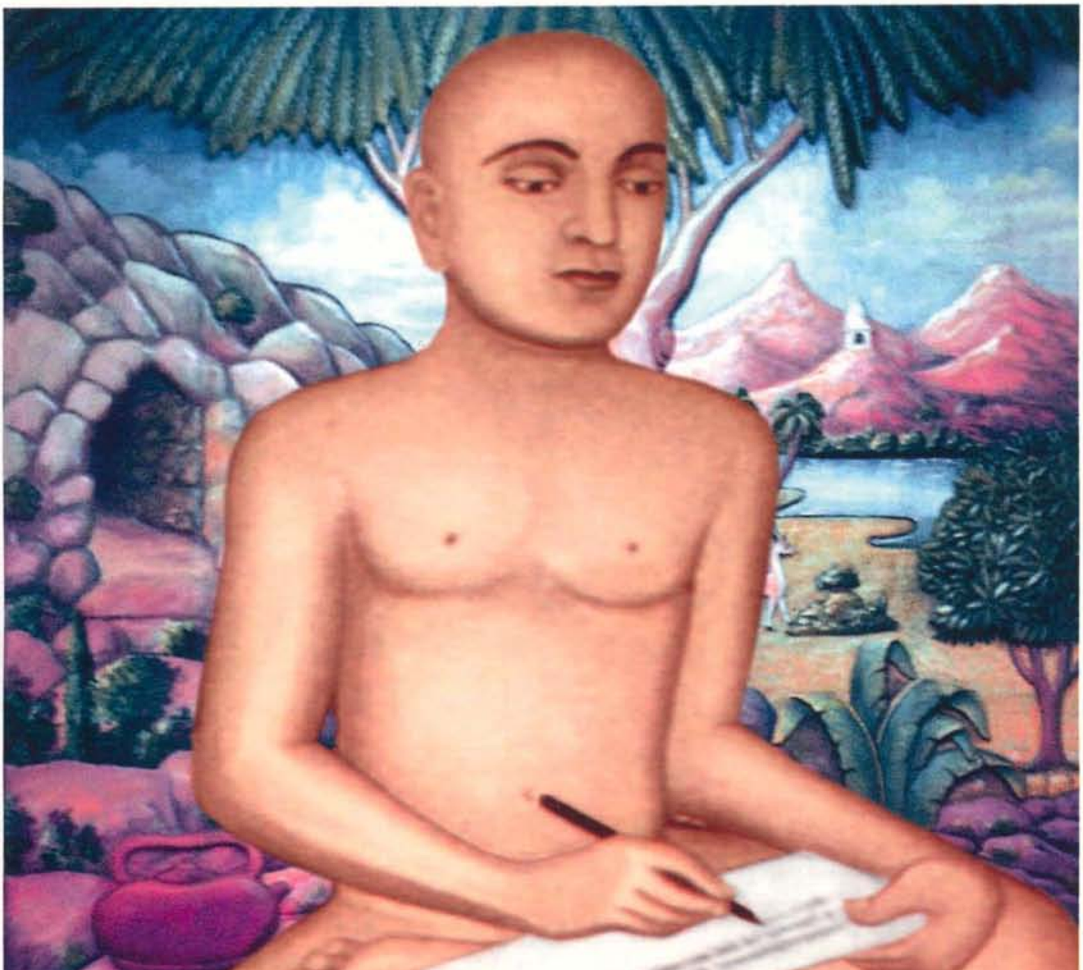

श्री अमृतचंद्राचार्य देव

भगवान आचार्यदेव

श्री अमृतचन्द्रदेव

भगवान आचार्य कुन्दकुन्दके समयसार, प्रवचनसार और पञ्चास्तिकायके आद्य टीकाकार आचार्य अमृतचन्द्रके नामसे प्रायः सभी अध्यात्मरसिक सुपरिचित हैं। यद्यपि जैन अध्यात्मके पुरस्कर्त्ता श्री कुन्दकुन्द आचार्यदेव हुए; किन्तु अध्यात्मकी सरिता प्रवाहित करनेका श्रेय आचार्य अमृतचन्द्रजीको ही प्राप्त है।

आचार्य कुन्दकुन्द और आचार्य अमृतचन्द्रके मध्यमें लगभग एक हजार वर्षोंका अन्तराल है और इस अन्तरालमें प्रख्यात जैनाचार्य हुए हैं। उनमेंसे आचार्य पूज्यपाद तो भगवान कुन्दकुन्दसे प्रभावित हैं। उनके समाधितंत्र और इष्टोपदेश पर भगवान आचार्य कुन्दकुन्दके पाहुडोंका प्रभाव है। सर्वार्थसिद्धि टीकामें भी पंचपरावर्तन सम्बन्धी पाँच गाथाएँ भगवान आचार्य कुन्दकुन्दके बारस अणुवेक्खासे संगृहित हैं। आचार्य अकलंकदेवने तत्त्वार्थवार्तिकमें प्रवचनसारसे एक गाथा उद्धृत की है। आचार्य विद्यानन्दजीने अपनी अष्टसहस्रीमें पञ्चास्तिकायकी गाथा 'सत्ता' आदिका संस्कृत रूपान्तर दिया है। किन्तु भगवान आचार्य कुन्दकुन्दजीके मौलिक ग्रन्थ समयसारको किसीने स्पर्श नहीं किया। यह श्रेय तो आचार्य अमृतचन्द्रजी को ही प्राप्त है। उन्होंने ही सर्वप्रथम उसका मूल्याङ्कन किया और ऐसा किया कि आचार्य कुन्दकुन्ददेव जैनाकाशमें सूर्यकी तरह प्रकाशित हो गये। आचार्य कुन्दकुन्ददेवको कुन्दनवत् प्रकट करनेका श्रेय आचार्य अमृतचन्द्रजीको ही है। अतः उनकी वाणीके प्रकटन और प्रसारमें जो स्थिति भगवान् महावीर और गौतम गणधर की है, वही स्थिति जैन अध्यात्मके प्रकटन और प्रसारमें आचार्य कुन्दकुन्द और अमृतचन्द्रकी है। जैसे भगवान् महावीरकी वाणीको द्वादशाङ्ग श्रुतमें गौतम गणधरदेवने निबद्ध करके प्रवाहित किया। उसी प्रकार आचार्य कुन्दकुन्दके द्वारा पुरस्कृत अध्यात्मको अपनी टीकाओं द्वारा आचार्य अमृतचन्द्रने निबद्ध और प्रवाहित किया। उनके पश्चात् ही अन्य टीकाकारोंने भी उन पर अपनी टीका रची।

इस तरह अध्यात्मरूपी कमलका सौरभ फैलाकर भी, आचार्य अमृतचन्द्र अपने सम्बन्धमें मूक हैं। उन्होंने अपनी कृतियोंमें अपना नामोल्लेख मात्र किया है। समयसार और पञ्चास्तिकायकी टीकाके अन्तमें वे लिखते हैं—

'स्वशक्तिसंसूचितवस्तुतत्त्वैर्व्याख्या कृतेयं समयस्य शब्दैः।
स्वरूपगुप्तस्य न किञ्चिदस्ति कर्तृव्यमेवामृतचन्द्रसूरेः।।'

अर्थ :—अपनी शक्तिसे वस्तु तत्त्वको सम्यक्रूपसे सूचित करने वाले शब्दोंने यह समयकी व्याख्या की है। अपने स्वरूपमें लीन अमृतचन्द्रसूरिका तो कुछ भी कर्तृत्व नहीं है।

इसी तरह तत्त्वार्थसारके अन्तमें कहा है—

वर्णाः पदानां कर्तारो वाक्यानां तु पदावलिः।
वाक्यानि चास्य शास्त्रस्य कर्तृणि पुनर्वयम्॥

अर्थ—अक्षर पदोंके कर्त्ता हैं, पद वाक्योंके कर्त्ता हैं। वाक्य इस शास्त्रके कर्त्ता हैं, हम नहीं हैं।

पुरुषार्थसिद्धिउपायके अन्तमें भी यही भाव व्यक्त किया है। स्वकर्तृत्वका यह परिचय जैन अध्यात्मकी अमिट छापोंको व्यक्त करता है। यह बतलाता है, कि भगवान आचार्य अमृतचन्द्र जैन अध्यात्मके कोरे व्याख्याता नहीं थे, उन्होंने उसे अपने जीवनमें आत्मसात् कर लिया था। आपका एक-एक शब्द बहुमूल्य है, एक-एक वाक्यमें अमृत भरा है।

जैन वस्तु विज्ञानके तो वे परम प्रवीण आचार्य हैं ही। अनेकान्त उनकी तुला है। उस तुलाके दो पलड़े हैं—निश्चय और व्यवहार। उनके द्वारा वह वस्तुतत्त्वको मध्यस्थभावसे समीक्षा करते हैं। उनके अन्तस्तलमें दोंनो नयोंके प्रति पक्षातिक्रान्तता वर्तती थी। दोनोंमें समभावरूप ज्ञान रखते हुए भी वे मोक्षमार्गमें उनकी उपयोगितारूप मूल्यकी दृष्टिसे ही विचार करते हैं।

आचार्य कुन्दकुन्दजीने अपने समयसारके प्रारंभमें जो निश्चयको भूतार्थ और व्यवहारको अभूतार्थ कहा है तथा शुद्धनयका स्वरूप कहा है, आचार्य अमृतचन्द्रजी सर्वत्र उसीका अनुगमन करते हैं। हमें टीकाओंमें खोजने पर भी ऐसे स्थल नहीं मिले, जहाँ आचार्य अमृतचन्द्रजीने आचार्य कुन्दकुन्दजीका अतिक्रमण किया हो, या उनकी ओटमें अपना कोई स्वतंत्र मन्तव्य निर्दिष्ट किया हो। वे एकान्ततः आचार्य कुन्दकुन्दजीके अनुगत हैं। आचार्य कुन्दकुन्दजीने अपने समयसारके द्वारा अध्यात्मका जो वृक्षारोपण किया था, आचार्य अमृतचन्द्रजीने उसे केवल समृद्ध करके पुष्पित और फलित किया है। जैसे वृक्षके पत्ते, पुष्प, फल सब उससे अनुप्राणित रहते हैं, वही स्थिति आचार्य अमृतचन्द्रजीके वचनोंकी है। उनका एक एक पद आचार्य कुन्दकुन्दजीके अध्यात्मसे अनुप्राणित है।

समयसारकी व्याख्याका आरम्भ करते हुए तीसरे कलशमें जो भाव व्यक्त करते हैं, उसे पढ़ कर किसका तन-मन रोमाञ्चित नहीं होता। वह कहते हैं—'मैं शुद्धद्रव्यार्थिक नयकी दृष्टिसे शुद्ध चैतन्यमात्र मूर्ति हूँ। परन्तु मेरी परिणति मोहके उदयका निमित्त पाकर मलिन हो गई है—राग-द्वेषरूप हो रही है। शुद्ध आत्माका कथन करनेरूप इस समयसार ग्रन्थकी व्याख्या करनेका

यह फल चाहता हूँ, कि मेरी परिणति रागादिसे रहित होकर शुद्ध हो, मुझे शुद्ध स्वरूपकी प्राप्ति हो।' कितनी पवित्र भावना है! उनकी यह भावना अवश्य ही समयसारके पठन, चिन्तन और मननका परिणाम हैं। उन्होंने अवश्य ही आचार्य कुन्दकुन्दजीके ग्रन्थोंका तलस्पर्शी अध्ययन, मनन और चिन्तन किया था और उससे उन्हें जो आत्मबोध हुआ था–उससे उनकी अन्तर्दृष्टि अवश्य ही सविशेष खुल गई होगी, जिसके फलस्वरूप ही उन्हें आचार्य कुन्दकुन्दजीके ग्रन्थरत्नोंकी इतनी सुन्दर समृद्ध टीकाएँ रचनेकी अन्तःप्रेरणा हुई होगी। ये टीकाएँ भक्तकी भगवान्के प्रति कुसुमाञ्जलि जैसी है।

'पं० आशाधरजी'ने अपने 'अनगारधर्मामृत'की टीकामें उनके नामके साथ 'ठक्कुर' शब्दका प्रयोग किया है। 'ठक्कुर' और 'ठाकुर' एकार्थवाची है। जैनेतरोंमें आज भी 'ठाकुर' शब्दका व्यवहार पाया जाता है। जैसे रवीन्द्रनाथ ठाकुर। जैनाचार्योंमें ऐसे भी आचार्य हुए हैं, जो जन्मसे जैन नहीं थे। जैसे आचार्य विद्यानंदजी, किन्तु उनकी कृतियाँ अनमोल हैं। आचार्य अमृतचन्द्रजी भी यदि ऐसे क्षत्रियकुलसे संबंधित ही हों तो कोई आश्चर्य नहीं है, क्योंकि उनकी टीकाके शब्दोंमें भी यही शौर्य उभरा हुआ स्पष्ट प्रतीत होता है। जैसे आचार्य समन्तभद्रजीके आप्तमीमांसाको सुनकर आचार्य विद्यानन्दजी 'विद्यानन्द' (विद्या + आनन्द) बन गये, संभव है, उसी प्रकार समयसार आदिके अध्ययनने आचार्य अमृतचन्द्रजीको 'अमृतचन्द्र' बना दिया हो। हमें तो उनके समयसारके तीसरे कलशमें इसीकी प्रतिध्वनि सुनाई पड़ती है।

'समयसार'की टीका रचते हुए जो उनकी भावना थी, कि उसे उन्होंने तीसरे कलशमें व्यक्त किया है। प्रवचनसारकी टीकाके प्रारंभमें वे कहते हैं, कि परमानन्दरूपी अमृतको पीनेके इच्छुक जनोंके हितके लिये यह वृत्ति की जाती है। इस परसे ज्ञात होता है, कि समयसार की टीका उन्होंने स्वहित हेतु लिखी हो और प्रवचनसारकी टीका परमानन्दरूपी अमृतके पिपासुजनोंके लिए लिखी हो।

उनकी टीकाओंको पढ़कर कोई कल्पना कर सकता है, कि भगवान आचार्य कुन्दकुन्दने ही भगवान आचार्य अमृतचन्द्रके रूपमें अवतार लिया न हो! उनकी टीकाएँ मात्र शब्दार्थ व्याख्यारूप नहीं हैं, किन्तु प्रत्येक गाथासूत्रमें भरे हुए रहस्योंको उद्‌घाटित करती है। अतः उसे टीका न कहकर भाष्य कहना ही उचित होगा। (जिसमें सूत्रके अर्थके साथ उनके आधारसे उसका रहस्य भी कहा जाता है, उसे भाष्य कहते हैं।) आचार्य अमृतचन्द्रजीकी टीकाका यही रूप है। उनकी भाषा तो संस्कृत गद्यात्मक अति मनोहर है। शब्दोंका चयन अध्यात्मके सर्वथा अनुरूप है। इस प्रकारकी अनुप्रासात्मक श्रुतिमधुर शब्दावली अन्य जैन टीकाओंमें नहीं पाई जाती। गद्य और पद्य दोनोंमें एकरूपता है। गद्यमें भी पद्यका आनन्द आता है।

उनका मौलिक ग्रन्थ 'लघुतत्त्वस्फोट' के अन्तिम पद्यमें उन्होंने अपने नामके साथ

श्रीमद् भगवत्कुंदकुंदाचार्यदेव

श्रीमद् अमृतचंद्राचार्यदेव

आचार्य कुन्दकुन्दने ही आचार्य अमृतचन्द्रके रूपमें अवतार लिया न हो! ऐसा लगता है।

'कवीन्द्र' विशेषणका प्रयोग किया है। उनके इस ग्रन्थमें उनके कवीन्द्रत्वका स्पष्ट दर्शन पद-पदपर होता है। काव्यशास्त्रकी सब विशेषताएँ उनकी इस कृतिमें है। यों तो उनकी उपलब्ध रचनाएँ ही उनके वैदुष्य और रचनाचातुर्यकी गरिमाके लिए पर्याप्त थी, किन्तु 'लघुतत्त्वस्फोट'ने तो उनकी उस गरिमापर कलशारोहण कर दिया है।

जैनतत्त्वकी जिस निधिने आचार्य अमृतचन्द्रको सर्वाधिक आकृष्ट किया है, वह है अनेकान्त और ज्ञानज्योति। उन्होंने अपनी रचनाओंके प्रारम्भमें किसी तीर्थंकर आदि व्यक्तिको नमस्कार न करके आत्मज्योति और अनेकान्तको ही नमस्कार किया है। समयसारके प्रारम्भमें समयसारको नमस्कार करके अनेकान्तमयी मूर्तिका स्मरण किया है। प्रवचनसारकी टीकाके प्रारम्भमें ज्ञानानंदस्वरूप आत्माको नमस्कार करके अनेकान्तमय तेजका जयकार किया है। पञ्चास्तिकायकी टीकामें उक्त प्रकारसे परमात्माको नमस्कार करके स्यात्कारजीविता जैनी सिद्धान्त पद्धतिका जयकार किया है। पुरुषार्थसिद्धयुपायके प्रारम्भमें परमज्योतिका जयकार करके अनेकान्तको नमस्कार किया है। तत्त्वार्थसारके प्रारम्भमें भी जिनेशकी ज्ञानज्योतिका जयकार है। अनेकान्त सिद्धान्तके प्रति इतनी अधिक भक्तिकी अभिव्यक्ति तो दर्शनशास्त्रके प्रतिष्ठाताओंकी कृतियोंमें भी नहीं मिलती।

आपकी टीकाओं जैसी टीका अब तक अन्य किसी जैनग्रंथकी नहीं लिखि गई है। आपकी टीकाओंके पाठक आपकी अध्यात्मरसिकता, आत्मानुभव, प्रखर विद्वत्ता, वस्तुस्वरूपको न्यायसे सिद्ध करनेकी असाधारण शक्ति, जिनशासनका अत्यन्त गहरा ज्ञान, निश्चय-व्यवहारका संधिबद्ध निरूपण करनेकी विरल शक्ति और उत्तम काव्यशक्तिका पूरा ख्याल आ जाता

है। अति संक्षेपमें गंभीर रहस्योंको रखदेनेकी आपकी शक्ति विद्वानोंको आश्चर्यचकित करती है। आपकी दैवी टीकाएँ श्रुतकेवलीके वचनों जैसी है। जैसे मूल शास्त्रकारके शास्त्र, अनुभव, युक्ति आदि समस्त समृद्धिसे समृद्ध हैं, वैसे टीकाकारकी टीकाएँ भी उन-उन सर्व समृद्धिसे विभूषित हैं। शासनमान्य भगवान कुंदकुंदाचार्यदेवने इस कलिकालमें जगद्गुरु तीर्थंकरदेव जैसा कार्य किया है और अमृतचंद्राचार्यदेवने मानों वे कुंदकुंदाचार्यके हृदयको स्पर्श करते हों उस तरह उनके गंभीर आशयोंको यथार्थरूपसे व्यक्त करके उनके गणधर जैसा कार्य किया है।

इससे स्पष्ट है कि आचार्यदेव परमागमके गहरे अभ्यासी थे और उनको उसके प्रति अगाध श्रद्धा और भक्ति थी।। ऐसे प्रामाणिक ग्रन्थकारकी रचनाओंके सम्बन्धमें अन्यथा कल्पना करना सूरज पर धूल फेंकने जैसा है!

पञ्चास्तिकायकी टीकाके प्रारम्भमें वे उसकी व्याख्याको 'द्विनयाश्रया'—दो नयोंका आश्रय करनेवाली कहते हैं।। इस प्रकार जिनागमकी व्याख्या दो नयोंके आश्रय लेकर करनेवाले वे ही आद्य टीकाकार हैं।। उन्हींका प्रभाव उनके पश्चात् होनेवाले आध्यात्मिक टीकाकारों और ग्रन्थकारोंमें देखनेमें आता है।। इस प्रकार वे इस आध्यात्मिक युगके स्रष्टा हुए हैं। भगवान कुंदकुंदाचार्यदेवके प्राभृतत्रयके अन्य टीकाकार श्री जयसेनाचार्यदेवने अपनी टीकाओंमें अनेक स्थान पर श्री अमृतचंद्रचार्यदेवकी टीकाओंका बहुत आदर सह स्मरण किया है।

हमारे परमोपकारी पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी अपने परमागम समयसारके प्रवचनोंमें श्री अमृतचंद्राचार्यदेव व उनकी आत्मख्याति टीकाकी भूरी-भूरी प्रशंसा करते फरमाते हैं, कि यह टीका पंचमकालमें व भरतक्षेत्रमें अजोड़ है।

पूज्य गुरुदेवश्रीने टीका सहित समयसार ग्रंथ पर शुरुसे अन्त तक १९ बार सभामें प्रवचन किये थे, तद्उपरांत आपके अन्य ग्रंथों व पुरुषार्थसिद्धिउपाय ग्रंथ पर भी उन्होंने कई बार प्रवचन किये थे।

आपकी प्रसिद्ध रचनाएँ १. समयसारकी आत्मख्याति टीका, २. प्रवचनसारकी तत्त्वदीपिका टीका, ३. पञ्चास्तिकायसंग्रहकी समयव्याख्या टीका, ४. पुरुषार्थसिद्धिउपाय, ५. तत्त्वार्थसार, ६. लघुतत्त्वस्फोट।। इसमें प्रथम ३ टीका ग्रंथ हैं, व अन्तिम ३ आचार्यदेवकी मौलिक रचनाएँ हैं।।

आचार्य अमृतचन्द्रजीका समय विक्रमकी दसवीं शताब्दी (ई. स. ९०५-९५५) है।।

ऐसे महान आचार्यदेवको अनहद श्रद्धा व भक्ति हृदयसे कोटि-कोटि वंदन।।

भगवान आचार्यदेव
श्री अमितगति (प्रथम)

भगवान महावीरके आम्नायमें एक नामके दो अमितगति आचार्य हुए हैं, इतना ही नहीं, दोनोंका समय भी अत्यंत नज़दीक है अर्थात् दोनोंके बीच दो पीढ़ीका ही फ़रक है। अतः भ्रम होनेका संभव रहता है, कि मानों दोनों एक ही अमितगति न हो। अतः इतिहासकारोंको दोनोंका भेद निर्णित करना जरूरी रहा।

आचार्य अमितगति (प्रथम), आचार्य देवसेनके शिष्य थे। आचार्य अमितगति(प्रथम)के शिष्य नेमिषेण व उनके शिष्य माधवसेन व उनके शिष्य आचार्य अमितगति(द्वितीय) थे।

अमितगति आचार्य (प्रथम)के, एक विशेष प्रकारका विशेषण लगाया जाता है 'त्यक्तनिःशेषसंग'—यह विशेषण आचार्य अमितगति (द्वितीय)ने स्वयं ही आचार्य अमितगति (प्रथम)के लिए दिया है, जो स्वयं आचार्य अमितगति (प्रथम) भी यह विशेषण अपने साथ लगाते थे। इस भांति आचार्य अमितगति (द्वितीय)ने अपनेको सम्माननिय आचार्य अमितगति (प्रथम)से भिन्न बताया है।

आपकी सर्वोत्तम कृति 'योगसार-प्राभृत' है, कि जो अध्यात्म-रस प्रचुर है। इस ग्रंथमें आपने स्वयंके लिए 'निसङ्गात्मा' यह विशेषण लगाया होनेसे, उपरोक्त विशेषणसा ही यह विशेषण होनेसे स्पष्ट होता है, कि योगसार-प्राभृत आपका ही ग्रंथ है।

आपको अपने गुरु आचार्य देवसेनकी असीम महिमा थी, वह आपके 'सुभाषितरत्नसंदोह'के एक श्लोकसे सिद्ध होती है।

आपके बारेमें इससे विशेष कुछ भी जानकारी प्राप्त नहीं होती।

आपके जीवनकी मुख्य रचना 'योगसार-प्राभृत' ही है। आपका काल ९२३-९६३के अन्तर्गत होना निश्चित होता है।

'सुभाषितरत्नसंदोह'के रचयिता आचार्य अमितगतिदेव (प्रथम)को कोटि कोटि वंदन।

भगवान आचार्यदेव

श्री अभयनन्दि सिद्धान्तचक्रवर्तीदेव

नन्दिसंघ देशीयगण संबंधित मान्यता है, कि उनकी शिष्य-प्रशिष्यकी दृष्टिसे, वह संघ अनेक शाखा-प्रशाखाओंमें बँट जाता है। अतः दीक्षागुरु एक शाखाके होने पर भी शिक्षागुरु विभिन्न प्रशाखाका हो सकता हैं—ऐसा अन्दरोन्दर उस समय चलता रहता होगा। उस अनुसार उक्त देशीयगणमें भिन्न-भिन्न मत पनपे हों ऐसा प्रतीत होता है। अतः मूलसंघ, देशीयगण, पुस्तकगच्छ, कोण्ड़कुन्दान्वयकी इंगलेश्वरी शाखाके श्री समुदायमें एक माघनन्दी भट्टारक हुए। उनके नेमिचन्द्र भट्टारक और आचार्य अभयनन्दि सिद्धान्त चक्रवर्ती ये दो शिष्य हुए।

आचार्य अभयनन्दिजी आचार्य गुणनन्दिके (शिक्षा) शिष्य थे तथा इन्द्रनन्दि व नेमिचन्द्र सिद्धान्त चक्रवर्तीके समवयस्क दीक्षागुरु और वीरनन्दिके शिक्षागुरु थे। आचार्य अभयनन्दिजीको सिद्धान्तचक्रवर्तीकी उपाधि प्राप्त थी। अतः आपके इन तीनों शिष्यों(इन्द्रनन्दिजी, नेमिचंद्रजी तथा वीरनन्दिजी)को भी वह सहज ही मिल गई।

इनके अलावा आ. अभयनन्दिजीके कई शिष्य हुए हैं, उनमें बालचन्द्र पण्डित प्रिय शिष्य थे। आपके शिष्योंके बारेमें हलेबीड़, रावन्दूर, भारंगी, हुम्मच आदि अनेक स्थानोंमें गुणगरिमाके कई शिलालेख मिलते हैं। इससे स्पष्ट है, कि आप अपने समयके महासमर्थ आचार्य भगवंत होंगे।

आपका ज्येष्ठ शिष्य बुल्लगौड़ था। जिसका पुत्र गोपगौड़ कर्नाटक प्रदेशके 'नागरखण्ड़'का शासक था, आपके लिए शिलालेखोंमें बताया गया है, कि आप छन्द, न्याय, शब्द, समय, अलंकार, व प्रमाणशास्त्र आदिके विशिष्ट विद्वान थे।

आपने अपने जीवनमें १. 'कर्मप्रकृति' नामक ग्रंथकी रचना की है। २. कर्मप्रकृति रहस्य, ३. तत्त्वार्थसूत्रकी तात्पर्यवृत्ति टीका, ४. पूजा कला, ५. (सम्भवतः) जैनेन्द्र व्याकरणकी महावृत्ति टीकाकी रचना की है।

इतिहासकारोंने देशीयगण गुर्वावलीमें आपका समय ई.स. ९३०-९५० दर्शाया है।

आचार्य श्री अभयनन्दि सिद्धान्तचक्रवर्तीदेव भगवंतको कोटि कोटि वंदन।

भगवान श्री देवसेनाचार्य

देवसेन नामक कई आचार्योंका उल्लेख है। उनमेंसे आप 'दर्शनसार' ग्रंथके रचयिता हैं।

आपकी रचनाओंसे ज्ञात होता है, कि आपका सम्पर्क धारानगरीसे रहा था। वहीं पर आपने दर्शनसार ग्रंथ रचा था। आपके गुरु-शिष्य या कौटुम्बिक सम्बन्धमें कुछ भी परिचय नहीं मिलता है।

आपने अपनी रचना प्राकृत, संस्कृत व अपभ्रंश भाषामें की है।

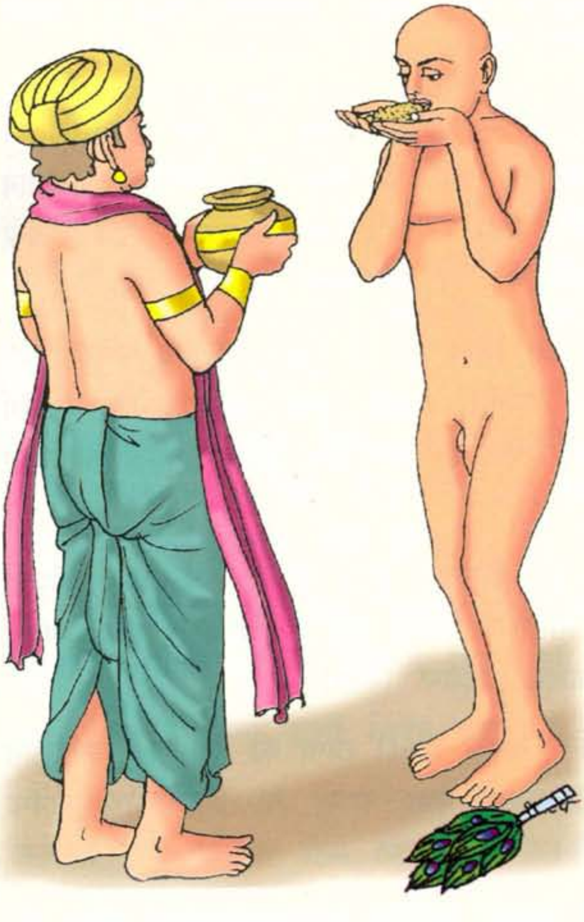

नवधा भक्तिपूर्वक आहार लेते हुए

आलापपद्धतिकी रचना लघुनयचक्रके आधार पर की होनेसे ऐसा निर्णित होता है, कि आपने प्रथम लघुनयचक्र लिखा था।

आपने श्रुतभवन दीपक नयचक्रके अन्तमें आत्मानुभवकी साधनामें होती प्रक्रियामें नय-व्यवस्था किस भांति प्रक्षिण होती जाती है–उसका सुन्दर वर्णन किया है।

आपकी रचनाओमें (१) दर्शनसार, (२) आलापपद्धति, (३) लघुनयचक्र, (४) तत्त्वसार, (५) आराधनासार, (६) नयचक्र, (७) श्रुतभवनदीपक नयचक्र भी आपकी रचना प्रतीत होती है।

इतिहासकारोंकी मान्यता अनुसार आपका काल ई.स. ९३३-९५५ प्रतीत होता है।

'दर्शनसार'के रचयिता आचार्य श्री देवसेनस्वामीको कोटि कोटि वंदन।

भगवान आचार्यदेव
श्री इन्द्रनन्दि

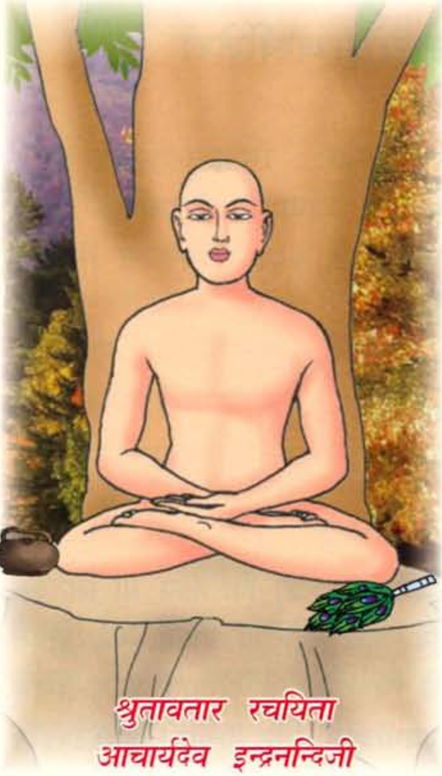
श्रुतावतार रचयिता
आचार्यदेव इन्द्रनन्दिजी

ईसुकी १०वीं शताब्दीके आचार्य इन्द्रनन्दि ऐसे महान आचार्य हैं, कि जिन्होंने निरंतर अपने आत्मज्ञान-ध्यानकी मस्तीसे, वनमें विचरते हुए, स्वयंके बारेमें कुछ भी न लिखकर अन्य आचार्य भगवंतोंके बारेमें काफ़ी कुछ लिखा। जिससे दिगम्बर जैन आम्नायके मुनि भगवंतों व महासमर्थ आचार्य भगवंतोंकी परंपरा व उनके संबंधमें यत्किंचित् प्रमाणिक जानकारी मिल पाती है।

भगवान महावीरसे करीबन १४०० वर्ष पश्चात् (इसुकी दसवीं शताब्दी)के आप नन्दिसंघदेशीयगणीय आचार्य थे। आपके दीक्षागुरुका नाम वासवनन्दिके शिष्य बप्पनन्दि था। आपके शिक्षागुरुका नाम अभयनन्दि था व आप आचार्य नेमिचंद्र सिद्धान्त चक्रवर्तीके ज्येष्ठ गुरुभाई समान थे।

इन्द्रनंदि आचार्यने १. नीतिसार, २. समयभूषण, ३. इन्द्रनन्दि संहिता, ४. मुनि प्रायश्चित्त प्राभृत, ५. प्रतिष्ठापाठ, ६. पूजाकल्प, ७. शान्तिचक्र पूजा, ८. अंकुरारोपण, ९. प्रतिमा संस्कारारोपण पूजा; १०. ज्वालामालिनी, ११. औषधिकल्प, १२. भूमिकल्प, १३. श्रुतावतार आदि शास्त्रोंकी रचना की है।

वैसे भगवान महावीरके पश्चात् दिगम्बर जैन आचार्योंकी मूल परंपराके इतिहासको 'श्रुतावतार' कहा जाता है। ऐसे 'श्रुतावतार' कुछ आचार्योंने लिखें है। उसमें आचार्य इन्द्रनन्दिका 'श्रुतावतार' प्राकृत गाथाबद्ध है। वैसा ही ई.स. १४००में होनेवाले आचार्य श्रीधरजीने भी श्रुतावतार रचा है। फिर भी आ. इन्द्रनन्दिका 'श्रुतावतार' विशेष प्राचीन है।

आप ई.स. ९३९के आचार्य थे ऐसा इतिहासकारोंका मानना है।

'श्रुतावतार'के रचयिता आचार्य इन्द्रनन्दि भगवंतको कोटि कोटि वंदन।

भगवान आचार्यदेव

श्री कनकनन्दि सिद्धान्तचक्रवर्तीदेव

सिद्धान्त शास्त्रके ज्ञाता भगवान आचार्य कनकनंदि मूलतः सिद्धान्त-शास्त्रके मर्मज्ञ ऐसे देवेन्द्रनन्दिजीके शिष्य थे। तत्पश्चात् आप सिद्धान्तचक्रवर्ती आचार्यदेव इन्द्रनन्दिके शिष्य व भगवान नेमिचन्द्र सिद्धान्त चक्रवर्तीदेवके सहधर्मा थे। आप भी भगवान नेमिचन्द्र सिद्धान्त चक्रवर्तीदेव समान ही समादरणीय हैं।

वरइंदणंदिगुरुणो पासे सोऊण सयल सिद्धंतं॥
सिरिकणयणंदि गुरुणा, सत्तट्ठाणं समुद्दिट्ठं॥

अर्थ : आचार्योंमें श्रेष्ठ ऐसे श्री इन्द्रनंदि 'गुरु'के पास समस्त सिद्धान्तको सुनकर श्री कनकनन्दि सिद्धान्त चक्रवर्ती गुरुने इस सत्त्वस्थानको सम्यक् रीतिसे कहा है।

इस भांति उक्त गो. कर्मकाण्ड गा. ३९६से यह अति स्पष्ट है, कि आप भी सिद्धान्त ग्रन्थोंके पारगामी थे। इस गाथामें आचार्य कनकनन्दिके पूर्व 'गुरु' शब्दका प्रयोग, यह सूचित करता है, कि आचार्य नेमिचन्द्रदेवने गोम्मटसार कर्मकाण्डकी रचना या तो आचार्य कनकनन्दिसे अध्ययन करके रची हो या आचार्य कनकनन्दि अपने सहधर्मीओंमें 'गुरु' नामसे प्रसिद्ध होंगे या आचार्य कनकनन्दि भी उनके गुरु रहे हों अर्थात् वे वय, दीक्षा आदिकी दृष्टिसे 'गुरु' हों। जो कुछ भी हो आपका आचार्य नेमिचन्द्रजीकी नजरोंमें एक सम्माननिय स्थान रहा है, जो, कि भगवान नेमिचन्द्र आचार्यदेवके गोम्मटसार कर्मकाण्ड ग्रंथ तकमें झलक आया है।

आपका एक ही ग्रंथ ४८ या ५१ गाथा प्रमाण 'विस्तरसत्त्वत्रिभंगी' नामक मात्र २ प्रतियाँ कागज पर लिखी 'जैन सिद्धान्त भवन' आरामें है। उसमेंसे हुबहु ४० गाथा गोम्मटसार कर्मकाण्डकी गाथा ३५८ से ३९७ ही है। उसमें उक्त गाथा ३९६ भी आ गई। इस परसे ऐसा ज्ञात होता है, कि आचार्य कनकनन्दिने इतना छोटासा ग्रन्थ नहीं लिखा होगा, परन्तु आचार्य नेमिचन्द्र सिद्धान्त चक्रवर्तीजीको गोम्मटसार कर्मकाण्ड़ लिखनेमें सहयोग हेतु, यह सत्त्व त्रिभंगी प्रकरण लिखा होगा—जो गोम्मटसार कर्मकाण्ड़की गाथा ३५८ से ३९७ बन गई व बादमें स्वयंने अल्प गाथाएँ जोड़कर उसे एक स्वतंत्र ग्रंथका रूप प्रदान किया हो।

इस परसे भी स्पष्ट है, कि आप अपने समयके प्रसिद्ध आचार्य थे।

इतिहासकारों अनुसार आपका काल करीब ई.स. ९३९ माना गया है।

आचार्यदेव कनकनन्दि सिद्धान्तचक्रवर्तीदेव भगवंतको कोटि कोटि वंदन।

भगवान आचार्यदेव

श्री सोमदेवसूरि

आचार्य सोमदेव महान तार्किक, उत्तम साहित्यकार व कुशल राजनीतिज्ञ, प्रबुद्ध तत्त्वचिंतक व उच्चकोटिके धर्माचार्य थे। आपके लिए विशेष विशेषण प्रसिद्ध हैं जैसे : स्याद्वादाचलसिंह, तार्किक चक्रवर्ती, वादीभपञ्चानन, वाक्कल्लोलपयोनिधि, कविकुलराजकुंवर, अनवधगद्य-पद्यविद्याधर चक्रवर्ती। ये विशेषण आपकी उत्कृष्ट प्रज्ञा व प्रभावकारी व्यक्तित्वके द्योतक हैं।

आप आचार्य यशोदेवके प्रशिष्य, आचार्य नेमिदेवके शिष्य व आचार्य महेन्द्रदेवके लघु सधर्मा थे। आप कर्णाटक देशमें चालुक्य राजके पुत्र वाद्यराजसे रक्षित थे। आप जिनके प्रशिष्य थे, वे आचार्य यशोदेवको तो देवसंघका तिलक कहा गया है। आपके गुरु अनेक महावादियोंके विजेता थे।

उस समयके राष्ट्रकूट जो पश्चिमके अरब राज्यों तकमें व्याप्त था—ऐसे राष्ट्रकूटोंके अभ्युदयका आचार्य सोमदेवजीने अपने साहित्यमें सुंदर परिचय दिया है।

आपके 'नीतिवाक्यामृत' व 'यशस्तिलक चम्पू'से ज्ञात होता है, कि आपका संबंध कान्यकुब्ज नरेश महेन्द्रदेवसे रहा है व 'नीतिवाक्यामृत' ग्रंथ महेन्द्रदेवके आग्रहसे ही रचा गया है। यह ग्रंथ कौटिल्यके अर्थशास्त्रकी भांति अर्थशास्त्रका उत्कृष्ट ग्रंथ है।

आचार्यश्रीकी तीन रचनाएँ : १. नीतिवाक्यामृत, २. यशस्तिलक चम्पू, ३. अध्यात्मतरंगिणी। इसके अतिरिक्त (१) युक्तिचिन्तामणि स्तव, (२) त्रिवर्ग महेन्द्रभातलिसंजल्प, (३) षण्णवतिप्रकरण व (४) स्याद्वादोपनिषद आदि भी आपकी रचना गिनी जाती है।

आप ई.सन् ९४३-९६८के अर्थात् ईसाकी दसवीं शताब्दीके आचार्य थे।

आचार्य भगवंत श्री सोमदेवसूरिको कोटि कोटि वंदन।

भगवान आचार्यदेव

वीरनन्दी सिद्धान्तचक्रवर्तीदेव

नन्दीसंघ देशीयगणानुसार श्री वीरनन्दी आचार्य मेघचन्द्र त्रैविद्यके शिष्य थे और पीछे विशेष अध्ययन हेतु आचार्य अभयनन्दिकी शाखामें आए। आप आचार्य इन्द्रनन्दि व आचार्य नेमिचन्द्र सिद्धान्त चक्रवर्तीजीके सहध्यायी थे। फिर भी ज्येष्ठ होनेके कारण आपको आचार्य नेमिचन्द्रजी गुरु-तुल्य मानते थे।

आप जनसाधारणके मनोभावों, ह्रदयकी विभिन्न वृत्तियों एवं विभिन्न अवस्थाओंमें उत्पन्न होनेवाले मानसिक विचारोंके सजीव चित्रणकर्ता महाकवि थे। आप स्वयं सिद्धान्तवेत्ता ही नहीं, परंतु आप उसके मर्मज्ञ भी थे।

श्रवणबेलगोलाके ४७वें शिलालेखसे स्पष्ट है, कि आचार्य गुणनन्दिके ३०० शिष्य थे। उसमेंसे ७२ सिद्धान्त–शास्त्रके मर्मज्ञ थे। इनमें देवेन्द्र सिद्धान्तिक सबसे प्रसिद्ध थे। देवेन्द्र सिद्धान्तिकके शिष्य कलधोतनन्दि या कनकनन्दि सिद्धान्त चक्रवर्ती थे।

श्री नेमिचन्द्र सिद्धान्त चक्रवर्तीदेवने गोम्मटसार–कर्मकाण्ड़ ग्रंथमें अभयनन्दि, इन्द्रनन्दि व वीरनन्दि इन तीनों आचार्योंको नमस्कार किया है। आचार्य वीरनन्दिके शिक्षागुरु अभयनन्दि, दादागुरु गुणनन्दि व सहाध्यायी इन्द्रनन्दि थे। आचार्य नेमिचन्द्र सिद्धान्त चक्रवर्ती आपके शिष्य या लघु–गुरुभाई प्रतीत होते हैं।

आपका 'चन्द्रप्रभचरित' काव्य–प्रतिभाका चूड़ात्व निर्देशन है।

आपका काल इतिहासकारोंनुसार ई.स. ९५०–९९० है।

आचार्य श्री वीरनन्दी सिद्धान्तचक्रवर्तीदेवको कोटि कोटि वंदन।

भगवान आचार्यदेव

श्री प्रभाचन्द्र (चतुर्थ)

जिनधर्ममें प्रभाचन्द्र नामक अनेक आचार्य हुए हैं, जैसे :

(१) नन्दिसंघ [1]बलात्कारगणकी पट्टावलियों अनुसार आचार्यदेव प्रभाचन्द्रजी (प्रथम) आचार्य लोकचन्द्रके शिष्य व आचार्य नेमिचन्द्रके गुरु थे। आपका काल ई.स. ५३१ से ५५६के बीच माना जाता है।

(२) जिन्होंने गृद्धपिच्छ उमास्वामीको अनुसरण करके एक द्वितीय तत्त्वार्थसूत्र बनाया। यह आचार्य प्रभाचन्द्रजी (द्वितीय) भट्ट अकलंकके परवर्ती होनेसे आपका काल ईसुकी सातवीं शताब्दी उत्तरार्ध माना जाता है। आपका दूसरा नाम 'बृहद्प्रभाचन्द्र'के रूपमें भी प्रसिद्ध है।

(३) राष्ट्रकूटके नरेन्द्र गोविन्दके ताम्रपत्र अनुसार आचार्यदेव प्रभाचन्द्रजी (तृतीय) तोरणाचार्य व पद्मनन्दिके शिष्य थे। आपका काल लगभग ई.स. ७९७ माना जाता है।

(४) आचार्यदेव प्रभाचन्द्रजी (चतुर्थ) महापुराणके कर्ता आचार्य जिनसेनजी(द्वितीय)के पूर्ववर्ती कुमारसेनके शिष्य थे। आपने न्यायग्रंथ 'चंद्रोदय'की रचना की थी। आपका काल ई.स. ९५०-१०२० होना निश्चित होता है। आप जिनसेनजी (द्वितीयके) सम-समयवर्ती भी होंगे।

आपकी गुरु-शिष्य परम्परासे ज्ञात होता है, कि आप दक्षिण राज्यके थे, क्योंकि ऐसी गुरु-शिष्य परम्परा दक्षिणमें ही होती है। वहाँसे आप अपने जीवनके अन्तिम वर्षोंमें उत्तरमें 'धारा'नगरीकी ओर विहार कर पधारे होंगे। वहीं आपको आचार्यदेव माणिक्यनन्दिजीका सम्पर्क होनेसे ही आपने स्वयंको उनका साक्षात् शिष्यत्व (शिक्षा-शिष्यत्व) प्रकट किया है। इससे संभव है, कि आपने आचार्य माणिक्यनन्दिजीसे न्यायका अभ्यास किया व उन्हींके जीवनकालमें ही आचार्य माणिक्यनन्दिजीके 'परीक्षा-मुख'की १२००० श्लोकप्रमाण 'प्रमेयकमलमार्तण्ड' नामक टीकाकी रचना की थी।

---

१. बलात्कारगण : नन्दिसंघकी एक शाखाका नाम।

आप नन्दिसंघ देशीयगण गोलाचार्य आम्नायमें पद्मनन्दि सैद्धान्तिकके शिष्य थे। इतना ही नहीं आप भगवान आचार्य कूलभूषणके भी सधर्मा थे व शिलालेखोंके आधारसे आप कुलभूषणके गुरु भी थे।

आपके गुरु पद्मनन्दि सैद्धान्तिक थे तथा आपने अपने गुरुके रूपमें 'चतुर्मुख गुरु'का भी स्मरण किया है। इस परसे अनुमान है, कि 'चतुर्मुख गुरु' आपके या तो गुरुभाई हैं या द्वितीय गुरु हों।

माणिक्यनन्दि आचार्य आपके शिक्षागुरु थे। आप धारानगरीके राजा भोज द्वारा सम्मानित व पूजित हुए थे। आप स्वयं राजमान्य राजर्षि थे।

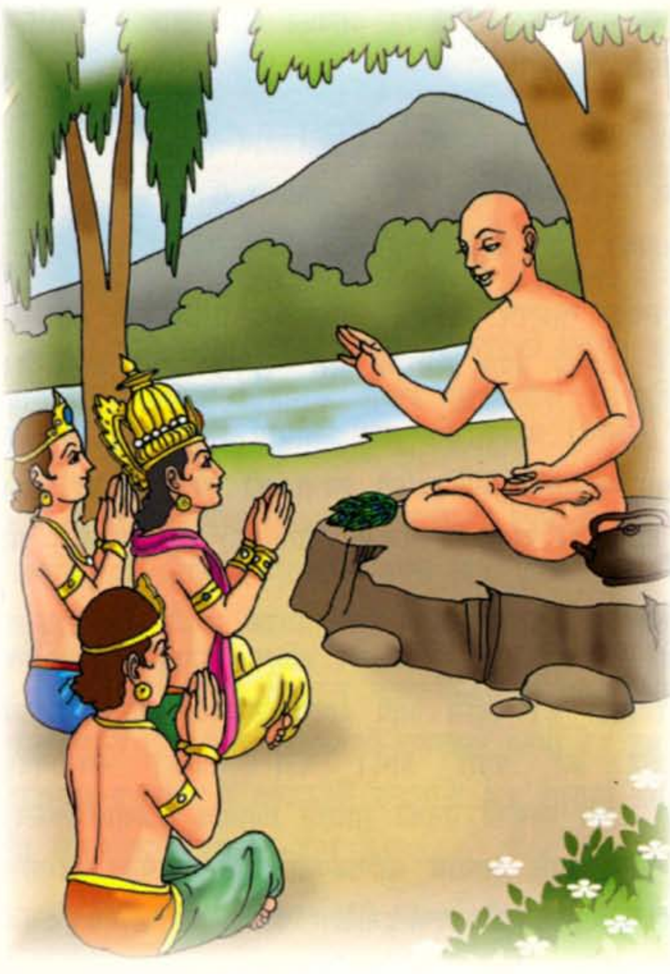

राजा भोजको जैन न्यायसम्बन्धित स्वरूप समझाते हुए आचार्य प्रभाचंद(चतुर्थ)

आप 'पंडित' उपमासे भी अलंकृत थे। इतना ही नहीं, 'जैनेन्द्र व्याकरण' पर रचित आपकी रचना 'जैनेन्द्रन्यास–शब्दाम्भोज भास्कर'के कारण आपको 'शब्दाब्ज दिनमणि'की संज्ञा दी गई थी। आप महान तार्किक होनेसे व तार्किक ग्रंथोंकी रचना करनेसे 'प्रथित तार्किक'की उपमासे भी अलंकृत थे। इतना ही नहीं, आप वैयाकरणी भी थे।

आपने जो शब्दोंकी व्युत्पत्तियाँ खोली है, वे अपनेमें अद्भुत होनेसे आप 'असाधारण व्युत्पन्न पुरुष' भी थे। आपकी लेखनीके आधारसे यह भी ज्ञात होता है, कि आपको न्याय, सिद्धान्त, अध्यात्म, चरणानुयोग,

प्रथमानुयोग दर्शन आदि विषयों पर सम्पूर्ण अधिकार प्राप्त था। आप जैन दर्शन व अन्य दर्शनोंके सिद्धान्तिक फ़रकको गहराईसे जानते थे। अन्य दर्शनोंमें वेद, उपनिषद, स्मृति, सांख्य, योग, वैषेशिक, न्याय, मीमांसक, बौद्ध, चार्वाक आदि सभी भारतीय दर्शनों पर आपको अच्छा अध्ययन प्राप्त था। इस भाँति स्वयं ज्ञान-ध्यानमें लवलीन रहते होने पर भी असाधारण क्षयोपशमके धनी थे—यह अति स्पष्ट है। आपने जो जिनधर्मको शास्त्र प्रदान किये हैं, उनसे प्रतीत होता है, कि आपका आयुष्य बड़ा होना चाहिए। आत्मज्ञान सह विशाल क्षयोपशम व वैराग्यके धनी हो जानेसे आपने छोटी उम्रमें ही भगवती जिनदीक्षा व आचार्य पदवी धारण की हो—ऐसा अनुमान है।

आप द्वारा रचित 'प्रमेयकमलमार्तंड' व 'न्याय कुमुदचंद्र' जैन न्यायशास्त्रके अत्यधिक महत्त्वपूर्ण ग्रंथ हैं। इन ग्रंथके विषयवस्तुको देखते हुए स्पष्ट होता है, कि क्रमशः ''प्रमेयरूपी कमलोंको उद्‌भासित करनेके लिए आप मार्तण्ड़–सूर्य'' समान होनेसे 'प्रमेयकमलमार्तण्ड' नाम यथार्थ है; व ''न्यायरूपी कुमुदोंको प्रस्फुरित करनेके लिए चन्द्रमा सदृश'' होनेसे 'न्याय कुमुदचन्द्र' नाम भी यथार्थ हैं।

जो कुछ भी हो, आपके लिखित शास्त्रोंकी शैली, भाषा, शिलालेखोंसे विद्वान वर्गको निश्चय है, कि आप निम्न शास्त्रोंके रचयिता थे।

(१) प्रमेयकमलमार्तण्ड : परीक्षामुख–व्याख्या, (२) न्याय कुमुदचंद्र : लघीयस्त्रय व्याख्या, (३) तत्त्वार्थवृति पद विवरण : सर्वार्थसिद्धि व्याख्या, (४) शकटायनन्यास : शकटायन व्याकरण व्याख्या, (५) शब्दाम्भोजभास्कर : जैनेन्द्रव्याकरण व्याख्या, (६) प्रवचनसार सरोज भास्कर : प्रवचनसार व्याख्या, (७) गद्यकथाकोष : स्वतंत्र रचना, (८) रत्नकरंडक श्रावकाचार–टीका, (९) समाधितंत्र टीका, (१०) आत्मानुशासन टीका, (११) क्रियाकलाप टीका, (१२) महापुराण-टिप्पण, (१३) लघुद्रव्यसंग्रह वृत्ति, (१४) पंचास्तिकाय प्रदीप, (१५) समयसार टीका, (१६) चन्द्रोदय भी आपकी रचना प्रतीत होती है।

आचार्यदेव रचित रचनाओं तथा उत्तरवर्ती रचनाओंके आधार पर काफी उहापोह पश्चात् इतिहासकार विद्वानवर्गने आपका समय ई.स. ९५० से १०२० माना है।

ऐसे आत्मज्ञान सह अनहद वैराग्य व ज्ञान-ध्यानमें प्रचुर आचार्य प्रभाचन्द्रदेव(चतुर्थ)को कोटि कोटि वंदना।

भगवान आचार्यदेव

श्री (बृहद्) अनन्तवीर्य

दिगम्बर परम्परामें अनन्तवीर्य नामक कई आचार्य हुए हैं, उनमें भगवान अकलंकस्वामी रचित 'सिद्धिविनिश्चय'की बृहद् टीका रचयिता आचार्य अनन्तवीर्य स्वयं अपने आपमें एक हैं। ऐसा बताया जाता है, कि आप देवकीर्ति पण्डितके गुरु व गौणसेन पण्डितके शिष्य व श्रीपालके सधर्मा थे। फिर भी आपके गुरुका नाम 'रविभद्रजी' जान पड़ता है व आचार्य वादिराजके आप दादागुरु थे। आपने स्वयंने शायद अपने गुरुके नामसे ही स्वयंको 'रविन्द्रपादोपजीवी' बताया है। आचार्य अनन्तवीर्य द्रविड संघके नन्दिगणके उरुङ्गलान्वयीकी परम्पराके श्रवणबेलगोलावासी आचार्य थे।

'गरुड़-लान्वयी' आचार्य वादिराजजीने आ. अनन्तवीर्यकी स्तुति करते हुए कहा है, कि 'आपके वचनरूपी अमृतदृष्टिसे जगतको चाटजानेवाला शून्यवादरूपी हूताशन शान्त हो गया था'। इतना ही नहीं, आचार्यदेव वादिराजजीने आपको उस 'दीपशिखा समान' बताया है, कि जो भगवान आचार्य अकलंक वाङ्मयके गूढ़ और अगाध पदोंका अर्थ पद-पद पर प्रकाशित करता है।

आचार्यदेव अनन्तवीर्यजी न्यायशास्त्रके पारंगत और अनेक शास्त्रोंके मर्मज्ञ थे। आपकी 'सिद्धिविनिश्चय'की टीकासे ज्ञात होता है, कि आपका दर्शन-शास्त्रीय अध्ययन बहुत ही व्यापक और सर्वतोमुखी था। आपको वैदिक संहिताओं, उपनिषद, उनके भाष्य एवं वार्ता आदिका भी गहरा अध्ययन था। आप न्याय–वैशेषिक, सांख्य-योग, मीमांसक, चार्वाक, बौद्ध आदि अन्य मतोंके भी असाधारण विद्वान थे।

इतिहासकारोंनुसार यह मानना है, कि भगवान अकलंकस्वामीके 'सिद्धिविनिश्चय'ग्रंथकी विस्तृत टीका लिखते समय, आचार्य अनन्तवीर्यजीके सामने, आपसे पूर्व हुए 'वृद्ध अनन्तवीर्यजी' द्वारा लिखी प्राचीन व्याख्या भी होगी। आपने इस टीका ग्रंथमें मूल ग्रंथके अभिप्रायको विशदरूपसे पल्लवित किया है। बीच-बीचमें आपने प्रकरणगत अर्थको स्वरचित श्लोकोंमें भी व्यक्त किया है, जिससे यह ग्रंथ वाचकको गद्य-पद्यमय चम्पू-काव्य सा आनन्द देता है। इस ग्रंथमें कितने ही नय प्रमेयोंकी चर्चा है।

आपके दो ग्रंथ प्रसिद्ध हैं– (१) सिद्धि विनिश्चय टीका, (२) प्रमाणसंग्रह भाष्य अपरनाम प्रमाणसंग्रहालङ्कार है।

इतिहासकारों अनुसार आपका समय ई.स. ९७५ से १०२५ प्रतीत होता है।

'सिद्धिविनिश्चय' टीकाके रचयिता आचार्य अनन्तवीर्य भगवंतको कोटि कोटि वंदन।

भगवान आचार्यदेव

श्री पद्मनंदिनाथ (प्रथम)

श्री दिगम्बर जैन आम्नायमें पद्मनंदि आचार्य नामक कई आचार्य हुए हैं। उनमेंसे 'जम्बूद्वीपपण्णति'के रचयिता भगवान आचार्य पद्मनन्दि अपनेमें भिन्न ही हैं। पद्मनंदि आचार्योंके जीवनके सम्बन्धमें जो कुछ लिखा जा रहा है, उनमें पद्मनंदि नामक आप प्रथम होनेसे आपको आचार्य पद्मनंदि (प्रथम) बताया गया है।

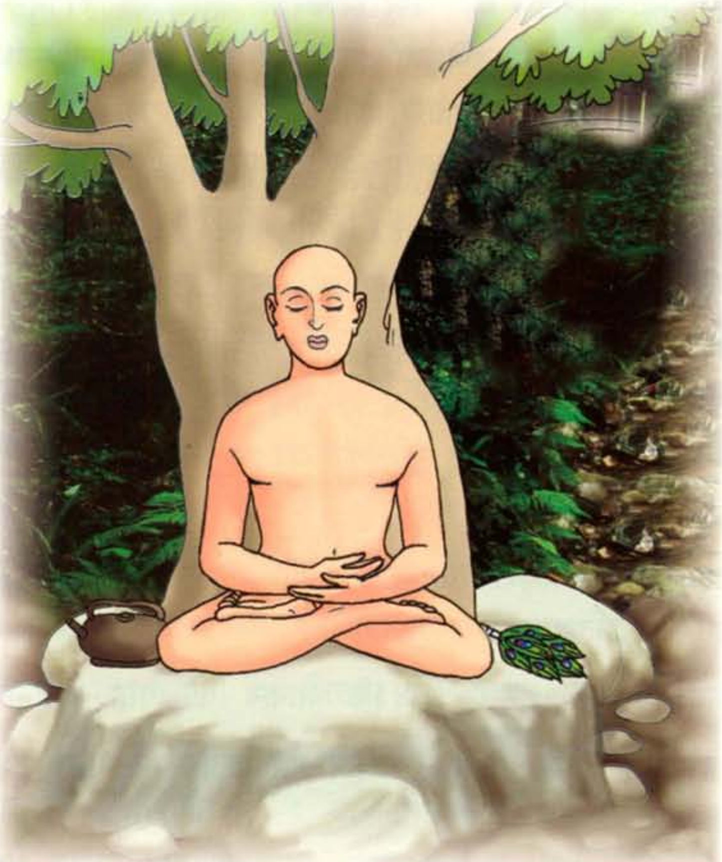

ध्यानस्थ आचार्य पद्मनन्दिजी (प्रथम)

आपने स्वयंको भगवान आचार्य वीरनन्दिका प्रशिष्य व आचार्य बलनन्दिका शिष्य बताया है। आपने विजयगुरुके पास ग्रंथोंका अध्ययन किया अर्थात् आचार्य श्री विजयगुरु आपके विद्यागुरु थे। ऐसा भी बताया जाता है, कि 'प्रमेयकमल मार्तण्ड'के रचयिता भगवान प्रभाचन्द्राचार्य(चतुर्थ)के आप दीक्षागुरु थे।

परन्तु आपके व प्रभाचन्द्र (चतुर्थ)के समयको देखते ऐसा प्रतीत होता है, कि श्री पद्मनन्दिजीको आचार्य पदवी प्राप्त होनेके पूर्व ही मुनि अवस्थामें आपने आचार्य प्रभाचन्द्रजीको दीक्षा दी हो।

'जम्बूद्वीपपण्णति' लिखनेका निमित्त बताते हुए लिखा है, कि 'राग-द्वेषसे रहित श्रुतसागरके पारगामी आचार्यदेव माघनन्दी हुए। उनके शिष्य सिद्धान्त-महासमुद्रमें कलुषताको धो डालनेवाले गुणवान आचार्य सकलचन्द्र गुरु हुए। उनके शिष्य निर्मल रत्नत्रयके धारक श्री नन्दिगुरु हुए। उन्हींके निमित्त यह 'जम्बूद्वीपपण्णत्ति' लिखी गई है। गुरुपरम्पराके संदर्भमें आपने स्वयंको त्रिदण्डरहित, त्रयशल्यविशुद्ध, गारवत्रयसे रहित, सिद्धान्तके पारगामी व तप-नियम-योगसे संयुक्त पद्मनंदि मुनि बताया है।

आपकी ग्रंथ रचनासे ज्ञात होता है, कि आप प्राकृतभाषा व सिद्धान्तग्रंथोंके पारगामी थे। आपने स्वयंको 'वरपउमनंदि' कहा है। इससे स्पष्ट है, कि स्वयं अन्य पद्मनन्दिसे बिलकुल भिन्न है।

जम्बूद्वीपपण्णत्ति ग्रंथ रचनाका स्थान वारानगर बताया है। जिसका राजा नरोत्तमशक्ति भूपाल जो सम्यग्दृष्टि व कलाओंमें कुशल व दानशील था। यह नगर जिनभवनोंसे विभूषित, सम्यग्दृष्टियों, मुनिजनोंसे मण्ड़ित (अर्थात् मुनिपुंगव वहाँ आते-जाते रहते थे) व अत्यंत रमणीय था।

'जम्बूद्वीपपण्णत्ति', 'प्राकृतपंचसंग्रहवृत्ति' व 'धम्मपसायण' नामक ग्रंथकी रचनाएँ आपने की थी, ऐसा इतिहासकारोंका मानना हैं।

आप करीब ई.स. ९७७से १०४३के आचार्य थे। ऐसा विद्वानोंका मानना है।

'जम्बूद्वीपपण्णत्ति' ग्रंथके रचयिता आचार्य पद्मनंदिनाथ (प्रथम)को कोटि कोटि वंदन।

भगवान आचार्यदेव
श्री नेमिचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्तीदेव

ई.स. ८१६के आसपास आचार्यदेव वीरसेनस्वामी व जिनसेनस्वामी द्वारा आत्मार्थीयोंको धवला व जयधवला शास्त्र प्राप्त हुए थे। तबसे सिद्धान्ताभ्यासी आत्मार्थी जीव उन ग्रंथोंको ही जीवनाधार बनाकर अपना साधनामय जीवन रचते थे।

शनैः शनैः जीवोंके क्षयोपशममें मंदता आ जानेसे उसके बाद करीब २०० वर्ष अन्तर्गत तो ये ग्रंथ मुश्किलसे समझमें आने लगे। तब आत्मार्थी सिद्धान्ताभ्यासीको सरल सिद्धान्तग्रंथकी जरूरत महसूस हुई। जिन्होंने अनेक युद्ध अपने राजाको जिताये थे,—ऐसे गंगनरेश रायमल्लदेवके प्रधानमन्त्री, प्रधान सचिव (सेक्रेटरी) व मुख्य सेनापति—चामुण्डरायजी अपने गुरु श्री नेमिचन्द्र सिद्धान्त चक्रवर्तीसे पूछे प्रश्न पर आत्मार्थी जीवोंको सरलतया समझमें आ सके, ऐसे सिद्धान्तग्रन्थ प्रकाशमें आये।

कहा जाता है, कि एक समय आचार्य श्री नेमिचन्द्र सिद्धान्त चक्रवर्तीजी धवला शास्त्रका स्वाध्याय कर रहे थे; उस समय चामुण्डरायजी भी वहाँ दर्शनार्थ आये। आचार्यदेवका सहज ध्यान प्रधानमंत्रीकी ओर गया। प्रधानमंत्री नमस्कार कर, तीन प्रदक्षिणा दे, वहीं बैठ गये और प्रभुसे कहने लगे।

चामुण्डराय : प्रभु! हमें भी कुछ आत्महितका बोध दीजिये।

आचार्यदेवने : १४ गुणस्थान, १४ मार्गणास्थान आदि द्वारा संक्षिप्रमें जीवका स्वरूप व उससे मुक्त होनेका स्वरूप बताया।

चामुण्डराय : भगवान्! हमें निरन्तर इस बातका स्मरण रहे, अतः क्या करना चाहिए?

आचार्यदेवने (करुणासे) : देव-शास्त्र-गुरुकी आराधना व (धवलाजीकी ओर इशारा करते हुए) इसका स्वाध्याय करना चाहिए।

चामुण्डराय : प्रभु! यह तो बहुत ही कठिन है, इसका संक्षिप्र जैसा आपने

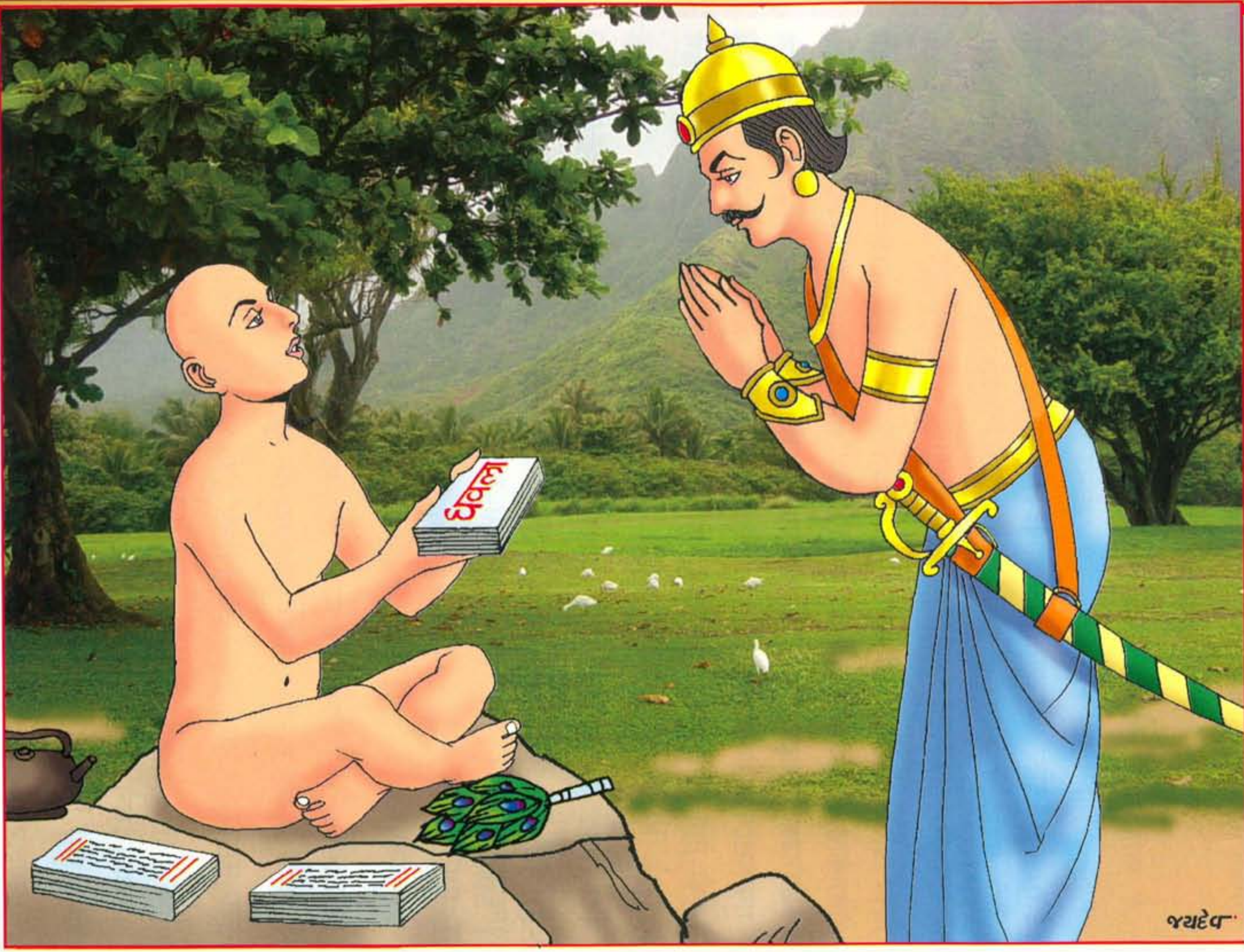

प्रधानमंत्री चामुण्डरायको धवला शास्त्र पढ़नेकी सलाह देते आचार्य श्री नेमिचन्द्रजी

अभी समझाया वैसा लेखनरूप हो तो....हमें लाभदायी हो। कृपा करके ऐसे सरल ग्रंथकी रचना करनेकी विनती स्वीकार कीजिये।

ऐसी आत्मार्थकी भावना देखकर प्रभुने जीवों पर कृपा बरसाकर गोम्मटसारादि ग्रंथ लिखे। जिसमें धवलाजी आदिको संक्षिप्तमें और सरलतासे समा दिये व गागरमें सागर भर दिया। ऐसा अपूर्व कार्य, भव्योंके भाग्यसे, विधिकी कोई अपूर्व पलमें प्रभुकृपासे प्राप्त हो गया।

आत्मार्थीयोंका महाभाग्य था, कि ऐसे महान ग्रन्थोंकी रचना ऐसे गुरु द्वारा हुई जो कि—

जह चक्केण य चक्की छक्खंडं सहियं अविग्घेण।
तह मइचक्केण मया छक्खडं साहियं सम्मं।। गो. क.कां. ३९७।।

जिस प्रकार चक्रवर्ती अपने चक्ररत्नसे भरतके छखंडोंको बिना किसी विघ्नके साधते हैं, वैसे ही मैंने (नेमिचन्द्रने) अपने क्षयोपशमरूपी चक्रसे षट्खण्डागमरूप सिद्धान्तग्रंथके षट् खंडोंको सम्यक्रीतिसे साधा है।

इस भांति आपने षट्खण्डागम कहो या धवलाजी कहो; सभीको सुव्यवस्थित अवगत व भावभासन करके गोम्मटसारादि ग्रंथोंमें संक्षिप्तसे भर दिया है, फिर भी धवलाजी जितने वे दुरुह नहीं हुए; यह आपके लेखनीकी उत्कृष्टता है।

आचार्य अभयनन्दिजी आपके दीक्षागुरु थे व आचार्य वीरनन्दि, इन्द्रनन्दि आपके सहाध्यायी थे या ज्येष्ठ गुरुभाई होंगे–अतः आपने उन्हें अपने गुरुके रूपमें विनयपूर्वक स्मरण किया है। आपने आचार्य कनकनंदिजीसे 'सत्त्वज्ञान' प्राप्त किया; आचार्यदेव कनकनन्दिजीकी आप पर इतनी असीम कृपा थी, कि आपके गोम्मटसार ग्रंथके लिए स्वयंने 'सत्त्वस्थान भंग प्ररूपणा' अधिकार गा. ३५८ से ३९७ तुरंत लिख दी।

प्रसिद्धकथा अनुसार गंगनरेशके मंत्री व सेनापति चामुण्डरायकी जिनभक्त माता काललदेवीने पुराणका श्रवण करते समय भरत और बाहुबलीकी कथाके प्रसंगमें यह सुना, कि चक्रवर्ती भरतने अपने परम तपस्वी, लघु भ्राताकी पोदनपुरमें ५२५ धनुष ऊँची एक मूर्ति बनवाई थी, किन्तु कालके प्रभावसे अब उसके आसपास कुक्कुट सर्पोंका वास हो गया है और परम शान्तिदायक इस मूर्तिके दर्शन अब दुर्लभ हो गए हैं। यह सुन काललदेवीने प्रतिज्ञा की, कि वे तब तक दूध ग्रहण नहीं करेंगी; जब तक वे इस मूर्तिका दर्शन न कर लें। मातृभक्त चामुण्डरायको अपनी पत्नी अजितादेवीसे यह बात मालूम हुई तो वे अपनी माता की इच्छाकी पूर्तिके लिए उद्यत हुए। सेनापति और मन्त्री तो वे थे ही,

आचार्य नेमिचन्द्रजी सिद्धान्तचक्रवर्तीके सान्निध्यमें प्रधानमंत्री चामुण्डराय द्वारा निर्मापित श्री बाहुबली मुनीन्द्रकी प्रतिमा

कुछ सैनिकोंको साथ लेकर रथारूढ़ हो वे पोदनपुरकी खोजमें निकल पड़े। चलते-चलते वे श्रवणबेलगोल आए। वहाँ उन्होंने चन्द्रगिरि पर भद्रबाहुस्वामीके चरणोंकी बन्दना की और वहाँ पर पार्श्वनाथ भगवानके दर्शन किए। वहाँ उस युगके महान् आचार्य नेमिचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्ती भी थे।

चामुण्डरायके दलने रात्रि-विश्रामके लिए श्रवणबेलगोलमें पड़ाव डाला। रात्रिमें चामुण्डरायको स्वप्नमें बाईसवें तीर्थंकर नेमिनाथके अत्यंत भक्त देवने कहा, ''पोदनपुर बहुत दूर है। वहाँ बाहुबलीकी मूर्ति कुक्कुट सर्पोंसे घिर गई है, उसके दर्शन दुर्लभ हो गए हैं। वहाँकी तुम्हारी यात्रा कठिन है। अतः प्रातःकाल स्नानादि शुद्धिपूर्वक सामनेकी पहाड़ी पर सोनेका एक तीर चलाओ। जहाँ तीर गिरेगा वहीं बाहुबली प्रकट होकर तुम्हें दर्शन देंगे।'' इसी प्रकारका स्वप्न उनकी माता और आचार्य नेमिचन्द्रको भी आया। स्वप्नके आदेशानुसार और आचार्यके परामर्शके अनुसार चामुण्डरायने वैसा ही करनेका निश्चय किया। जब उन्होंने सोनेका तीर छोड़ा तो आश्चर्य! बाहुबलीकी स्थूल रूपरेखा प्रकट हो गई।

तत्पश्चात् चामुण्ड़रायने विपुलराशि द्वारा उस रूपरेखानुसार मुनिन्द्र भगवंत बाहुबलीकी मूर्ति तैयार कराई। उसकी प्रतिष्ठा १३-३-९८१ आचार्यदेव नेमिचन्द्र सिद्धान्त चक्रवर्तीके सानिध्यमें कराई गई। वह ही आजकी जगत्प्रसिद्ध दक्षिण भारतकी मुनिन्द्र भगवंत बाहुबली की मूर्ति है। (उसके हूबहू उससे कुछ छोटी पश्चिम भारतके सुवर्णपुरीमें विराजमान होगी जिससे सुवर्णपुरी एक पश्चिम भारतका दक्षिणभारत जैसा तीर्थ बनेगा।)

गुजरात राज्यके भावनगर जिलेमें स्थित अध्यात्मतीर्थ सोनगढ़(स्वर्णपुरी)में निर्माणाधीन जम्बूद्वीप-बाहुबली जिनायनके बाहुबली मुनिन्द्र भगवंत

आपके समयमें जिनधर्मके मंदिरोंके निर्माण द्वारा महत्ती प्रभावना हुई, जिससे आपका समय 'दिगम्बर जिनमंदिर निर्माण युग'के रूपमें प्रसिद्ध हो गया।

जैसे बताया गया है, कि आपने गोम्मटसार ग्रंथ अपने शिष्य चामुण्डरायके प्रश्नोंके उत्तररूप बनाया था क्योंकि चामुण्डरायका दूसरा नाम 'गोम्मट' होनेसे उस ग्रंथका नाम 'गोम्मटसार' (गोम्मट अर्थात् चामुण्डरायके प्रश्नके उत्तरका सार') है।

आपके कई अनन्य शिष्य थे। जिसमें चामुण्डराय, माधवचन्द्र त्रिवैध आदि प्रमुख थे। गोम्मटसारादि ग्रंथका अभिसूचक दूसरा नाम 'पंचसंग्रह; भी है, क्योंकि सिद्धान्तशास्त्रोंमें प्रतिपादित किये जानेवाले पाँचों विषयोंका संक्षिप्तमें यह संग्रहरूप ग्रंथ है।

आप कोई साधारण विद्वान नहीं थे, क्योंकि आपके गोम्मटसार, त्रिलोकसार, लब्धिसार, क्षपणासार आदि उपलब्ध ग्रंथ आपकी असाधारण विद्वत्ता और 'सिद्धान्तचक्रवर्ती' पदवीके गौरव'को प्रसिद्ध करते हैं।

यद्यपि आपके उपलब्ध ग्रंथोंमें गणितकी प्रचुरता देखकर गणितज्ञ विद्वान तक भी दंग रह जाते हैं व मानने लग जाते हैं, कि आपको गणितकी कोई अपूर्व लब्धि थी, परंतु इसमें कोई सन्देह नहीं, कि आप को गणित तो क्या सिद्धान्तोंकी भी सर्वांगी लब्धि थी।

'तत्त्वार्थसूत्र' ग्रंथकी भांति आपके ग्रंथो पर पाई जानेवाली अनेक टीकाएँ सूचित करती हैं, कि यद्यपि आपकी भाषा सरल है, फिर भी विषयकी गहन व गंभीरता सह है, तभी विविध आचार्योंने उन पर विविध टीकाएँ रची हैं। इस ग्रंथ पर पंडितप्रवर टोडरमलजी रचित 'सम्यग्ज्ञान चंद्रिका' नामकी टीका भी अत्यंत प्रसिद्ध है।

आपके ग्रंथोंमें पाई जानेवाली कई गाथाएँ आपसे भी प्राचीन ग्रंथोंमें मिलती हैं, इससे स्पष्ट है, कि आपके ग्रंथ प्राचीन आगमग्रंथोंकी परम्परा–श्रेणीरूप महा ग्रंथ हैं।

आपके (१) गोम्मटसार (जीवकाण्ड़ व कर्मकाण्ड़), (२) लब्धिसार, (३) क्षपणासार, (४) त्रिलोकसार ग्रंथ वर्तमानमें उपलब्ध हैं।

इतिहासकारोंनुसार आप करीव ई.स. ९८१के आचार्यवर थे।

आपके ज्ञानप्रधान ग्रंथ गोम्मटसार, लब्धिसार, क्षपणासारादि ग्रंथों द्वारा २०वीं सदीके पूज्य गुरुदेव श्री कानजीस्वामी अपनी दृष्टिप्रधान परिणतिको विशेष-विशेष उजागर करते थे इतना ही नहीं उससे वे मुमुक्षु समाजको भी यत्किंचित् लाभान्वित करते थे। यह सब आचार्य भगवंत आपकी ही कृपाका फल है।

महान गणितज्ञ, 'गोम्मटसार' आदि ग्रंथोंके रचयिता आचार्य श्री नेमिचन्द्रसिद्धान्तचक्रवर्तीदेवको कोटि कोटि वंदन।

भगवान आचार्यदेव

श्री जयसेन (षष्ठम्)

ध्यानस्थ आचार्य जयसेनजी (षष्ठम्)

श्री दिगम्बर जिनधर्ममें भगवान 'आचार्य जयसेन' नामक कई आचार्य हुए हैं। आचार्य जयसेन (षष्ठम्) आचार्य भावसेनके शिष्य थे; व आप ब्रह्मसेनके गुरु थे। आप लाडवागढ़ संघके आचार्य थे, क्योंकि आचार्य वीरसेनजीके गुरु आचार्य आर्यनन्दिका समय ई.स. ७७०-८२७ माना जाता है व आप उनके पश्चात्‌के आचार्य हैं। कहीं-कहीं ऐसा भी आता है, कि आप आचार्य धर्मसेनके शिष्य शान्तिषेण, आचार्य शान्तिषेणके शिष्य गोपसेन उनके शिष्य आचार्य भावसेन तथा उनके शिष्य ये आचार्य जयसेनजी हुए हैं। आपने अपने वंशको योगीन्द्रवंश कहा है।

आचार्य अमृतचन्द्रदेवका पुरुषार्थसिद्धिउपाय व आचार्य सोमदेवजीका उपासकाध्ययनका आपने, अपने ग्रंथमें भरपूर उपयोग किया है। आपके ग्रंथमें, आचार्य रामसेन कृत 'तत्त्वानुशासन'का भी एक श्लोक आया है। आपने 'धर्मरत्नाकर'की रचना ई.सन् ९९८में की थी। इससे प्रतीत होता है, कि आप आचार्य रामसेनके सम-समयवर्ती रहे होंगे।

यह रचना 'तत्त्वज्ञान'से भरपूर है, जैसा इस रचनाका नाम है, उसी भांति इसमें 'धर्मके रत्नोंका समुद्र' ही न हो–ऐसा प्रतीत होता है।

आपका ग्रंथ धर्मरत्नाकर ई.स. ९९८में हुआ होनेसे व आचार्य रामसेनजीके सम-समयवर्ती होनेसे आप ईसुकी १०वीं-११वीं शताब्दीके आचार्य होंगे।

आचार्य श्री जयसेनजी (षष्ठम्)को कोटि कोटि वंदन।

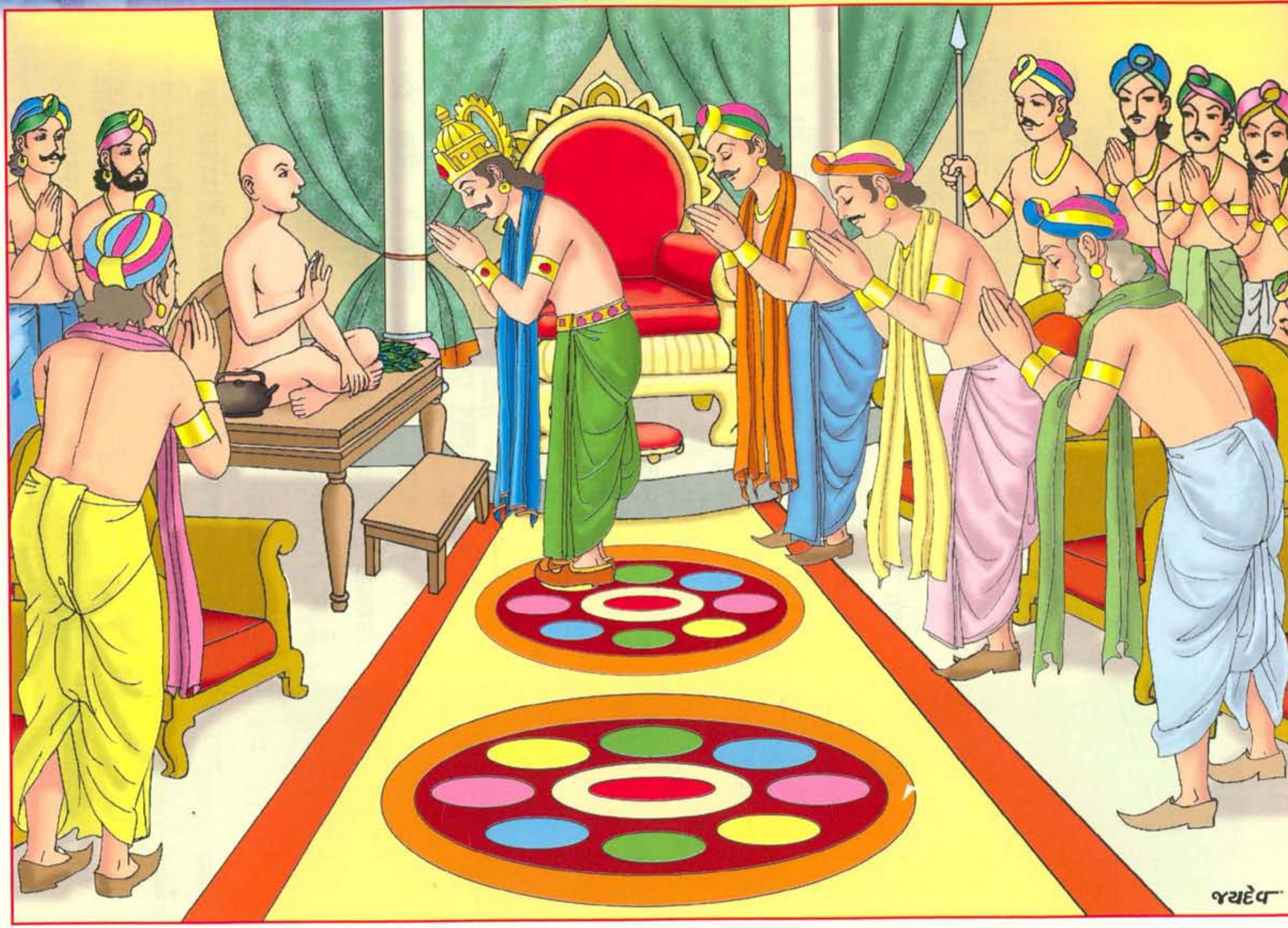

राजा मुञ्जकी सभामें 'वाक्‌पतिराज'की उपाधिसे अलंकृत आचार्य अमितगति(द्वितीय)

भगवान आचार्यदेव

श्री अमितगति (द्वितीय)

आप आचार्य अमितगति (प्रथम)के शिष्य परम्पराकी द्वितीय पीढ़ीमें हुए आचार्य अमितगति (द्वितीय) हैं। एक महान सरस्वतीके भण्डारसमा आपने अपने मौलिक ग्रंथों द्वारा जिनधर्मको अक्षुण्ण बनाए रखा। आप माथुरसंघी होने पर भी जैनाभासी माथुरसंघकी परिपाटीके नहीं थे।

आपने अपनी गुरु-परम्परा निम्नानुसार बताई है।

आचार्य वीरसेन ⟶ आचार्य देवसेन ⟶ आचार्य अमितगति (प्रथम) ⟶ आचार्य नेमिषेण ⟶ आ. माधवसेन ⟶ आ. अमितगति (द्वितीय)की भूरि-भूरि प्रशंसा अपने ग्रंथमें की है–इस परसे ज्ञात होता है, कि आपको गुरुके प्रति भक्ति–समर्पणभाव अद्‌भुत था।

आप राजा मुञ्जकी सभाके 'वाचस्पतिराज' उपाधिसे अलंकृत एक रत्नके रूपमें स्वीकार किए गए थे। आप बहुश्रुत विद्वान थे। काव्य, न्याय, व्याकरण, आचारप्रभृति अध्यात्म आदि अनेक विषयों पर आपका प्रभुत्व था।

आपने अपने पञ्चसंग्रह ग्रंथकी रचना 'धार'से सातकोस दूर 'मसीदकिलौदा' अपरनाम 'मसूतिकापुर' गाँवमें की थी। आपकी निम्न रचनाएँ प्रसिद्ध हैं।

(१) सुभाषितरत्नसंदोह, (२) धर्मपरीक्षा, (३) उपासकाचार, (४) पञ्चसंग्रह, (५) आराधना, (६) भावनाद्वाविंशतिका, (७) चन्द्र–प्रज्ञप्ति, (८) सार्द्धद्वयद्वीप–प्रज्ञप्ति, (९) व्याख्या प्रज्ञप्ति, (१०) उसके अलावा लघु एवं बृहत् सामायिक पाठ, अमितगति–श्रावकाचार आदि भी आपके ही रचित माने जाते हैं।

आपका समय राजा मुञ्चका काल होनेसे, आप ई.स. ९८३–१०२३का प्रतीत होता है।

'सामायिक पाठ'के रचयिता आचार्य अमितगति (द्वितीय)को कोटि कोटि वंदन।

भगवान आचार्यदेव

श्री माणिक्यनन्दिजी

न्यायविषयक ग्रन्थ रचयिता आचार्योंमें आचार्य माणिक्यनंदिजीका अनुपम स्थान है। आप 'माणिक्यचन्द्रजी त्रिवैद्य' व 'महापण्डित माणिकचन्दजी'के नामसे भी प्रसिद्ध हैं। आप जैन न्यायके महापण्डित थे। आप नन्दिसंघके प्रमुख आचार्योंमें गिने जाते हैं। आपका प्रमुख स्थान धारानगरीके आसपासके जंगलोंमें गिना जाता है।

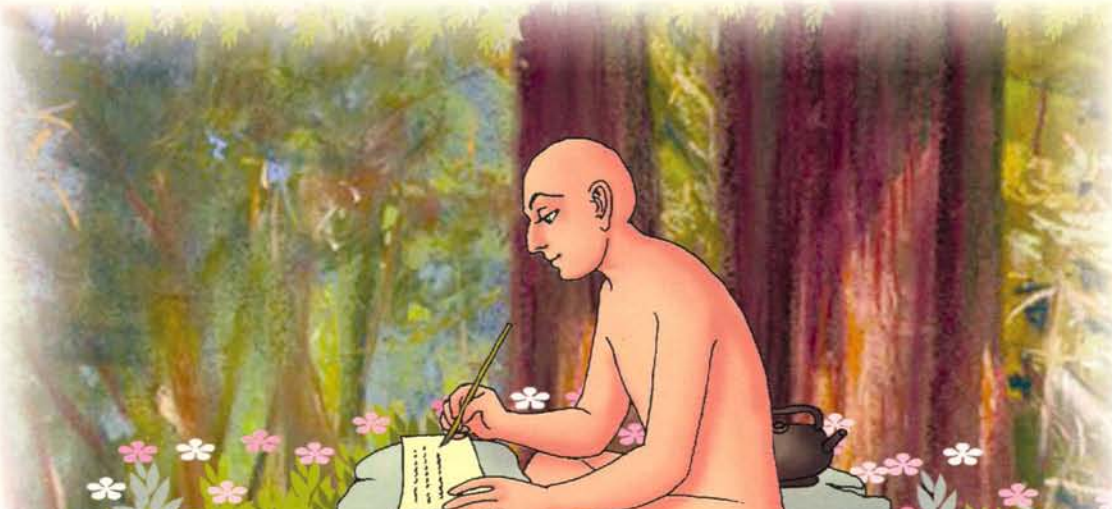

'परीक्षामुख'की रचना करते आचार्यदेव माणिक्यनन्दिजी

आपके गुरुका नाम रामनन्दी था व शिष्यका नाम नयननन्दि था। आपके पादकमलमें ही, आचार्य प्रभाचन्द्रजीने 'प्रमेयकमलमार्तण्ड' रचा था–ऐसा इतिहासकारोंका मानना है। शिलालेखमें आपको 'जिनराज', न्यायदीपिकामें आपको 'भगवान' व प्रमेयकमलमार्तण्ड़में आपको 'गुरु'विशेषणसे सम्बोधित किया है।

आप अपने विषयके इतने मर्मज्ञ थे; कि उस विषयको समझानेमें आप अत्यंत पटु प्रतीत होते हैं। जिससे आपने अपना विषय तत्त्वार्थसूत्रकी भांति अत्यंत परिमार्जित संस्कृत सूत्रोंमें किया है। आपने आचार्य अकलंकदेवके ग्रंथरूपी समुद्रका मंथन करके, उसके फलस्वरूप 'परीक्षामुख'रूप न्यायशास्त्ररूपी अमृत भव्य जीवोंके पुण्य प्रतापसे रचा है।

आपने एक मात्र 'परीक्षामुख' ग्रंथकी रचना की है। इस 'परीक्षामुख' ग्रंथमें आपके असाधारण वैदुष्य व न्याय विशेषज्ञताका परिचय होता है। इस ग्रंथमेंसे ऐसा भी प्रतीत होता है, कि आप जिनशासनके ग्रन्थोंके मर्मज्ञ तो थे ही, साथमें आप चार्वाक, बौद्ध, योग (न्याय, वैशेषिक), प्रभाकर, जैमिनीय और मीमांसक आदिके सिद्धान्तोंके भी पूर्ण ज्ञाता थे। अतः कहा जाता है, कि जिस प्रकार रत्नोंमें बहुमूल्य 'माणिक्य' होता है, उसी भांति आपके 'परीक्षामुख' सूत्र माणिक्य-रत्न-राशिके समान हैं। जैसे नीतिवाक्यमें कहा है, कि 'शैले शैले न माणिक्यम्, मौक्तिकम् न गजे गजे' अनुसार ही आपके परीक्षामुखके बारेमें पाया जाता है।

आपने अपनी रचनाका नाम 'परीक्षामुख' रखा है; वह सार्थक ही है, क्योंकि— 'विरुद्ध नाना युक्तियोंकी प्रबलता व दुर्बलता अवधारण करनेके लिए प्रवर्तमान विचार, वह परीक्षा है'—इस लक्षणानुसार आपने अपने ग्रंथमें प्रमाण व प्रमाणाभासोंकी सही परीक्षा की है; तथा 'मुख'का अर्थ प्रवेशद्वार है—उसी भांति यह ग्रंथ न्याय जैसे विषयमें प्रवेश करनेके लिए 'प्रवेशद्वार' समा है—अतः प्रतीत होता है कि आपने इस ग्रंथका संपूर्णतया सार्थक नाम रखा है।

आपके इस ग्रंथकी टीका आचार्य प्रभाचन्द्रजी कृत 'प्रमेयकमलमार्तण्ड' व आचार्य लघु अनन्तवीर्यजी कृत 'प्रमेयरत्नमाला' प्रमुख है।

आपका समय ई.स. १००३ से १०२८ प्रतीत होता है।

'परीक्षामुख' ग्रंथके रचयिता आचार्य श्री माणिक्यनंदि भगवंतको कोटि कोटि वंदन।

भगवान आचार्यदेव

श्री शुभचन्द्रदेव

एक ओर 'परम अध्यात्म तरंगिणी' ग्रंथके रचनाकार, श्री शुभचन्द्राचार्यदेवने आचार्य अमृतचन्द्रसूरिके अध्यात्मग्रंथ समयसारकलशकी टीका रचकर रत्नोंसे मढ़ दिया, तथा दूसरी ओर प्रचुर वैराग्यसे तर-बतर ज्ञानार्णव रचकर अपने भाई भर्तृहरिको ऐसा वैराग्यवंत बना दिया, कि जिससे वे भगवती जिनदीक्षा धारण कर वैदिकधर्मके बाह्य क्रियाकांड छोड़ आत्माके ज्ञान-ध्यानमें जुट गये।

आप किस संघ या गण, गच्छके थे या आपकी गुरु परम्परा क्या थी उसकी कोई भी जानकारी प्राप्त नहीं होती है। शुभचन्द्र तथा भर्तृहरि मालवानरेश अर्थात् उज्जयिनीके राजा सिन्धुराजके पुत्र थे।

एक प्रसिद्ध कथानुसार महाराजा सिंहको बहुत समय तक सन्तान न हुई, जिससे वह चिन्तित रहने लगा। एक दिन मन्त्रीने राजाकी चिन्ताको अवगत कर उसे धर्माराधन करनेका परामर्श दिया। राजा सावधान होकर धर्मकृत्योंको सम्पन्न करने लगा।

एक दिन राजा व रानी अपने मन्त्रियोंके साथ वनक्रीड़ाके लिए गये और वहाँ मूञ्जके खेतमें पड़े हुए एक बालकको पाया। उस बालकको देखते ही राजाके हृदयमें प्रेमका संचार हुआ और उसने उसे उठा लिया तथा लाकर रानीको दे दिया। रानी उस पुत्रको गोदमें बिठाकर अत्यधिक प्रसन्न हुई। मन्त्रीने राजासे निवेदन किया, कि नगरमें चलकर रानीको गूढ़गर्भवती घोषित किया जाये और पुत्रोत्सव मनाया जाये। मन्त्रीके परामर्शके अनुसार राजाने पुत्रोत्सव सम्पन्न किया। राजा सिंहने उस पुत्रका नाम मुञ्ज रखा। मुञ्जने वयस्क होकर थोड़े ही दिनोंमें सकल शास्त्र और कलाओंका अध्ययन कर लिया। तदन्तर महाराजने रत्नावती नामक कन्याके साथ उसका विवाह कर दिया।

कुछ दिनोंके अनन्तर महाराज सिंहकी रानीने गर्भ धारण किया और दसवें महीनेमें एक पुत्रको जन्म दिया, जिसका नाम सिंहल (सिन्धुराज) रखा गया। इस पुत्रका भी जन्मोत्सव सम्पन्न किया गया तथा वयस्क होनेपर मृगावती नामक राजकन्यासे विवाह कर

दिया गया। मृगावती कुछ दिनोंमें गर्भवती हुई। शुभ मुहूर्तमें उसने दो पुत्रोंको जन्म दिया, जिनमें ज्येष्ठका नाम शुभचन्द्र और कनिष्ठका नाम भर्तृहरि रखा गया।

बचपनसे ही इन बालकोंका चित्त तत्त्वज्ञानकी ओर विशेषरूपसे आकृष्ट था। अतएव वय प्राप्त होने पर तत्त्वज्ञानमें अच्छी योग्यता प्राप्त कर ली। एक दिन मेघोंके पटलको परिवर्तित होते हुए देखकर राजा सिंहको वैराग्य हो गया और उसने मुञ्ज और सिंहलको राजनीति सम्बन्धी शिक्षा देकर जिनदीक्षा ग्रहण कर ली। राजा मुञ्ज अपने भाईके साथ सुखपूर्वक राज्य करने लगा।

एक दिन मुञ्ज वनक्रीड़ासे लौट रहा था, कि उसने मार्गमें एक तेलीको कन्धे पर कुदाल रक्खे खड़े देखा, उसे गर्वोन्मत्त देखकर मुञ्जने पूछा–इस तरह क्यों खड़े हो? उसने कहा कि, मैंने एक अपूर्व विद्या सिद्ध की है, जिसके प्रभावसे मुझमें इतनी शक्ति है, कि मुझे कोई परास्त नहीं कर सकता। यदि आपको विश्वास न हो, तो अपने किसी सामन्तको मेरे इस लौहदण्डको उखाड़नेका आदेश दीजिए। इतना कहकर लौहदण्डको भूमिमें गाड़ दिया। संकेत पाते ही सभी सामन्त उस लौहदण्डको उखाड़नेमें प्रवृत्त हुए, पर किसीसे भी न उखड़ सका। सामन्तोंकी इस असमर्थताको देखकर, शुभचन्द्र और भर्तृहरिने मुञ्जसे निवेदन किया, कि यदि आदेश हो तो हम दोनों इस लौहदण्ड़को उखाड़ सकते हैं। मुञ्जने उन दोनों बालकोंको समझाया, पर जब अधिक आग्रह देखा तो उसने लौहदण्ड उखाड़नेका आदेश दे दिया। उन दोनोंने बालोंकी चोटीका फन्दा लगाकर देखते-देखते एकही झटकेमें लौहदण्डको निकाल फैंका। चारों ओरसे धन्य-धन्यकी ध्वनि गूँज ऊठी। तेली निर्मद होकर अपने घर चला गया।

बालकोंके इस अपूर्व बलको देखकर मुञ्ज आश्चर्यचकित हो गया और वह सोचने लगा, कि ये बालक अपूर्व शक्तिशाली हैं और जब ये बड़े हो जायेंगे तो किसी भी क्षण मुझे राज-सिंहासनसे च्युत कर देंगे। अतएव इनको किसी उपायसे मृत्युके मुखमें पहुँचा देना ही राजनीतिज्ञता है। उसने मन्त्रीको बुलाकर अपने विचार प्रकट किए और कहा, कि शीघ्र ही उन दोनोंका वध हो जाना चाहिए। मन्त्रीने राजाको पूर्णतया समझानेका प्रयास किया, पर मुँजको मन्त्रीकी बातें अच्छी नहीं लगी। फलतः मन्त्री राजाज्ञा स्वीकार कर चला गया।

मन्त्रीने एकान्तमें बैठकर उहापोह किया और अन्तमें वह निष्कर्ष पर पहुँचा, कि कुमारोंको इस समाचारसे अवगत करा देना चाहिए, अन्यथा बड़ा भारी अनर्थ हो जायगा। उसने शुभचन्द्र और भर्तृहरिको एकान्तमें बुलाया और राजाके निन्द्य विचार कह सुनाये।

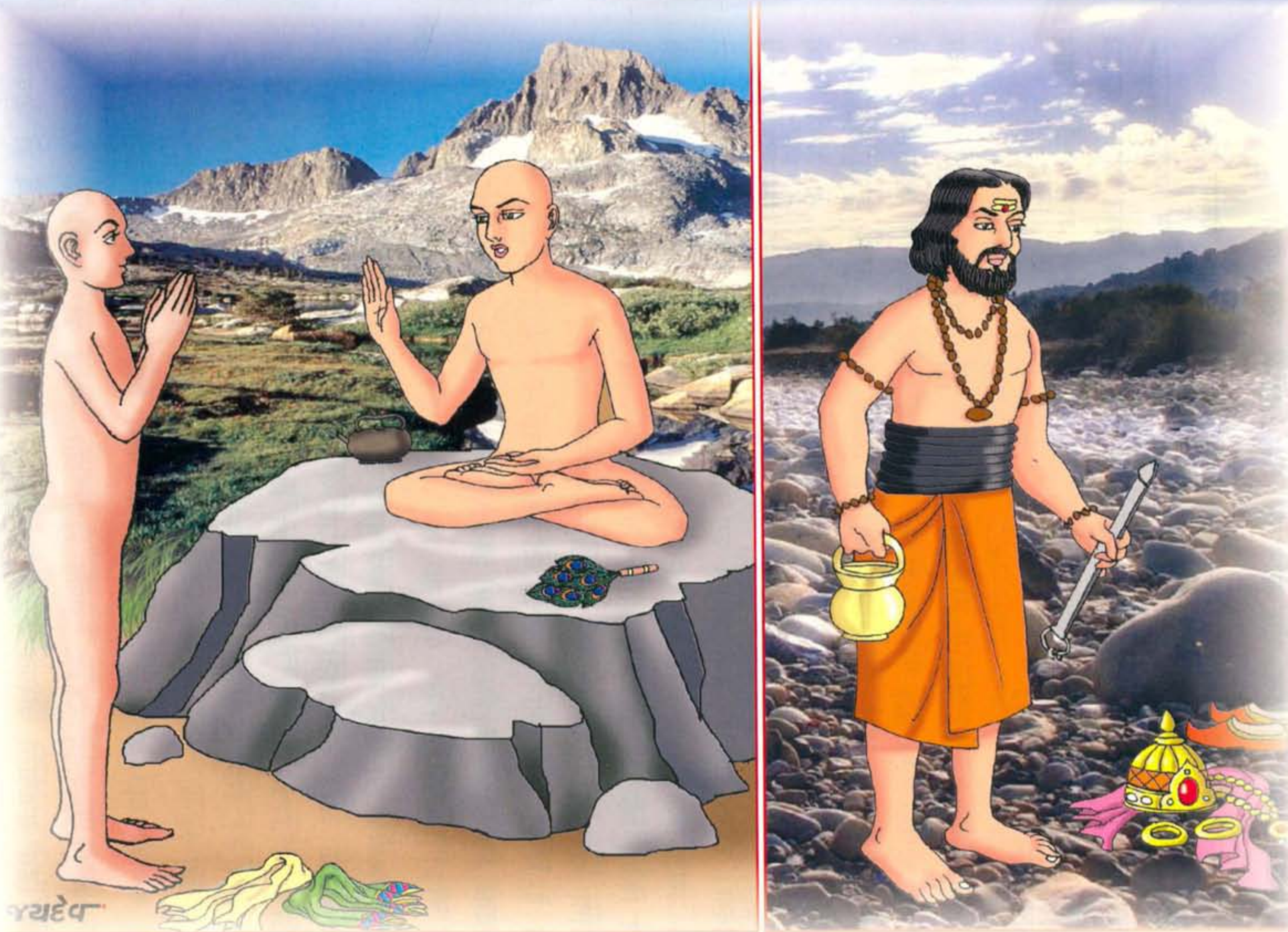

आचार्य शुभचन्द्रजी द्वारा उनके गुरुसे दीक्षा ग्रहण व भर्तृहरिका किसी तापसका शिष्य बनना

साथ ही यह भी कहा, कि आप लोग उज्ञयिनी नगरी छोड़कर चले जाइये, अन्यथा प्राणरक्षा नहीं हो सकेगी।

राजकुमार अपने पिता सिंहलके पास गये और राजा मुञ्जकी गुप्त मन्त्रणा प्रकट कर दी। सिंहलको मुञ्जकी नीचता पर बड़ा क्रोध आया और उसने पुत्रोंसे कहा, मुञ्ज द्वारा षड्यंत्र पूरा करनेसे पहले तुम उसे यमराजके यहाँ पहुँचा दो। कुमारोंने बहुत विचार किया और वे संसारसे विरक्त हो वनकी ओर चल पड़े।

महामति शुभचन्द्रने किसी वनमें जाकर मुनिराजके समक्ष दिगम्बरी दीक्षा धारण कर ली और तेरह प्रकारके चारित्रका पालन करते हुए घोर तपश्चरण करने लगे; पर भर्तृहरि एक कौल तपस्वीके निकट जाकर उसकी सेवामें संलग्न हो गया। उसने जटाएँ बढ़ा ली, कमंडलु, चिमटा लेकर, कन्दमूल भक्षण द्वारा उदरपोषण करने लगा। बारह वर्ष तक भर्तृहरिने अनेक विद्याओंकी साधना की। उसने योगों द्वारा शतविद्या और रसतुम्बी प्राप्त की। उस रसके संसर्गसे तांबा सुवर्ण हो जाता था। भर्तृहरिने स्वतंत्र स्थानमें रसतुम्बीके प्रभावसे अपना महत्त्व प्रकट किया।

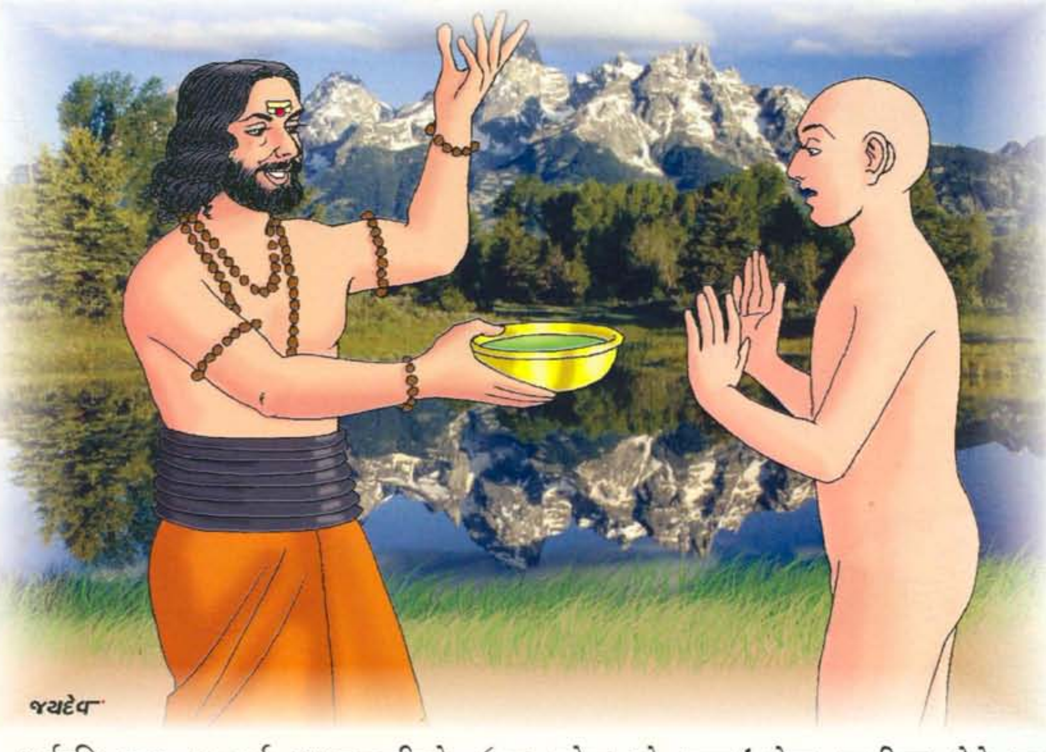

भर्तृहरि द्वारा आचार्य शुभचन्द्रजीको 'ताम्र सोना हो जाय' ऐसा तुम्बीरस देते हुए

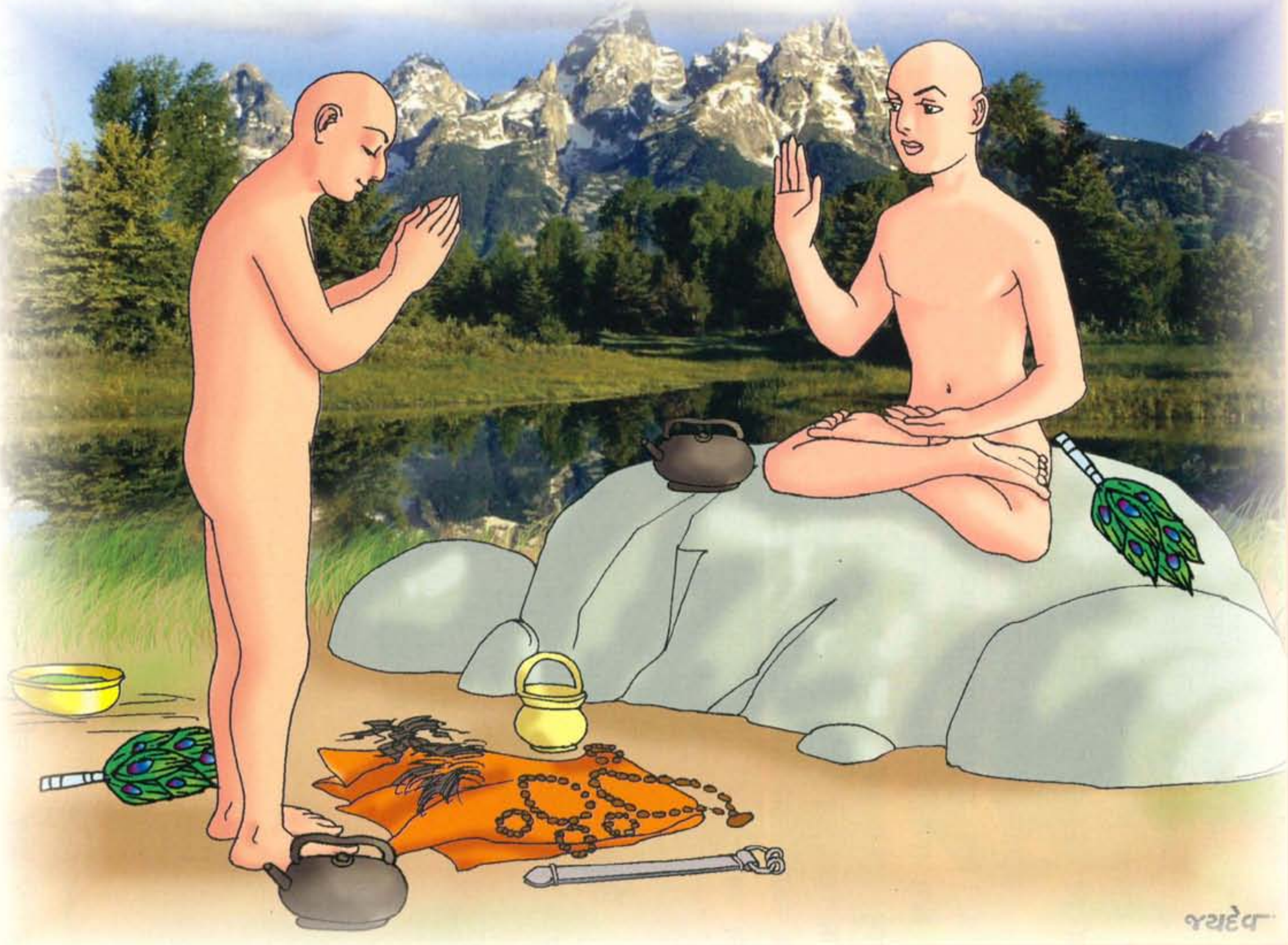

भर्तृहरिको भगवती जिनदीक्षा देते हुए आचार्य शुभचन्द्रजी

एक दिन भर्तृहरिको चिन्ता हुई, कि उसका भाई शुभचन्द्र किस स्थितिमें है? अतः उसने अपने एक शिष्यको उसका समाचार जाननेके लिए भेजा। शिष्य जंगलोंमें घूमता हुआ उस स्थान पर आया, जहाँ आ.शुभचन्द्र तपश्चर्या कर रहे थे। उसने देखा, कि उनके शरीर पर अंगुल भर भी वस्त्र नहीं है। कमण्डलु और पीछीके अतिरिक्त अन्य कुछ भी परिग्रह नहीं है। शिष्य दो दिन निवास कर वहाँसे लौट आया और भर्तृहरिको समस्त समाचार आकर सुनाया। भर्तृहरिने अपनी तुंबीका आधा रस दूसरी तुंबीमें निकालकर शिष्यको दिया और कहा, कि इसे ले जाकर शुभचन्द्रको दे आओ, जिससे उसकी दरिद्रता दूर हो जाय और सुखपूर्वक अपना जीवन यापन करे। जब शिष्य रसतुंबी लेकर मुनिराजके समक्ष पहुँचा, तो उन्होंने उसे पत्थरकी शिला पर डाल दिया।

शिष्यने वापस लौटकर भर्तृहरिको रसतुंबीकी घटना सुनायी, फिर भी वे स्वयं भाईकी ममतावश शेष रसतुंबीको लेकर आ.शुभचन्द्रके निकट आये। शुभचन्द्रने शेष रसको भी पाषाणशिला पर डाल दिया, जिससे भर्तृहरिको बहुत दुःख हुआ। आचार्य शुभचन्द्रने भर्तृहरिको समझाते हुए कहा—भाई, यदि सोना बनाना अभिष्ट था, तो घर क्यों छोड़ा? घरमें क्या सोना-चाँदी, मणि-माणिक्यकी कमी थी? इन वस्तुओंकी प्राप्ति तो गृहस्थीमें सुलभ थी। अतः सांसारिक वस्तुओंकी प्राप्तिके लिए इतना प्रयास करना व्यर्थ है।

आ. शुभचन्द्रके उपदेशसे भर्तृहरि भी दीक्षित हो गया। भर्तृहरिको मुनिमार्गमें दृढ़ करने और सच्चे योगका ज्ञान करानेके लिए आचार्य शुभचन्द्रने 'योगप्रदीप' तथा 'ज्ञानार्णव'की रचना की।

आपने अपने ग्रंथमें आचार्य समन्तभद्रजी, पूज्यपादस्वामी, आचार्य अकलंकस्वामी, आचार्य जिनसेन स्वामी, आचार्य सोमचन्द्रदेव, आचार्य अमृतचन्द्रसूरि आदि कई आचार्योंके आगमोंका आधार दिया है। इससे ज्ञात होता है, कि आप बहुश्रुताभ्यासी थे।

आपके ज्ञानार्णव ग्रंथका आपके पश्चात्‌वर्ती दिगम्बर आचार्योंने ही नहीं, परंतु श्वेताम्बर आचार्य हेमचन्द्रजीने अपने ग्रंथमें भरपूर उपयोग किया है। जिससे ज्ञात होता है, कि आपकी रचना अतिप्रिय बनी है। यह वैराग्यका अनुपम ग्रंथ है। यह एक महाकाव्यसमा ग्रंथ है। आपने परम अध्यात्मतरंगिणी, ज्ञानार्णव व योगप्रदीप नामक ग्रंथोंकी रचना की है।

आपका समय ईस. १००३-१०६८प्रतीत होता है।

'ज्ञानार्णव'के रचयिता आचार्य शुभचंद्रदेव भगवंतको कोटि कोटि वंदन।

भगवान आचार्यदेव
श्री वादिराजसूरि

'एकीभावस्तोत्र' अपरनाम 'कल्याण कल्पद्रुम'से आप जैन समाजमें जन-जन तक प्रसिद्ध हैं। आपके स्तोत्रका नाम 'कल्याण कल्पद्रुम' होने पर भी भक्तामर, स्वयंभू आदि स्तोत्रोंकी भाँति, स्तोत्रके 'आदि शब्द'से इस स्तोत्रका नाम 'एकीभाव स्तोत्र' जगतमें प्रचलित है। आचार्यश्री जाने-माने दार्शनिक, चिन्तक व महाकवियोंमें अपना एक स्थान रखते हैं। आप उच्च कोटिके तार्किक थे। आपकी तुलना जैन कवियोंमें आचार्य सोमदेवसूरिसे व संस्कृतके कवि नैषधकार तथा श्रीहर्षके साथ की जाती है। आपके लिए एक उक्ति प्रवर्तती है, कि 'आपकी बुद्धिरूपी गायने जीवनपर्यन्त शुष्कतर्करूपी घास खाकर काव्य-दुग्धसे सहृदयजनोंको तृप्त किया है'।

आप द्रविड संघमें नन्दिसंघके आचार्य थे। आप शक्तिशाली वक्ता, चिन्तक, षट्तर्कषण्मुख, स्याद्वादविद्यापति व जगतेकमल्लवादी आदि अनेक उपाधियोंसे भूषित थे। आपसे अन्य वैयाकरणी, तार्किक व भव्यसहायक हीन ही हीन हैं। आप भगवान आचार्य अकलंकदेवके तुल्य थे।

आपकी प्रशंसाके कई शिलालेख दक्षिणमें उपलब्ध हैं। उसमें एक स्थान पर लिखा है कि 'तीन लोकका दीपक–प्रकाशन दो से ही उदय प्राप्त हुआ है—एक जिनराजसे और एक वादिराजसे।'

आप आचार्य श्रीपालके प्रशिष्य, आचार्य मतिसागरके शिष्य, अनन्तवीर्य व यशपाल मुनिके गुरुभाई थे। आपका शुभ नाम कनकसेन था व दीक्षानाम वर्द्धमान मुनिश्वर था व 'वादिराज' उपाधिकृत नाम हो, ऐसा प्रतीत होता है। आपके पादकमलमें परवादिमल्लनामक जिनालयका निर्माण हुआ था। आप चालुक्य नरेश जयसिंह (द्वितीय) द्वारा सम्मानित थे। आप उनसे पूजित व उनके राज्यके वादि थे।

आपके बारेमें एक कथा प्रचलित है, कि आपको कुष्ठ रोग हो गया था। एक बार इस बारेमें राज्यसभामें चर्चा हुई। तब आपके अनन्य भक्त सेठने अपने गुरुके अपवादके

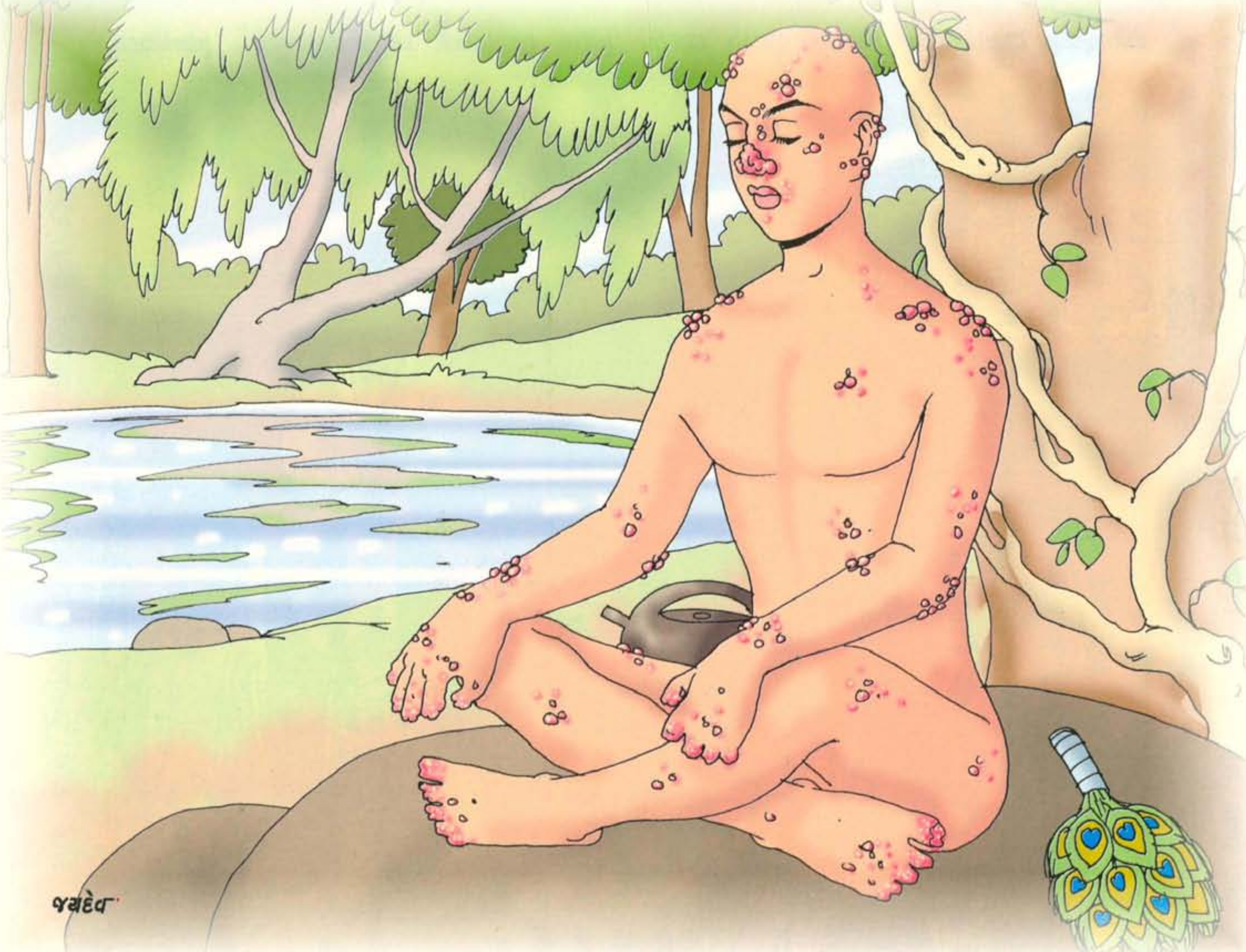

कुष्टरोगग्रस्त ध्यानस्थ आचार्य बादिराजजी

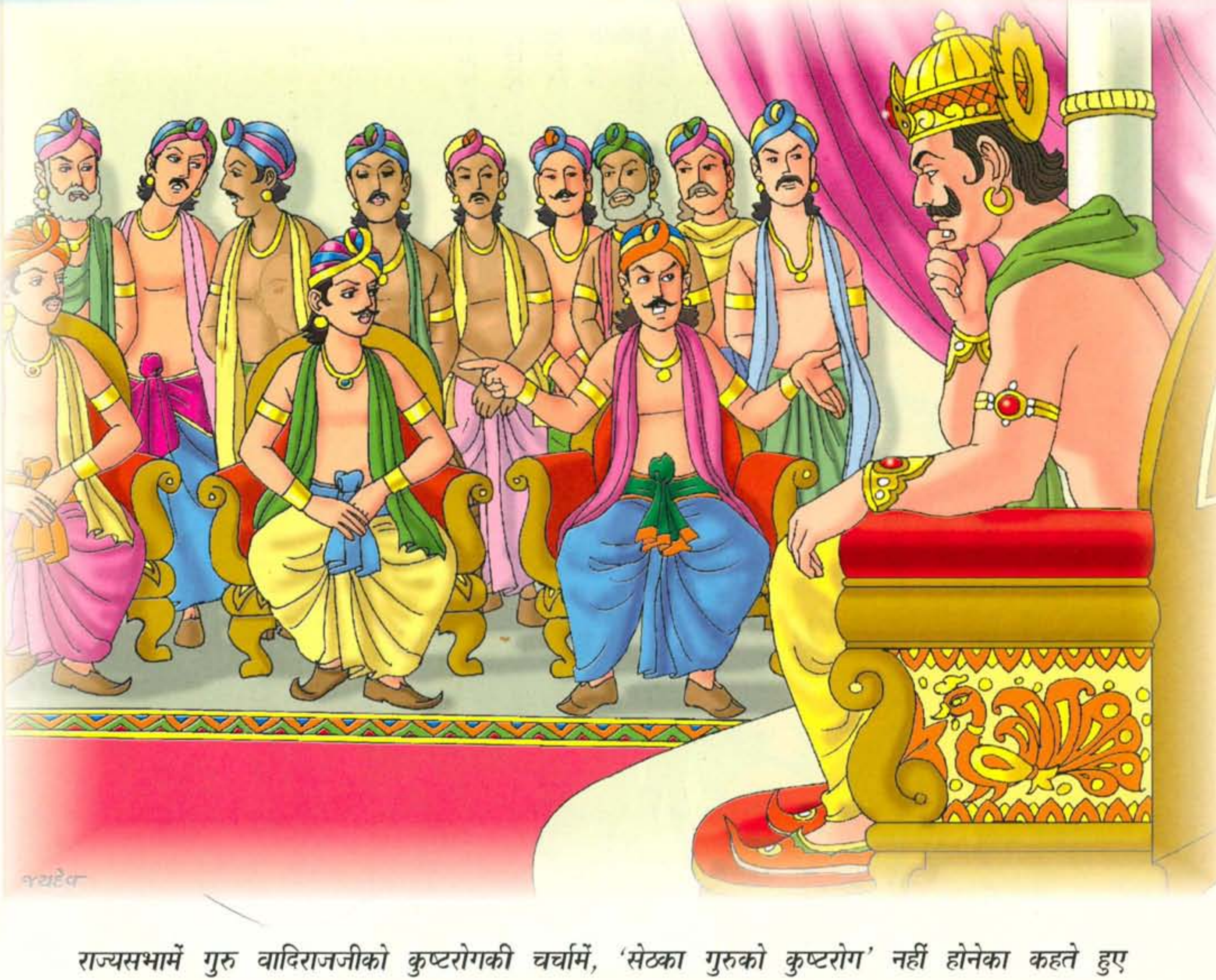

राज्यसभामें गुरु वादिराजजीको कुष्टरोगकी चर्चामें, 'सेठका गुरुको कुष्टरोग' नहीं होनेका कहते हुए

भयसे गुरुके प्रति अनन्य श्रद्धाके वशीभूत हो कह दिया, कि 'मेरे गुरु कुष्टरोगी नहीं हैं'। सेटजीको राज्यसभामें उनके गुरुको कुष्टरोग होनेके वे शब्द बहुत अखरे और सरासर झूठ जान पड़े; क्योंकि उन्हें गुरु वादिराज कभी कुष्टरोगीके रूपमें लक्ष्यगत ही नहीं हुए थे। उन्होंने तो मात्र भक्त बनकर, अपने गुरुमें सर्व समर्पणभावसे 'गुरुरूप' ही देखा था। ठीक ही है, 'जाकी रही भावना जैसी, प्रभु मूरति देखी तिन तैसी'। इसलिए राजाके पूछने पर सेठजीने स्पष्ट कह दिया कि 'मेरे गुरु कुष्टरोगी नहीं हैं'। इस पर वाद-विवाद हुआ और अन्तमें राजाने स्वयं ही परीक्षा करनेका निश्चय किया। अतः भक्त-सेठ घबराया हुआ, आचार्य वादिराजजीके पास पहुँचा और समस्त घटना सुनाई। आपने आश्वासन देते हुए कहा, कि 'धर्मके प्रतापसे सब ठीक होगा, चिन्ता मत करो'। उस समय आपने एकीभावस्तोत्रकी रचना करते हुए, भगवानकी बहुत ही भावसे स्तुति की, ऐसे शुद्धिपूर्वक शुभभावसे व पूर्व

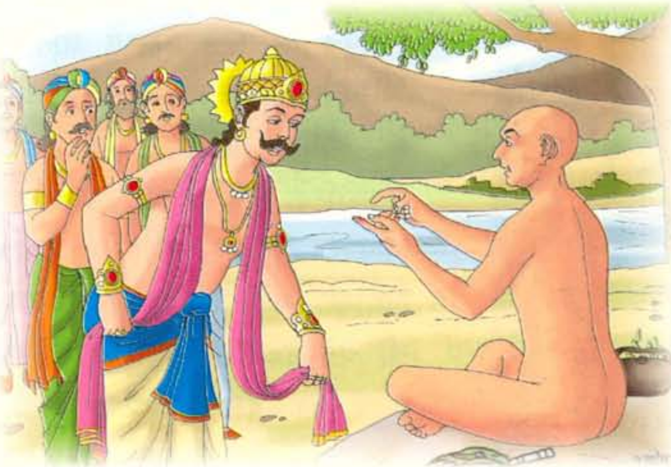

राजा, सभासद व सेठ सह आचार्य वादिराजजीके दर्शन करते हुए व आचार्य द्वारा कुष्टरोग जानेके बारेमें कहते हुए

पुण्यसे आपका कुष्ठरोग दूर हो गया। कुष्टरोगके संबंधमें राजाको चुगली खानेवालेको, राजाकी ओरसे दंड ना हो, अतः पाँवमें कुछ कुष्ठ रहने दिया। राजाने हकीकत जानी, तब राजा सहित नगरके सर्व लोगोंने जिनधर्म अंगीकार कर लिया।

आपकी १. पार्श्वनाथ चरित, २. यशोधर चरित, ३. एकीभावस्तोत्र, ४. न्यायविनिश्चयविवरण, ५. प्रमाण निर्णय रचनाएँ हैं।

आप ई.स. १०१०-१०६५ के आचार्य भगवंत थे।

'एकीभावस्तोत्र'के रचयिता आचार्य वादिराजसूरि भगवंतको कोटि कोटि वंदन।

भगवान

श्री रामसेनाचार्य

रामसेन नामक जिनधर्ममें कई भट्टारक व विद्वान हुए हैं पर उसमेंसे तत्त्वानुशासन रचयिता श्री रामसेनाचार्य अपनी विशुद्धिकी दीप्तिको प्रद्योत करनेवाले थे।

आपने अपनी गुरु परम्परा बताते स्वयम्ने लिखा है जिससे ज्ञात होता है कि 'वीरचन्द्र, शुभदेव, महेन्द्रदेव और विजयगुरु ये आपके विद्यागुरु थे। पुण्यमूर्ति एवं उच्चकोटिके चरित्रधारी कीर्तिमान नागसेन आपके दीक्षागुरु थे। श्री रामसेनाचार्यके विद्यागुरु महेन्द्रदेव वे नेमिदेवके शिष्य और श्री सोमदेवजीके बडे गुरुभाई थे। आपके चतुर्थ शास्त्रगुरु विजयदेव थे।

आप सेनसंघी आचार्य थे, ऐसा सेनसंघकी पट्टावलियोंसे ज्ञात होता है।

आपने एक मात्र 'तत्त्वानुशासन' ग्रंथ रचा है।

आपका समय ई.स.की ११वीं शताब्दीका उत्तरार्ध पश्चात्का प्रतीत होता है।

श्री रामसेनाचार्य भगवंतको कोटि कोटि वंदन।

भगवान आचार्यदेव

श्री पद्मनंदि (द्वितीय)

आप 'जम्बूद्वीपपण्णत्ति'के रचयिता आचार्य पद्मनंदिदेवके पश्चात् हुए हैं, अतः अलग ही हैं। आपके बारेमें विशेष कोई जानकारी नहीं मिलती है, पर आप अपने 'पद्मनंदि पञ्चविंशतिका' ग्रन्थसे समाजमें बहुत ही परिचित हैं। आपके ग्रन्थको श्रीमद् राजचंद्रजीने 'वनशास्त्र' कहकर, इस ग्रंथकी भूरि भूरि प्रशंसा की थी। पूज्य सद्गुरुदेवश्री कानजीस्वामीने आपके इस ग्रंथको आत्मसात् ही नहीं, पर उसके कई अधिकारों पर यथावसर सभामें प्रवचन भी दिये थे।

आपके दीक्षागुरुका नाम आचार्य वीरनन्दि था, पर वे 'जम्बूद्वीप पण्णत्ति'के रचयिता आचार्य पद्मनन्दि के दादागुरु वीरनन्दि आचार्यसे भिन्न थे।

आपके ग्रन्थकी भाषा परसे ज्ञात होता है, कि आप प्राकृत व संस्कृत दोनोंके ज्ञाता थे। आपके ग्रन्थसे यह भी ज्ञात होता है, कि आपको पूर्वाचार्य, आचार्य अमृतचंद्रदेव, आचार्य अमितगति, आचार्य सोमदेव, आचार्य प्रभाचन्द्र, आचार्य गुणभद्रजी आदि अनेक आचार्योंके ग्रंथोंका ज्ञान था। इतना ही नहीं, उनके कई मर्म भरे कथनोंको आपने अपने ग्रंथके अवयव बना लिये हैं।

इतना ही नहीं, आपका ग्रंथ इतना सुन्दर व अनूठा बना है, कि आपके पश्चात्वर्ती आचार्योंने आपके ग्रंथके कई कथन अपने ग्रंथ रचनामें अपनाये हैं।

यद्यपि इस ग्रंथमें २६ अधिकार होने पर भी उसका नाम 'पद्मनंदि पञ्चविंशतिका' ही रखा है।

आपने अपनेमें अनूठा एक मात्र 'पद्मनंदीपञ्चविंशतिका ग्रंथ' रचा है। 'चरणसार' (प्राकृत) भी आपकी रचना मानी जाती है।

आप ईसाकी ११वीं शताब्दीके उत्तरार्द्धके आचार्य हैं।

'पद्मनंदिपंचविंशतिका' ग्रंथके रचयिता आचार्य पद्मनंदि (द्वितीय)को कोटि कोटि वंदन।

भगवान नेमिचन्द्र सिद्धान्तिदेव(मुनि)

सिद्धान्त, अध्यात्म व न्यायके त्रिवेणी संगम स्वरूप आचार्य नेमिचन्द्र सिद्धान्तिदेवके कृपामृत द्वारा भव्योंके भाग्यसे मात्र प्रथम २५ गाथारूप व बादमें ५८ गाथारूप द्रव्यसंग्रहकी रचना करके, आत्मार्थीयोंको कल्याणका मार्ग सुस्पष्ट कर दिया।

आप राजा भोजके समयमें इस धरातलको पवित्र कर रहे थे; तब राजस्थानके कोटा-बूंदीके पास चम्बल नदी पर स्थित 'केशवराय पाटन', कि जो राजा भोजके परमार–राज्यके अन्तर्गत मालवामें 'तपोवन'सा है, जो उस समय मंडलेश्वर 'आश्रमनगर'के रूपमें प्रसिद्ध था। आपका विहार करते हुए वहाँ पदार्पण हुआ। वहाँ राजश्रेष्ठी सोमनाथ श्रीपाल हेतु आपने भगवान मुनिसुव्रतनाथ तीर्थंकरके मंदिरमें 'द्रव्यसंग्रह'की रचना की थी, क्योंकि बृहद्‌द्रव्यसंग्रह अनुसार 'मालवदेशमें धारानगरीका स्वामी राजा भोजदेव था। उसके मंडलेश्वर श्रीपालके आश्रम नामक नगरमें, श्री मुनिसुव्रतनाथ तीर्थंकरके चैत्यालयमें भाण्ड़ागार आदि अनेक नियोगोंके अधिकारी सोमनाथ श्रेष्ठिके लिए, श्री नेमिचन्द्र सिद्धान्तिदेवने प्रथम २५ गाथाओंके द्वारा लघुद्रव्यसंग्रह नामक ग्रंथ रचा। तत्पश्चात् विशेष तत्त्वोंके ज्ञानके लिए ५८ गाथाओंमें बृहद्‌द्रव्यसंग्रह रचा'।

आप आचार्य नयननन्दिके शिष्य व श्रीनन्दिजीके प्रशिष्य थे। आपके शिष्यका नाम आचार्य वसुनन्दिजी था।

आपने श्री सोमनाथ राजश्रेष्ठी पर कृपारूपसे 'लघुद्रव्यसंग्रह' व 'बृहद्‌द्रव्यसंग्रह' ऐसे दो शास्त्रोंकी रचना की। यह हमारा भाग्य है, कि पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामीके प्रतापसे उनके ग्रंथोंके दर्शन ही नहीं, अपितु मुमुक्षुओंको उन शास्त्रों पर प्रवचन सुननेका भी लाभ मिला। इतना ही नहीं उसमें भरा अध्यात्मका मर्मरूप सिद्धान्त—'निश्चय व व्यवहाररूप मोक्षमार्ग दोनों एक ही साथ साधकको निर्विकल्प ध्यानमें प्रकट होते हैं'—भी भव्यजीवोंको प्राप्त हुआ ।। आपका यह अपूर्व सिद्धान्त महा उपकारी श्री कहानगुरुके कृपामृतसे, हमें यत्‌किंचित् समझने मिला। यह सब आपका ही श्री सोमनाथ राजश्रेष्ठि पर बरसे कृपामृतके अंशका प्रताप है। आपका काल विद्वान वर्ग ई.स. १०६८ निर्णित करते हैं।

मुनिवर श्री नेमिचन्द्रसिद्धान्तिदेव भगवंतको कोटि कोटि वंदन।

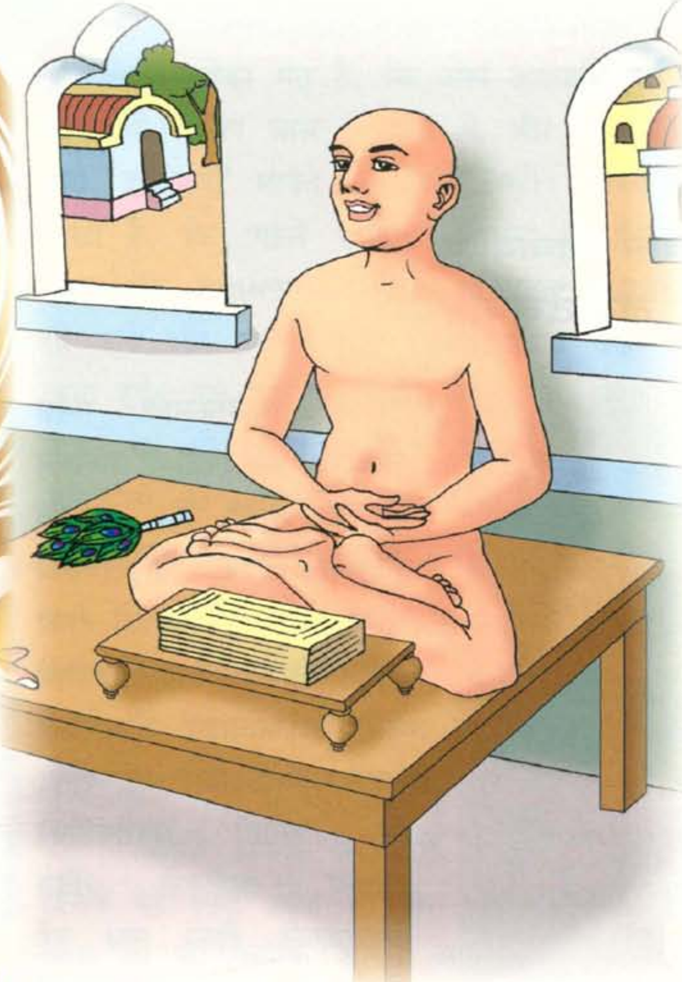

स्वाध्याय व विचारमग्न आचार्य वसुनन्दि

भगवान आचार्यदेव
श्री वसुनन्दि

वसुनन्दि नामक कई आचार्य हुए हैं। आपने 'प्रतिष्ठासार संग्रह' ग्रंथ संस्कृतमें व श्रावकाचार या 'उपासकाध्ययन' प्राकृत भाषामें लिखा है। इससे ज्ञात होता है, कि आप उभय भाषाके ज्ञाता थे।

आपके उत्तरवर्ती आचार्योंने आपको सैद्धान्तिक उपाधिसे अलंकृत किया होनेसे, आप सिद्धान्तोंके भी मर्मी होने चाहिए।

श्री कुन्दकुन्दाचार्यकी आम्नायमें स्वसमय और परसमयके ज्ञायक भव्यजीवरूपी कुमुदवनको विकसानेवाले चन्द्रतुल्य श्रीनन्दि आचार्य हुए। श्रीनन्दि आचार्यके शिष्य श्री नयनन्दि मुनि हुए व नयनन्दिके शिष्य नेमिचन्द्र हुए। उन नेमिचन्द्रके प्रसादसे श्री वसुनन्दि आचार्यने उपासकाध्ययन लिखा है।

आप धारा नगरीके राजा भोजके समयके हों ऐसा प्रतीत होता है।

आपकी रचनाएँ (१) प्रतिष्ठासारसंग्रह, (२) उपासकाध्ययन या श्रावकाचार, (३) मूलाचारकी आचारवृत्ति।

आपका समय इ.स. १०६८ से ११९८ माना जाता है।

'प्रतिष्ठासारसंग्रह' ग्रंथके रचयिता आचार्य श्री वसुनन्दिदेवको कोटि कोटि वंदन।

भगवान आचार्यदेव

श्री ब्रह्मदेवजी

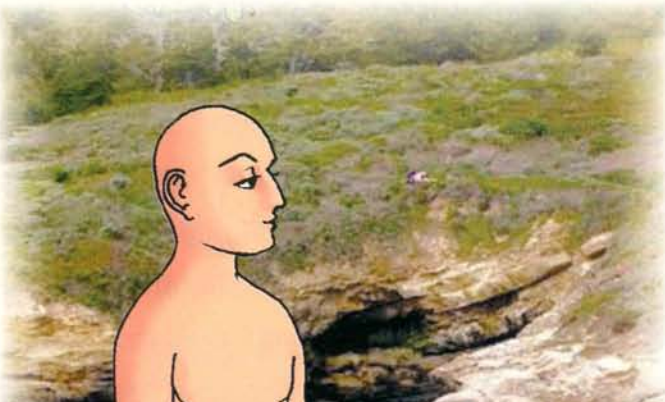

बाल ब्रह्मचारी आत्मलीन आचार्य ब्रह्मदेवजी

अध्यात्मकलाके मर्मज्ञ आचार्य ब्रह्मदेवजी अध्यात्म जगतमें प्रसिद्ध हैं। भगवान कुंदकुंदाचार्यदेवके प्राकृतत्रयकी श्री जयसेनाचार्यदेवने, जो टीका रची; ऐसे आचार्य ब्रह्मदेवजीकी शैली, आचार्य जयसेनजी (सप्तम) जैसी होनेसे, संभव है, कि आचार्य जयसेनजीको आचार्य ब्रह्मदेवजी रचित द्रव्यसंग्रहकी टीका प्राप्त हुई हों। उन टीकाओंकी आचार्य जयसेनजी पर काफी असर हुई। आपने भी वही शब्दार्थ, नयार्थ, मतार्थ, आगमार्थ और तात्पर्यार्थ—ऐसे पाँच-पाँच अर्थोंसे सभर टीका की है। आपकी शैली, भाषा आदि आचार्य जयसेनजी(सप्तम्)वत् होनेसे किसी किसीको शंका हो जाती है, कि आचार्य जयसेनजी व आचार्य ब्रह्मदेवजी एक ही हों। आप जयसेनाचार्यसे पूर्ववर्ती होने चाहिए, क्योंकि जयसेनाचार्यने अपनी टीकामें द्रव्यसंग्रहका आधार दिया है।

विद्वानोंका मत है, कि आप ब्रह्मचर्यमें अड़िग होनेसे आपको 'ब्रह्म' नामक उपाधि मिली थी। आप बाल ब्रह्मचारी थे और देवजी आपका नाम था। कई विद्वान आपका नाम 'ब्रह्मदेवजी' मानते हैं, 'देवजी' नहीं। आपने बृहद् द्रव्यसंग्रहकी टीका लिखी है, उसमें लिखा है, कि 'पहले भगवान नेमिचन्द्र सिद्धान्तिदेव द्वारा सोमनामके राजश्रेष्ठिके निमित्त मालवदेशके आश्रमनामक नगरके मुनिसुव्रत चैत्यालयमें २५ गाथात्मक द्रव्यसंग्रहके लघुरूपमें रचे जाने और बादमें विशेष तत्त्वपरिज्ञानार्थ उन्हीं आचार्य नेमिचन्द्रके द्वारा बृहद्द्रव्यसंग्रहकी रचना हुई। उस बृहद्द्रव्यसंग्रहके अधिकारोंके विभाजनपूर्वक यह वृत्ति आरम्भ की जाती है'। साथमें यह भी सूचित किया है, कि उस समय आश्रम नामका यह नगर महामण्डलेश्वरके अधिकारमें था और सोम नामका राजश्रेष्ठि भाण्डागार आदि अनेक नियोगोंका अधिकारी होनेके साथ-साथ तत्त्वज्ञानरूप सुधारसका पिपासु था'।

इस परसे विद्वान अनुमान करते हैं, कि पूर्वमें उल्लखित सभी घटनाएँ उनके सामने घटी हैं। अतः भगवान नेमिचन्द्र सिद्धान्तिकदेव, ब्रह्मदेवजी व राजा भोज सम-सामयिक थे। द्रव्यसंग्रहके इन टीकांशोंसे स्पष्ट ज्ञात होता है, कि द्रव्यसंग्रह व उसकी टीकाकी रचना– दोनों राजा भोजके कालमें रची गई थी।

आपने अपनी टीकाओंमें अनेक आचार्योंके ग्रन्थोंके उद्धरण आधाररूपसे दिये हैं। जिससे यह स्पष्ट होता है, कि आप बहु श्रुताभ्यासी तो थे ही, पर चारों अनुयोगके ज्ञाता भी थे, क्योंकि आपने अपने ग्रंथमें चारों अनुयोगके शास्त्रोंका प्रमाण दिया है।

आपने (१) बृहद् द्रव्यसंग्रह टीका, (२) परमात्मप्रकाश टीका, (३) कार्तिकेयानुप्रेक्षा टीका, (४) तत्त्व दीपक, (५) ज्ञानदीपक, (६) प्रतिष्ठातिलक, (७) कथाकोष ग्रंथोंकी रचना की है।

आपका समय भोजके समयके करीब होनेसे, ईसाकी ११वीं शताब्दीके अन्तिम पाद होना माना जाता है। वह श्री जयसेनाचार्यजी(सप्तम्)के निकट पूर्ववर्ती समय ही गिनना चाहिए।

'बृहद् द्रव्यसंग्रह टीका'के रचयिता आचार्य ब्रह्मदेवजीको कोटि कोटि वंदन।

●

भगवान आचार्यदेव
श्री जयसेनजी (सप्तम्)

भगवान कुंदकुंदाचार्यके अध्यात्म साहित्य समयसारको जैसा श्री अमृतचंद्राचार्यदेवने द्रव्यदृष्टिप्रधान शैलीसे संजोया है, उसी भाँति आपने उसी ग्रंथको चारित्रप्रधान शैलीसे संजोया है। इसी भाँति श्री अमृतचंद्राचार्यदेवने प्रवचनसार ज्ञानप्रधान शैलीसे टीका की, तो आपने उस ही ग्रंथकी चारित्रप्रधानशैलीसे टीका की। आप भगवान अमृतचंद्राचार्यके पश्चात्‌वर्ती आचार्य थे, भगवत् कुंदकुंदाचार्यदेवके जिन ग्रंथोंकी अमृतचंद्राचार्यदेवने टीका की, आपने भी उन्हीं ग्रन्थों पर टीका की। वे टीकाएँ उसी शैलीसे करनेका कोई हेतु नहीं रहता। अतः आपने उन्हीं ग्रन्थोंकी अन्य शैलीसे टीका की।

आपके ग्रन्थमें आपने अक्सर शब्दार्थ, नयार्थ, मतार्थ, आगमार्थ व भावार्थ निकालकर सभी गाथाओंकी टीका की है। इस शैलीसे सभी जीवोंको यथासम्भव सर्व जगह अर्थ करनेको आप कहते हैं, जिससे आगमके आलोकमें वक्ताका यथार्थ आशय स्पष्ट हो। आपने आगमार्थके लिए कई शास्त्रोंको प्रमाणरूपसे पेश किये हैं, जिससे स्पष्ट होता है, कि आप बहुश्रुताभ्यासी आचार्य थे। आपकी रचनाका आपके पश्चात्‌वर्ती आचार्योंने खूब उपयोग किया है।

आपके सम्बन्धमें आपने स्वयं बताया है, कि 'सदाधर्ममें रत प्रसिद्ध मालु नामक साधु हुए हैं। उनका पुत्र साधु महीपति हुआ है। उनसे यह चारूभट नामक पुत्र उत्पन्न हुआ है, जो सर्वज्ञ परमात्मा व आचार्योंकी आराधनापूर्वक सेवा किया करता है। उस चारूभट अर्थात् आचार्य जयसेनजीने अपने पिताकी भक्तिके विलोप होनेसे भयभीत हो, इस प्राभृत नामक ग्रंथकी टीका रची है'। जिससे ज्ञात होता है, कि आपका गृहस्थदशाका नाम चारुभट्ट था व पिता महिपति साधु व दादा मालु साधु थे। वे सभी मुनिदीक्षाधारी होंगे– ऐसा अनुमान हो सकता है, तब ही आपने उनके लिए साधु शब्दका प्रयोग किया है। इस बातसे यह भी ज्ञात होता है, कि आपके पिताकी भावनावश प्रवचनसार ग्रंथकी टीका या तीनों प्राभृतोंकी टीका की है। ऐसी प्रशस्ति आपने अन्य दो (समयसार और पंचास्तिकाय) ग्रंथोंकी टीकामें नहीं लिखी है।

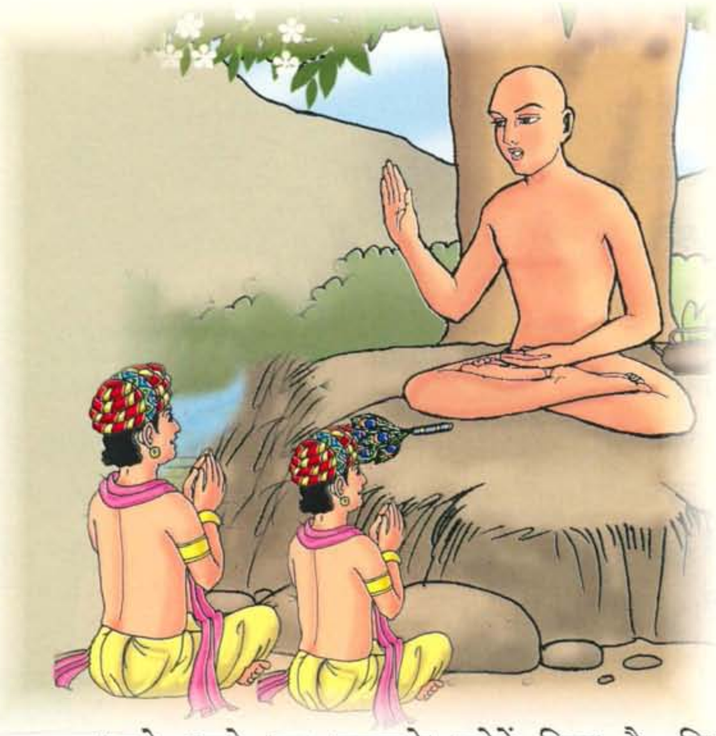

शिष्योंको मोक्षमार्गका संबोधन करते हुए आचार्य जयसेनजी (सप्तम)

आपने अपने गुरु परम्पराके बारेमें लिखा है, कि मूलसंघके निर्ग्रन्थ तपस्वी श्री वीरसेनाचार्य हुए, उनके शिष्य अनेक गुणोंके धारी आचार्य सोमसेन हुए और उनका शिष्य यह जयसेन हुआ है। इससे ज्ञात होता है, कि आचार्य सोमसेनजी आपके दीक्षागुरु होंगे, क्योंकि आपने आगे श्रीमान् त्रिभुवनचन्द्र गुरुको भी नमस्कार किया है। अतः श्री त्रिभुवनचन्द्राचार्य आपके विद्यागुरु होंगे। आप सेन गणान्वयी आचार्य अवश्य हैं—ऐसा स्पष्ट है। आपने भगवान आचार्य कुंदकुंदस्वामीके समयसार, प्रवचनसार व पंचास्तिकाय आदि तीन शास्त्रोंकी टीका की है।

आपने इन टीकाओंमेंसे समयसारकी टीका विस्ताररुचि शिष्यके लिए, प्रवचनसारकी टीका मध्यमरुचि शिष्यके लिए व पंचास्तिकायसंग्रहकी टीका संक्षेप रुचि शिष्यके लिए बनाई है।

आपकी तीनों टीकाओंका नाम 'तात्पर्यवृत्ति' है।

आपका समय ई.सन्‌की ११वीं शताब्दिका उत्तरार्ध या १२वीं शताब्दिका पूर्वार्ध माना जाता है।

आचार्य श्री जयसेनजी (सप्तम्)को कोटि कोटि वंदन।

भगवान आचार्यदेव
श्री जिनचन्द्रजी

भगवान कुन्दकुन्दाचार्यदेवके गुरु जिनचन्द्रस्वामीसे आप भिन्न आचार्य जिनचन्द्रजी हैं। आपने 'सिद्धान्तसार' ग्रंथकी रचना की है। आपके 'सिद्धान्तसार' ग्रंथ परसे ज्ञात होता है कि, इस ग्रंथ पर 'गोम्मटसार जीवकाण्ड' व 'गोम्मटसार कर्मकाण्ड'का काफ़ी असर है। इस परसे आप जिनसिद्धान्तके ज्ञाता थे। यह स्पष्ट प्रतिभासित होता है।

जिनचंद्र नामक अनेक आचार्य हुए है। उन सबसे भिन्न, अद्भुत प्रज्ञाके धारी आप आचार्य अपनेमें अनेरे हैं।

आपके ग्रंथके अध्ययनसे ज्ञात होता है, कि आपका समय गोम्मटसार जीवकाण्ड व कर्मकाण्डके रचयिता आचार्य नेमिचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्तीके पश्चात् ई.सन्‌की ११वीं-१२वीं शताब्दी निश्चित होता है।

आचार्य श्री जिनचन्द्रजी भगवंतको कोटि कोटि वंदन।

भूमांहि पिछली रयनिमें कछु शयन एकासन करन।

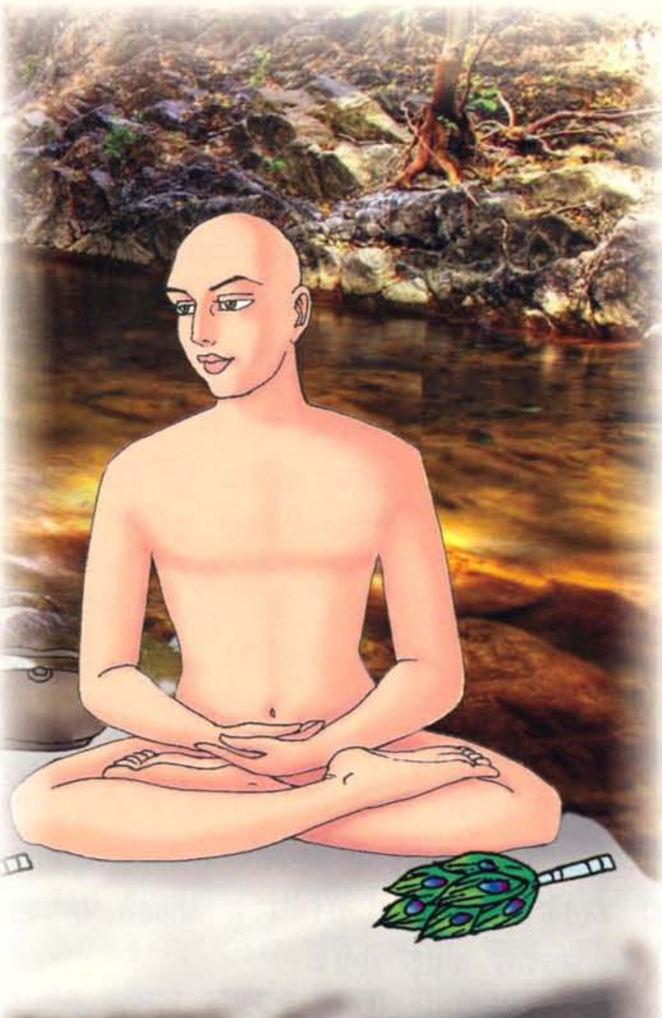

प्रमेयरत्नमालाके सम्बन्धमें विचारमग्न श्री लघु अनन्तवीर्य आचार्य

भगवान आचार्यदेव
श्री लघु अनन्तवीर्य

आपकी १२००० श्लोकप्रमाण रचना 'प्रमेयरत्नमाला'से यह ज्ञात होता है, कि आप स्वयं जानते थे, कि आपके पूर्वमें अनन्तवीर्य आचार्य हुए हैं, क्योंकि श्री प्रभाचन्द्राचार्यदेवने अपने न्यायकुमुदचन्द्रमें सिद्धिविनिश्चयटीकाके रचयिता आचार्य अनन्तवीर्यका स्मरण किया है, व आपने अपनी 'प्रमेयरत्नमाला'में आचार्य प्रभाचन्द्रजीका बहुमानसे स्मरण किया होनेसे यह स्पष्ट है, कि आपके पूर्वमें अनन्तवीर्य आचार्य हुए हैं। अतः 'सिद्धिविनिश्चय-टीका'के रचयिता भगवान आचार्य अनन्तवीर्यसे अपनी भिन्नता दर्शानेके लिए आपने स्वयंको 'लघु अनन्तवीर्य' बताया है।

आचार्यदेवने परीक्षामुख ग्रंथकी संक्षिप्त, किन्तु विशद व्याख्या की है। साथ ही उसमें आपने चार्वाक, बौद्ध, सांख्य, न्याय, वैषेशिक, मीमांसक व वेदान्तादि दर्शनोंके कुछ विशिष्ट सिद्धान्तोंका स्पष्ट विवेचन एवं निराकरण भी किया है।

आपके ग्रंथके टिप्पणकारने इस ग्रंथको 'प्रमेयरत्नमाला' बताया है, यह नाम पूर्णतः सार्थक है, क्योंकि यह विविध साहजिक प्रमेयोरूपी रत्नोंकी कभी नहीं छूटनेवाली माला है। इस ग्रंथके प्रारंभमें आपने स्वयं इस टीकाका नाम 'परीक्षामुख-पञ्जिका' निर्देश दिया है व स्वयं ही प्रत्येक समुद्देशके अन्तकी 'पुष्पिका वाक्य'में 'परीक्षामुख लघुवृत्ति' बताया है। जो भी हो, परन्तु आजकल यह 'प्रमेयरत्नमाला'के नामसे प्रसिद्ध ग्रंथ है।

यह ग्रन्थ न्यायशास्त्रके जिज्ञासुओंको सर्वदा न्यायशास्त्रका बोध कराता रहेगा। यह भावना मात्र ही नहीं, परन्तु यह ग्रंथ आजकल जैन न्यायके अध्ययन हेतु विद्यालयों व महाविद्यालयों तकमें पाठ्यपुस्तकके रूपमें आदरणीय व पठनीय हो रहा है।

यह रचना एक व्यक्तिविशेषके निमित्तसे बनाई गई है। आचार्यदेवने स्वयं इस ग्रंथके प्रारम्भमें तथा अन्तमें स्पष्ट उल्लेख किया है, कि 'आपने यह टीका वैजेयके प्रिय पुत्र हीरपके अनुरोधसे शान्तिषेणके पठनार्थ रची है।' यद्यपि वैजेयके ग्रामका पता स्पष्ट नहीं है, पर हीरप बदरीपाल वंश या जातिका ओजस्वी सूर्य था, ऐसा निर्देश किया है। उनकी (वैजेयकी)पत्नीका नाम नाणाम्बा था। जो अपने विशिष्ट गुणोंके कारण रेवती, प्रभावती आदि नामोंसे प्रसिद्ध थी। उसके दानवीर हीरप नामक पुत्र हुआ; जो सम्यक्त्वरूप रत्नोंसे सुशोभित था। तदुपरांत वह लोकहित कार्योंको करनेके लिए प्रसिद्ध था। उनके आग्रहसे सम्भवतः उन्हींके पुत्र–शान्तिषेणके पढ़ने हेतु यह लघुवृत्ति बनाई होगी।

आपका यह एक मात्र 'प्रमेयरत्नमाला' ग्रंथ ही है। इसमें भी परीक्षामुखकी भांति प्रमाण व प्रमाणाभासोंकी विशद चर्चा है।

आपका समय ईसाकी १२वीं शताब्दिका मध्यपाद प्रतीत होता है।

'प्रमेयरत्नमाला' ग्रंथके रयिचता आचार्यदेव लघु अनन्तवीर्यजीको कोटि कोटि वंदन।

*

भगवान

श्री पद्मप्रभमलधारीदेव मुनिवर

आप भगवान आचार्य कुंदकुंददेवजीके 'नियमसार' ग्रंथकी टीका लिखनेवाले परम अध्यात्मिक निर्ग्रन्थ मुनि भगवंत थे। आपका नाम 'पद्मप्रभ' था। 'मलधारी' शब्द मुनीन्द्र भगवन्तके लिए दिगम्बर व श्वेताम्बर दोनों आम्नायमें प्रचलित है। अतः आप महामुनीन्द्र भगवंत थे।

आपने स्वयंको सुकविजन पयोजमित्र, पञ्चेन्द्रियप्रसरवर्जित व गात्रमात्र परिग्रही बताया है। आपके गुरुका नाम श्री वीरनन्दि सिद्धान्तचक्रवर्तीदेव था। मद्रास प्रान्तके 'पटशिवपुरम्' ग्रामके शिलालेखानुसार माण्ड़लिक त्रिभुवनमल भोजदेव चोल्ल, हेजरा नगर पर राज्य कर रहे थे, तब वहाँ एक जिनमंदिर बनवाया गया था। उस समय मुनीन्द्र पद्मप्रभलधारीदेव व उनके गुरु वीरनन्दि सिद्धान्त चक्रवर्तीदेव वहाँ विद्यमान थे। इस परसे अनुमान है, कि आप दक्षिणके मुनीन्द्र भगवंत थे।

आपने अपनी टीकामें अध्यात्मके गहन गम्भीर भाव भरे हैं। उसमें दर्शाया है, कि 'मोक्ष व मोक्षमार्गका आश्रयरूप कारण (बीज) निजात्मस्वभाव प्रत्येक आत्मामें ये वर्तमानमें ही विद्यमान है; उसकी दृष्टि, महत्ता, मूल्य, ज्ञान, श्रद्धान, आचरणमें नहीं लाकर; पर, कर्म व वर्तमान स्वपर्याय जितना ही स्वयमूका श्रद्धान, ज्ञान, आचरण करनेसे प्रत्येक जीव संसारमें दुःखी हो रहा है'।

आपका परिचय देते हुए नियमसार टीकाकी प्रस्तावनामें बताया है, कि–आपने भगवान कुंदकुंदाचार्यदेवके हृदयमें रहे परम गहन अध्यात्मिक भावोंको अपने अन्तरवेदनके साथ मिलाकर, इस नियमसार ग्रंथकी टीकाकी रचना की है। इस ग्रंथमें आये हुए कलशरूप काव्य अतिशय मधुर हैं। साथमें वे अध्यात्म-मस्ती व भक्तिरससे भरपूर हैं। अध्यात्मकविके रूपमें श्री पद्मप्रभमलधारीदेवका स्थान जैन साहित्यमें अति उच्च है। टीकाकार मुनिराजने गद्य व पद्यके रूपमें परम पारिणामिकभावको तो बहुत ही गाया है। सम्पूर्ण टीका मानों, कि परमपारिणामिक-भावका और तदाश्रितमुनिदशाका एक महाकाव्य हो इस भांति मुमुक्षुहृदयको

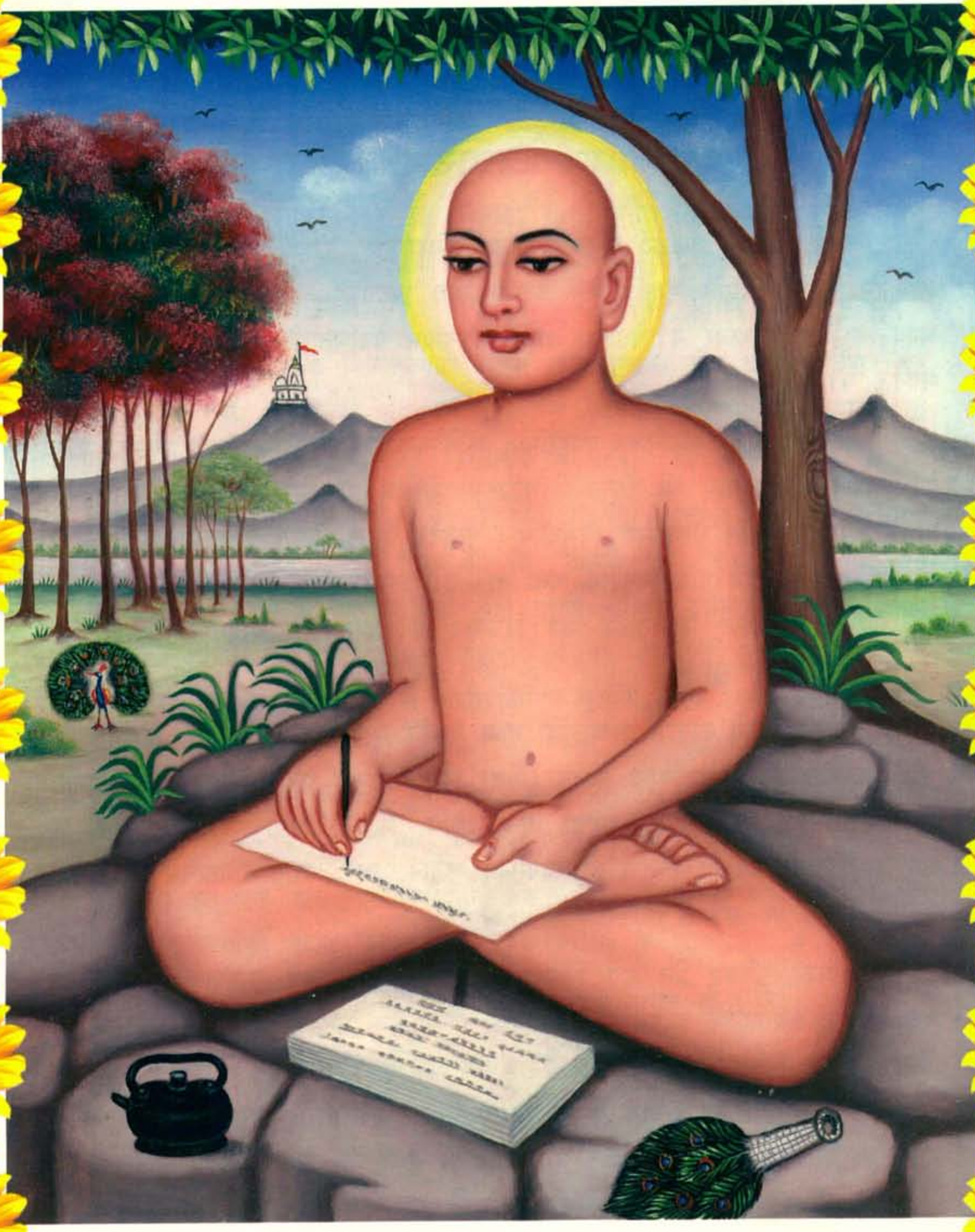

मुनिराज पद्मप्रभमलधारीदेव 'नियमसार टीका' रचते हुए

मुदित करती है। परमपारिणामिकभाव, सहज सुखमय मुनिदशा और सिद्ध जीवोंकी परमानंदपरिणतिके प्रति भक्तिसे मुनिवरका चित्त मानों, कि उल्लसित हो रहा है और उस उल्लासको व्यक्त करनेके लिए उनके पास शब्द अतिशय कम पड़ते हों, ऐसा उनके मुखसे प्रसंगोचित अनेक उपमा अलंकार द्वारा व्यक्त होता है। अन्य अनेक उपमाओंके साथ, मुक्ति, दीक्षा आदिको बारबार स्त्रीकी उपमा बे-धड़क दी है, जिससे आत्ममस्त महामुनिवरके ब्रह्मचर्यका अतिशय जोर सूचित होता है। संसार दावानल समान है, और सिद्धदशा तथा मुनिदशा परम सहजानंदमय है—ऐसे भावके प्रवाहका पूरी टीकामें ब्रह्मनिष्ठ मुनिवरने अलौकिक रीतिसे सतत सर्जन किया है और स्पष्टरूपसे दर्शाया है, कि मुनियोंके व्रत, नियम, तप, ब्रह्मचर्य, त्याग, परिषहजय, आदिरूप कोई भी परिणति हठसे, खेदयुक्त, कष्टजनक या नरकादिके भयमूलक नहीं होती, परंतु अन्तरंग आत्मिक वेदनसे होती परम परितृप्तिके कारणसे सहजानंदमय होती है—कि जिस सहजानंदके पास संसारीओंके कनककामिनीजनित कल्पित सुख उपहासमात्र और घोर दुःखमय भासते हैं। यथार्थतया मूर्तिमंत मुनिपरिणति समान यह टीका, मोक्षमार्गमें विहार करते मुनिवरोंकी सहजानंदमय परिणतिका तादृश चितार देती है। इस कालमें ऐसी यथार्थ आनंदनिर्भर मोक्षमार्गकी प्रकाशक टीका मुमुक्षुओंको समर्पित करके टीकाकार मुनिवरने महान उपकार किया है।

आपने नियमसार ग्रंथ टीका व पार्श्वनाथस्तोत्र दो ही रचना रची है।

आपका समय ई.सा.की १२वीं शताब्दीका मध्यपाद माननेमें आता है।

'नियमसारकी तात्पर्यवृत्ति टीका'के रचयिता मुनिवर पद्मप्रभमलधारिदेव भगवंतको कोटि कोटि वंदन।

भगवान आचार्यदेव

श्री अभिनव धर्मभूषण यति

'न्यायदीपिका' ग्रंथके न्यायोंमें मग्न
आचार्य अभिनव धर्मभूषण यति

धर्मभूषण नामक कई भट्टारक, विद्वान आदि हुए हैं। उन सबसे भिन्न धर्मभूषणजी मुनि थे। आपने अपनेको अन्य धर्मभूषणजीसे भिन्न दर्शाने हेतु 'अभिनव' विशेषण लगाया है। आप स्वयम् मुनि होनेसे आपने अपने पीछे 'यति' विशेषण भी लगाया है।

आपके माता-पिता, जन्मस्थान आदिका कोई उल्लेख कहीं नहीं मिलता है। फिर भी विजयनगर साम्राज्यके स्वामी प्रथम देवराय और उनकी पत्नी भीमादेवी आपके भक्त थे व आपको

गुरु मानते थे। आपकी गुरु परम्परा निम्न प्रकारसे शिलालेखोंके आधारसे मिलती है।

मूलसंघ, नन्दिसंघ–बलात्कारगणके सारस्वत गच्छमें

पद्मनंदि (कुन्दकुन्दाचार्य)

उन्हींके अन्वयमें

अमरकीर्ति आचार्य (जिनके शिष्योंके शिक्षक-दीक्षक सिंहनन्दी व्रती थे।)

श्री धर्मभूषण भट्टारक (द्वितीय) (सिंहनन्दी व्रतीके सधर्मा)

वर्द्धमान मुनीश्वर (सिंहनन्दि व्रतीके चरणसेवक)

धर्मभूषण यति (तृतीय) (न्यायदीपिकाकार)

इस तरह श्री धर्मभूषणजीके साक्षात् गुरु श्री वर्द्धमान मुनिश्वर और प्रगुरु द्वितीय धर्मभूषण हो। अमरकीर्ति दादागुरु और प्रथम धर्मभूषण परदादागुरु थे।

आपको अपने गुरुके प्रति अनन्य समर्पणता व स्नेहसह–चरणोंपासकत्वमें बने रहनेकी तमन्ना थी। आप स्वयम् इस भांति लिखते हैं, कि यह 'न्यायदीपिका' पूज्य गुरु वर्द्धमान मुनीश्वरकी कृपाका फल है।

आप बहुश्रुताभ्यासी थे, यह आपकी कृतिसे झलकता है। आप स्वयम् न्यायशास्त्रके प्रखर विद्वत्तायुक्त ज्ञाता थे। आपको अन्यमतोंका भी गहन अभ्यास था।

आपकी एकमात्र रचना 'न्यायदीपिका' है; जिसमें प्रमाण प्रमाणाभासों, हेतु व हेत्वाभासों आदिका सुन्दर विवेचन है। उसमें 'प्रमाणकी प्रामाण्यता' भी अच्छी तरह समझाई है। उसी भांति लक्षण व लक्षणाभासोंका भी सुन्दर विवेचन किया है। आपने अपनी प्रमाणकी परिभाषा रचनेमें श्री अकलंक आचार्य अनुसार गये हों, ऐसा प्रतीत होता है।

आपका समय ई.स. १३५८-१४१८ माना जाता है।

'न्यायदीपिका'के रचयिता आचार्य अभिनव धर्मभूषण यतिको कोटि कोटि वंदन।

भगवान आचार्यदेव

श्री श्रीधराचार्यदेव

श्रीधराचार्य नामक अनेक जैन विद्वान हुए हैं। उनमें श्रुतावतार–गद्य व भविष्यदतचरित नामक ग्रंथोंके रचयिताके रूपमें उभरते आप एक अलग आचार्य हैं। माना जाता है कि आप अपभ्रंशमें लिखित सुकुमालचरिउके रचयिता भी हैं।

ऐसी कथा प्रसिद्ध है, कि 'बलत्के जिनमंदिरमें जहाँके शासक गोविन्दचन्द्र थे, ऐसे पद्मचन्द्र नामक एक मुनि उपदेश दे रहे थे। उपदेशमें उन्होंने सुकुमालजीका उल्लेख किया। श्रोताओंमें पीछे साहूका पुत्र कुमार नामक एक व्यक्ति था। उसने सुकुमालस्वामीके बारेमें विशेष जाननेकी इच्छा व्यक्त की। मुनिराजने कुमारोंको श्रीधराचार्यसे अभ्यर्थना करनेको कहा। वे ही उसकी जिज्ञासा शान्त कर सकते थे।' अतः कुमारने श्रीधराचार्यको सुकुमालचरिउ रचनेके लिए प्रेरित किया। जिससे आचार्यदेवने यह ग्रंथ लिखा।

आप श्री इन्द्रनन्दि आचार्यकी भांति ऐसे आचार्य हैं, कि जिन्होंने स्वयमूके लिए तनिक भी न लिखकर अन्य आचार्योंकी 'श्रुतावतार'रूप पट्टावलीयाँ लिख दी। जिसके बल ही इतिहासकार यत्किंचित् आचार्योंके समय, स्थिति आदिके बारेमें समझ पाते हैं।

आपकी रचना उक्त श्रुतावतार गद्य, भविष्यदत्त चरित, सुकुमाल चरिउ है।

आपका समय ईस्वीकी १४वीं शताब्दीका मध्यपाद प्रतीत होता है।

आचार्य श्री श्रीधराचार्यदेव भगवंतको कोटि कोटि वंदन।

भगवान महावीरस्वामी पश्चात्
२५वीं शताब्दीमें जिनधर्म

भगवान श्री महावीरस्वामीके निर्वाण पश्चात् करीब ६८३ वर्ष तक तो अंग, पूर्व व अंग-पूर्वांशका ज्ञानप्रवाह क्रमशः क्षीण होता हुआ भी अविरतरूपसे चलता रहा। तब तक श्रुत-प्रवाहकी मौखिक परम्परा ही थी। तत्पश्चात् ज्ञान विशेष-विशेष क्षीण होता जानेसे ग्रंथ लिखनेकी परम्परा शुरू हुई।

तत्पश्चात् कई महासमर्थ श्रुतधर आचार्य भगवंत धरसेनाचार्य, पुष्पदंत, भूतबलि, कुंदकुंदस्वामी, समन्तभद्रस्वामी आदिको उस आचार्य परम्परासे मिला जो श्रुतज्ञान, उससे उन्होंने षट्खंडागम, कसायपाहुड, समयसार, प्रवचनसार, नियमसार, पंचास्तिकायसंग्रह, तत्त्वार्थसूत्र, आप्तमीमांसा, समाधितंत्र, इष्टोपदेश आदि विविध ग्रंथोंकी रचना करके उस श्रुतज्ञानको चेतनवंत बनाया। तत्पश्चात् कुछेक सारस्वताचार्य हुए, जिन्होंने श्रुत परम्परामें मिले श्रुतज्ञानको अपने आत्मज्ञान व अंतरंग विशुद्धिके बलसे मौलिक ग्रंथ और टीका ग्रंथोंको लिखकर जिनधर्मको सरल व विशद्रूपसे सुदृढ किया।

इस भांति भगवान महावीरस्वामी द्वारा प्रवाहित ज्ञान शनैः शनैः क्षीणताकी ओर बहता गया। ऐसा परम्परासे प्रवाहित श्रुतज्ञान करीब २५०० वर्ष तक चला। भगवान महावीरके पश्चात् २५०० वर्षोंमें, उस ज्ञान गंगाने कई उतार–चढ़ाव देखे थे। २५००वीं शताब्दीमें तो भगवान महावीरके शासनका मूलभूत अंग–अध्यात्मज्ञान लुप्तप्रायः हो गया था। उसही अन्तर्गत वी.नि. २४१६ (वि.सं. १९४६, ई.स. १८९०)में परम कृपालु सद्गुरुदेव श्री कानजीस्वामीका जन्म हुआ। उन्होंने पूर्वमें विदेहक्षेत्रस्थ भगवान सीमंधरस्वामीसे प्राप्त देशना और वर्तमानमें ग्रंथाधिराज समयसारसे निज आत्मसाक्षात्कार किया। इतना ही नहीं, उक्त दिगम्बर परम्परामें हुए सभी आचार्योंके ग्रंथोंका रसास्वादन कर उन्होंने अपनी आत्म-परिणतिको विशेष निर्मल बनाई। पुण्यशाली भव्यजीवोंको उनका पावन, अध्यात्मरस गंभीर, शुद्धात्म दृष्टिप्रधान उपदेश भी मिला। परम कृपालु पूज्य गुरुदेवश्रीको, जबसे समयसार ग्रंथ प्राप्त हुआ, तबसे उन्होंने निरन्तर ५८ वर्ष तक पूर्व आचार्यकृत दिगम्बर ग्रंथोंका रोजाना

गहन अध्ययन किया। (उससे पूर्व उन्होंने कुल-परम्परासे मिले श्वेताम्बर, स्थानकवासी ग्रंथोंका गहन अभ्यास किया था, पर जिसकी उन्हें चाह थी, वह उनमें उन्हें नहीं मिला।) दिगम्बर आचार्योकृत सभी ग्रंथोंसे वे अपनी परिणतिको निर्मल बनाते तो थे ही, साथमें उन्होंने उन विविध दिगम्बर ग्रंथोंमेंसे किन्हीं ग्रंथ पर एक बार व किन्हीं ग्रंथ पर अनेकबार मुमुक्षुसभामें प्रवचन दिये। सीमंधर भगवानका आशीष प्राप्त पूज्य गुरुदेवने भगवत् कुंदकुंदाचार्यदेवके पंच परमागमोंके न्यायोंकी तो मूसलधार वर्षा बरसाकर समस्त दिगम्बर शासन पर व मुख्यरूपसे मुमुक्षु समाज पर असीम उपकार किया है। अभी भी टेप-प्रवचनों द्वारा भाग्यशाली मुमुक्षुओं पर अद्भुत कृपा कर रहे हैं। उनके उपकारछायामें मुमुक्षुगण अपने-अपने पुरुषार्थ व परिणति अनुसार अपना जीवनपंथ उज्ज्वल कर रहे हैं।

इस भांति श्रुतज्ञानकी जो परम्परा भगवान महावीरसे शुरू होती हुई, उक्त विविध आचार्योंके माध्यमसे परमकृपालु सद्गुरुदेव श्री कानजीस्वामी को मिली। उन्होंने अपने अनुभव बलसे बहुश्रुतपरम्पराको नवपल्लवित करके अनहद प्रभावना की।

यह सब उपकार आचार्यवर आपका, आपके ग्रंथोंका व उनके पावन प्रतापसे परमकृपालु श्री कहानगुरुदेवका है। जिनसे यह ज्ञानप्रवाह अभी तक अक्षुण्णधारासे बह रहा है। हे आचार्य भगवंत! आपके ग्रंथ! व हे कहानगुरुदेव! आपके ऐसे असीम उपकारोंसे नम्रीभूत हो, हम आपको कोटि कोटि वंदना करते हैं।

परम पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामीकी शीतल छायामें—जिन्हें पूज्य गुरुदेवश्री 'इस कालका आश्चर्य', 'आराधनाकी देवी', 'भगवती' आदि विविध उपमाओंसे अलंकृत करते थे, ऐसे—प्रशममूर्ति भगवती बहिनश्री चंपाबेनने भी अपने अद्भुत ज्ञान-वैराग्य-पूजा-भक्ति-धर्मचर्चाओं द्वारा तथा जिनायतनोंमें दिगम्बर आचार्य भगवंतों व साधकोंकी चित्रावलीयों द्वारा मुमुक्षुजीवोंके हृदयमें आचार्यों आदि प्रति भक्तिभाव जागृत कर अनुपम उपकार किया है।

अंतमें, फिरसे इस भांति आचार्यदेव आपको, आपके ग्रंथोको, पूज्य कहान गुरुदेवश्रीको व पूज्य बहिनश्रीको—भगवान महावीर की इस ज्ञानगंगाको अक्षुण्ण बनाये रखनेके लिए कोटि-कोटि वंदना करते हैं।

गणनातीत तुझ उपकार, मुझ अणु अणुए रे.....
शब्दोंथी केम कथाय! नमुं नमुं भावे रे....

मुनिराज भक्ति

ऐसे मुनिवर देखें, वनमें.....(२)
जाके राग-द्वेष नहीं तनमें.......

ग्रीष्म ऋतु पहाड शिखर

ग्रीष्म ऋतु शिखर के उपार.....(२)
मगन रहे ध्याननमें......१

वर्षा ऋतुमें वृक्ष नीचे ध्यान

चातुर्मास तरुतल ठाडे......(२)
बुंद सहे छिन छिन में......२

शीत ऋतुमें नदी किनारे ध्यान

शीतमास दरिया के किनारे......(२)
धीरज धारे ध्याननमें......३

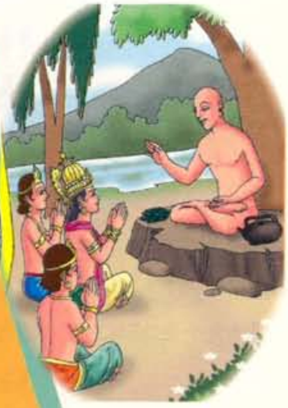

अैसे गुरुको मैं नित प्रति ध्याऊँ......(२)
देत ढोक चरणनमें.......४

परिशिष्ट

शास्त्रोंकी नामवार अनुक्रमणिका

क्रम	शास्त्रका नाम	आचार्यका नाम	आचार्यपद समय(ई.स.में)	पृष्ठ
१	८४ पाहुड	कुंदकुंदाचार्यदेव	१२७-१७९	८०
२	अध्यात्मतरंगिणी	सोमदेवसूरि	९४३-९६८	१६७
३	अध्यात्मतरंगिणी	शुभचंद्र	१००३-१०६८	१९१
४	अध्यात्मरत्नसंदोह	योगीन्दुदेव	छठवीं शताब्दी	१०५
५	अमितगति श्रावकाचार	अमितगति-२	९८३-१०२३	१८३
६	अमृताशीति	योगीन्दुदेव	छठवीं शताब्दी	१०५
७	अष्टशती	अकलंक आचार्य	६२०-६८६	१२२
८	अष्टसहस्री	विद्यानंदस्वामी	७७६-८४०	१४५
९	अंकुरारोपण	इन्दनंदि आचार्य	९३९	१६५
१०	आत्मख्याति टीका	अमृतचंद्रस्वामी	९०५-९५५	१६१
११	आत्मानुशासन	गुणभद्रस्वामी	८९८	१५५
१२	आत्मानुशासन टीका	प्रभाचन्द्र-४	९५०-१०२०	१७१
१३	आदिपुराण(अपूर्ण)	जिनसेनस्वामी-२	८१८-८७८	१५०
१४	आदिपुराण(सर्ग-४३-४७)	गुणभद्रस्वामी	८९८	१५५
१५	आप्तपरीक्षा	विद्यानंदस्वामी	७७६-८४०	१४५
१६	आराधना	अमितगति-२	९८३-१०२३	१८३
१७	आराधनासार	देवसेनाचार्य	९३३-९५५	१६४
१८	आलापपद्धत्ति	देवसेनाचार्य	९३३-९५५	१६४
१९	इन्द्रनंदिसंहिता	इन्द्रनंदि आचार्य	९३९	१६५
२०	इष्टोपदेश	पूज्यपादस्वामी	पांचवीं शताब्दी	१०२
२१	उत्तरपुराण	गुणभद्रस्वामी	८९८	१५५
२२	उपासकाचार	अमितगति-२	९८३-१०२३	१८३
२३	उपासकाध्ययन	वसुनंदि	१०६८-१११८	१९९
२४	एकीभावस्तोत्र	वादिराजसूरि	१०१०-१०६५	१९५
२५	औषधिकल्प	इन्द्रनंदि आचार्य	९३९	१६५

क्रम	शास्त्रका नाम	आचार्यका नाम	आचार्यपद समय(ई.स.में)	पृष्ठ
२६	कथाकोष	ब्रह्मदेवजी	११वीं शताब्दी	२०१
२७	कर्मप्रकृति	अभयनंदि सि.च.	९३०-९५०	१६३
२८	कर्मप्रकृति रहस्य	अभयनंदि सि.च.	९३०-९५०	१६३
२९	कर्मप्राभृत टीका	समंतभद्रस्वामी	१३८-१८५	९१
३०	कल्याणमंदिर स्तोत्र	सिद्धसेन	५६८	११२
३१	कसायपाहुड(मौखिक)	आर्यमंक्षु-नागहस्ति	७३-१६२	७२
३२	कसायपाहुड(चूर्णिसूत्रसह)	यतिवृषभ आचार्य	१४३-१७३	९३
३३	कसायपाहुड (मौखिक)	गुणधर आचार्य	प्रथम शताब्दी पूर्वपाद	४६
३४	कार्तिकेयानुप्रेक्षा टीका	ब्रह्मदेवजी	११वीं शताब्दी	२०१
३५	कार्तिकेयानुप्रेक्षा	स्वामी कार्तिकेय	द्वितीय शताब्दी	८४
३६	क्रियाकलाप टीका	प्रभाचन्द्र-४	९५०-१०२०	१७८
३७	क्षत्रचूडामणि	वादिभसिंह	७७०-९६०	१३३
३८	गणितसारसंग्रह	महावीरदेव	८००-८३०	१४८
३९	गद्यकथाकोष	प्रभाचन्द्र-४	९५०-१०२०	१७१
४०	गद्यचिंतामणि	वादिभसिंह	७७०-८६०	१३३
४१	गंधहस्ति महाभाष्य	समंतभद्रस्वामी	१३८-१८५	९१
४२	गोम्मटसार(कर्मकांड)	नेमिचंद्र सि.च.	९८१	१८०
४३	गोम्मटसार(जीवकांड)	नेमिचंद्र सि.च.	९८१	१८०
४४	चन्द्रप्रभचरित	वीरनन्दि सि.च.	९५०-९९०	१६८
४५	चंद्रप्रज्ञप्ति	अमितगति-२	९८३-१०२३	१८३
४६	चंद्रोदय	प्रभाचन्द्र-४	१५०-१०२०	१७१
४७	चारित्रपाहुड	कुंदकुंदाचार्यदेव	१२७-१७९	८०
४८	जयधवलाटीका	जिनसेनस्वामी-२	८१८-८७८	१५०
४९	जयधवला(अपूर्ण)	वीरसेनस्वामी	७७०-८२७	१३९
५०	जल्पनिर्णय	श्रीदत्तजी	चौथी शताब्दी	९९
५१	जंबूद्वीपपण्णत्ति	पद्मनंदिनाथ-१	९७७-१०४३	१७४
५२	जिनदत्तचरित्र	गुणभद्रस्वामी	८९८	१५५
५३	जीवसिद्धि	समंतभद्रस्वामी	१३८-१८५	९१

क्रम	शास्त्रका नाम	आचार्यका नाम	आचार्यपद समय(ई.स.में)	पृष्ठ
५४	जैनेन्द्रव्याकरण	पूज्यपादस्वामी	पांचवीं शताब्दी	१०२
५५	जैनेन्द्रव्याकरण टीका	अभयनंदि सि.च.	९३०-९५०	१६३
५६	ज्ञानदीपक	ब्रह्मदेवजी	११वीं शताब्दी	२०१
५७	ज्ञानार्णव	शुभचंद्र	१००३-१०६८	१९१
५८	ज्योतिषपटल	महावीरदेव	८००-८३०	१४८
५९	ज्वालामालिनी	इन्द्रनंदि आचार्य	९३९	१६५
६०	तत्त्वसार	देवसेनाचार्य	९३३-९५५	१६४
६१	तत्त्वानुशासन	समंतभद्रस्वामी	१३८-१८५	९१
६२	तत्त्वानुशासन	रामसेनाचार्य	११वीं शताब्दी	१९६
६३	तत्त्वार्थ टीका	योगीन्दुदेव	छठ्वीं शताब्दी	१०५
६४	तत्त्वार्थवार्तिक	अकलंक आचार्य	६२०-६८४	१२२
६५	तत्त्वार्थवृत्तिपद-विवरण	प्रभाचंद्र-४	९५०-१०२०	१७३
६६	तत्त्वार्थश्लोकवार्तिकालंकार	विद्यानंदस्वामी	७७६-८४०	१४५
६७	तत्त्वार्थसार	अमृतचंद्रस्वामी	९०५-९५५	१६१
६८	तत्त्वार्थसूत्र	प्रभाचंद्र द्वितीय	सातवीं शताब्दी	११६
६९	तत्त्वार्थसूत्र	उमास्वामी	१७९-२४३	९८
७०	तत्त्वार्थसूत्र टीका	समंतभद्रस्वामी	१३८-१८५	९१
७१	तत्त्वार्थसूत्र टीका	अकलंक आचार्य	६२०-६८५	१२२
७२	तत्त्वार्थसूत्र टीका	विद्यानंदस्वामी	७७६-८४०	१४५
७३	तत्त्वार्थसूत्र टीका	अभयनंदि सि.च.	९३०-९५०	१६३
७४	तत्त्वार्थवृत्ति(तत्त्वार्थसूत्र टीका)	पूज्यपादस्वामी	पांचवीं शताब्दी	१०२
७५	त्रिलक्षणवर्धन	पात्रकेसरी	६-७वीं शताब्दी	१०८
७६	त्रिलोकसार	नेमिचंद्र सि.च.	९८१	१८०
७७	त्रिवर्ग महेन्द्रभतलिसंजल्प	सोमदेवसूरि	९४३-९६८	१६७
७८	त्रिस्कंधात्मज्योतिष	ऋषिपुत्र	६-७वीं शताब्दी	१०९
७९	दर्शनपाहुड	कुंदकुंदाचार्यदेव	१२७-१७९	८०
८०	दर्शनसार	देवसेनाचार्य	९३३-९५५	१६४
८१	दसभक्ति	पूज्यपादस्वामी	पांचवीं शताब्दी	१०२

क्रम	शास्त्रका नाम	आचार्यका नाम	आचार्यपद समय(ई.स.में)	पृष्ठ
८२	देवागमस्तोत्र/आप्तमीमांसा	समंतभद्रस्वामी	१३८-१८५	९१
८३	दोहापाहुड	योगीन्दुदेव	छठवीं शताब्दी	१०५
८४	धम्मपसायण	पद्मनंदिनाथ-१	९७७-१०४३	१७४
८५	धर्मपरीक्षा	अमितगति-२	९८३-१०२३	१८३
८६	धर्मरत्नाकर	जयसेनाचार्य षष्ठम	९९८	१६१
८७	धवला	वीरसेनस्वामी	७७०-८२७	१३९
८८	धवला(मौखिक)	एलाचार्य	७७०	१३५
८९	नयचक्र	देवसेनाचार्य	९३३-९५५	१६४
९०	निजात्माष्टक	योगीन्दुदेव	छठवीं शताब्दी	१०५
९१	नीतिवाक्यामृत	सोमदेवसूरि	९४३-९६८	१६७
९२	नियमसार	कुंदकुंदाचार्यदेव	१२७-१७९	८०
९३	नियमसार टीका	पद्मप्रभमलधारिदेव	१२वीं शताब्दी	२०९
९४	नीतिसार	इन्द्रनंदि आचार्य	९३९	१६५
९५	नौकार-श्रावकाचार	योगीन्दुदेव	छठवीं शताब्दी	१०५
९६	न्याय कुमुदचंद्र	प्रभाचन्द्र-४	९५०-१०२०	१७१
९७	न्यायदीपिका	अभिनवधर्मभूषण यति	१३५८-१४१८	२११
९८	न्यायविनिश्चय	अकलंक आचार्य	६२०-६८१	१२२
९९	पत्रपरीक्षा	विद्यानंदस्वामी	७७६-८४०	१४५
१००	पद्मनंदि पंचविंशतिका	पद्मनंदि-२	११वीं शताब्दी	१९७
१०१	पद्मपुराण	रविषेण आचार्य	६७७	१२४
१०२	परमात्मप्रकाश	योगीन्दुदेव	छठवीं शताब्दी	१०५
१०३	परमात्मप्रकाश टीका	ब्रह्मदेवजी	११वीं शताब्दी	२०१
१०४	परिकर्म टीका	कुंदकुंदाचार्यदेव	१२७-१७९	८०
१०५	परीक्षामुख	माणिक्यनंदीजी	१००३-१०२८	१८५
१०६	पंचसंग्रह	अमितगति-२	९८३-१०२३	१८३
१०७	पंचास्तिकाय टीका	जयसेनजी सप्तम	११-१२वीं शताब्दी	२०३
१०८	पंचास्तिकाय प्रदीप	प्रभाचंद्र-४	९५०-१०२०	१७१
१०९	पंचास्तिकायसंग्रह	कुंदकुंदाचार्यदेव	१२७-१७९	८०

क्रम	शास्त्रका नाम	आचार्यका नाम	आचार्यपद समय(ई.स.में)	पृष्ठ
११०	पात्रकेसरीस्तोत्र	पात्रकेसरी	६-७वीं शताब्दी	१०८
१११	पर्श्वाभ्युदय	जिनसेनस्वामी-२	८१८-८७८	१५१
११२	पाशकेवली	ऋषिपुत्र	६-७वीं शताब्दी	१०९
११३	पुरुषार्थसिद्धिउपाय	अमृतचंद्रस्वामी	९०५-९५५	१६१
११४	पूजाकला	अभयनंदि सि.च.	९३०-९५०	१६३
११५	पूजाकल्प	इन्द्रनंदि आचार्य	९३९	१६५
११६	प्रतिमासंस्काररोपण पूजा	इन्द्रनंदि आचार्य	९३९	१६५
११७	प्रतिष्ठातिलक	ब्रह्मदेवजी	११वीं शताब्दी	२०१
११८	प्रतिष्ठपाठ	इन्द्रनंदि आचार्य	९३९	१६५
११९	प्रतिष्ठासार संग्रह	वसुनंदि	१०६८-११११	१९९
१२०	प्रमाण पदार्थ	समंतभद्रस्वामी	१३८-१८५	९१
१२१	प्रमाणपरीक्षा	विद्यानंदस्वामी	७७६-८४०	१४५
१२२	प्रमाणसंग्रह	अकलंक आचार्य	६२०-६८३	१२२
१२३	प्रमाणसंग्रह	बृहद अनंतवीर्य	९७५-१०२५	१७२
१२४	प्रमाणसंग्रहालंकार	बृहद अनंतवीर्य	९७५-१०२५	१७२
१२५	प्रमेयकमलमार्तंड	प्रभाचंद्र-४	९५०-१०२०	१७१
१२६	प्रमेयरत्नमाला	लघु अनंतवीर्य	१२वीं शताब्दी	२०६
१२७	प्रवचनसार	कुंदकुंदाचार्यदेव	१२७-१७९	८०
१२८	प्रवचनसार टीका	जयसेनजी सप्तम	११-१२वीं शताब्दी	२०३
१२९	प्रवचनसारसरोज भास्कर	प्रभाचन्द्र-४	९५०-१०२०	१७१
१३०	प्राकृत पंचसंग्रहवृत्ति	पद्मनंदिनाथ-१	९७७-१०४३	१७४
१३१	प्राकृत व्याकरण	समंतभद्रस्वामी	१३८-१८५	९१
१३२	बारसअणुवेक्खा	कुंदकुंदाचार्यदेव	१२७-१७९	८०
१३३	बृहद द्रव्यसंग्रह	नेमिचंद्र सिद्धांतिदेव	१०६८	१९८
१३४	बृहद् द्रव्यसंग्रह टीका	ब्रह्मदेवजी	११वीं शताब्दी	२०१
१३५	बृहद् सर्वज्ञसिद्धि	अनंतकीर्तिजी	८वीं शताब्दी	१४६
१३६	बृहद् सामायिक पाठ	अमितगति-२	९८३-१०२३	१८३
१३७	बोधपाहुड	कुंदकुंदाचार्यदेव	१२७-१७९	८०

क्रम	शास्त्रका नाम	आचार्यका नाम	आचार्यपद समय(ई.स.में)	पृष्ठ
१३८	भक्तामरस्तोत्र	मानतुंगस्वामी	६१८-६५०	११५
१३९	भक्तिसंग्रह	कुंदकुंदाचार्यदेव	१२७-१७९	८०
१४०	भगवती आराधना	शिवकोटि	प्रथम शताब्दी	४८
१४१	भविष्यदत्त चरित	श्रीधर आचार्य	१४वीं शताब्दी	२१२
१४२	भावनाद्वाविंशतिका	अमितगति-२	९८३-१०२३	१८३
१४३	भावपाहुड	कुंदकुंदाचार्यदेव	१२७-१७९	८०
१४४	भूमिकल्प	इन्द्रनंदि आचार्य	९३९	१६५
१४५	मुनिप्रायश्चित्तप्राभृत	इन्द्रनंदि आचार्य	९३९	१६५
१४६	मूलाचार	कुंदकुंदाचार्यदेव	१२७-१७९	८०
१४७	मूलाचार टीका	वसुनंदि	१०६८-११११	१९९
१४८	मोक्षपाहुड	कुंदकुंदाचार्यदेव	१२७-१७९	८०
१४९	यशस्तिलक चम्पू	सोमदेवसूरि	९४३-९६८	१६७
१५०	युक्तिचिंतामणिस्तव	सोमदेवसूरि	९४३-९६८	१६७
१५१	युक्त्यानुशासन/ वीरजिनगुणकथा	समंतभद्रस्वामी	१३८-१८५	९१
१५२	युक्त्यानुशासनालंकार	विद्यानंदस्वामी	७७६-८४०	१४५
१५३	योगप्रदीप	शुभचंद्र	१००३-१०६८	१९१
१५४	योगसार	योगीन्दुदेव	छठवीं शताब्दी	१०५
१५५	योगसारप्राभृत	अमितगति-१	९२३-९६३	१६२
१५६	योनिप्राभृत(मौखिक)	धरसेनाचार्य	३८-१०६	५४
१५७	रत्नकरंडक श्रावकाचार टीका	प्रभाचन्द्र-४	९५०-१०२०	१७१
१५८	रत्नकरंडक श्रावकाचार	समंतभद्रस्वामी	१३८-१८५	९१
१५९	रयणसार	कुंदकुंदाचार्यदेव	१२७-१७९	८०
१६०	लघीयस्त्रय	अकलंक आचार्य	६२०-६८०	१२२
१६१	लघीयस्त्रय टीका	प्रभाचन्द्र-४	९५०-१०२०	१७१
१६२	लघुद्रव्यसंग्रह	नेमिचंद्र सिद्धांतिदेव	१०६८	१९८
१६३	लघु सर्वज्ञसिद्धि	अनंतकीर्तिजी	८वीं शताब्दी	१४६
१६४	लघु सामायिक पाठ	अमितगति-२	९८३-१०२३	१८३

क्रम	शास्त्रका नाम	आचार्यका नाम	आचार्यपद समय(ई.स.में)	पृष्ठ
१६५	लघुतत्त्वस्फोट	अमृतचंद्रस्वामी	९०५-९५५	१६१
१६६	लघुद्रव्यसंग्रह टीका	प्रभाचन्द्र-४	९५०-१०२०	१७१
१६७	लघुनयचक्र	देवसेनाचार्य	९३३-९५५	१६४
१६८	लब्धिसार	नेमिचंद्र सि.च.	९८१	१८०
१६९	लिंगपाहुड	कुंदकुंदाचार्यदेव	१२७-१७९	८०
१७०	वरांगचरित्र	जटासिंहनन्दी	आठवीं शताब्दी	१२६
१७१	वादन्याय	श्रीदत्तजी	चौथी शताब्दी	९९
१७२	वादन्यायविचिक्षण	कुमारनंदि	८-९वीं शताब्दी	१४७
१७३	विद्यानंद महोदय	विद्यानंदस्वामी	७७६-८४०	१४५
१७४	विस्तरतत्त्वत्रिभंगी	कनकनंदि सि.च.	९३९	१६६
१७५	व्याख्याप्रज्ञप्ति	बप्पदेव	प्रथम शताब्दी	६८
१७६	व्याख्याप्रज्ञप्ति	अमितगति-२	९८३-१०२३	१८३
१७७	व्याख्याप्रज्ञप्ति(मौखिक)	शुभनंदि, रविनंदि	प्रथम शताब्दी पूर्वपाद	६७
१७८	शकटायनन्यास	प्रभाचन्द्र-४	९५०-१०२०	१७१
१७९	शब्दाम्भोजभास्कर	प्रभाचन्द्र-४	९५०-१०२०	१७१
१८०	शांतिचक्रपूजा	इन्द्रनंदि आचार्य	९३९	१६५
१८१	शीलपाहुड	कुंदकुंदाचार्यदेव	१२७-१७९	८०
१८२	श्रावकाचार	वसुनंदि	१०६८-११११	१९९
१८३	श्रीपुरपार्श्वनाथ स्तोत्र	विद्यानंदस्वामी	७७६-८४०	१४५
१८४	श्रुतभवनदीपक नयचक्र	देवसेनाचार्य	९३३-९५५	१६४
१८५	श्रुतावतार	इन्द्रनंदि आचार्य	९३९	१६५
१८६	श्रुतावतार गद्य	श्रीधर आचार्य	१४वीं शताब्दी	२१२
१८७	षट्खंडागम	पुष्पदंत, भूतबलि	६६ - १५६	६२
१८८	षट्खंडागम टीका	समंतभद्रस्वामी	१३८-१८५	९१
१८९	षट्खंडागम (मौखिक)	धरसेनाचार्य	३८ - १०६	५१
१९०	षण्णप्रतिक्रमण	सोमदेवसूरि	९४३-९६८	१६७
१९१	सत्याशासनपरीक्षा	विद्यानंदस्वामी	७७६-८४०	१४५
१९२	सन्मतिसूत्र	सिद्धसेन	५६८	११२

क्रम	शास्त्रका नाम	आचार्यका नाम	आचार्यपद समय(ई.स.में)	पृष्ठ
१९३	समयव्याख्या टीका	अमृतचंद्रस्वामी	९०५-९५५	१६१
१९४	समयसार	कुंदकुंदाचार्यदेव	१२७-१७९	८०
१९५	समयसार टीका	प्रभाचन्द्र-४	९५०-१०२०	१७१
१९६	समयसार टीका	जयसेनजी सप्तम	११-१२वीं शतादी	२०३
१९७	समाधितंत्र	पूज्यपादस्वामी	पांचवीं शताब्दी	१०२
१९८	समाधितंत्र टीका	प्रभाचन्द्र-४	९५०-१०२०	१७१
१९९	सर्वभूषण	इन्द्रनंदि आचार्य	९३९	१६५
२००	सर्वार्थसिद्धि	पूज्यपादस्वामी	पांचवीं शताब्दी	१०२
२०१	सार्दरद्वीर-प्रज्ञप्ति	अमितगति-२	९८३-१०२३	१८३
२०२	सिद्धप्रियस्तोत्र	पूज्यपादस्वामी	पांचवीं शताब्दी	१०२
२०३	सिद्धांतसार	जिनचंद्रजी	११-१२वीं शताब्दी	२०४
२०४	सिद्धिविनिश्चय टीका	बृहद् अनंतवीर्य	९७५-१०२५	१७२
२०५	सिद्धिविनिश्चय	अकलंक आचार्य	६२०-६८२	१२२
२०६	सुकुमाल चरिउ	श्रीधर आचार्य	१४वीं शताब्दी	२१२
२०७	सुभाषिततंत्र	योगीन्दुदेव	छठवीं शताब्दी	१०५
२०८	सुभाषितरत्नसंदोह	अमितगति-२	९८३-१०२३	१८३
२०९	सूत्रपाहुड	कुंदकुंदाचार्यदेव	१२७-१७९	८०
२१०	स्तुतिविद्या / जिनशतक	समन्तभद्रस्वामी	१३८-१८५	९१
२११	स्याद्वाद्वाद सिद्धि	वादिभसिंह	७७०-८६०	१३३
२१२	स्याद्वादोपनिषद	सोमदेवसूरि	९४३-९६८	१६७
२१३	स्वयंभूस्तोत्र	समन्तभद्रस्वामी	१३८-१८५	९१
२१४	स्वानुभवदर्पण	योगीन्दुदेव	छठ्वी शताब्दी	१०५
२१५	हरिवंशपुराण	जिनसेनस्वामी-१	७४८-८१८	१३१

भगवान महावीरकी आचार्य परम्परा(हिन्दी)के प्रकाशनार्थ प्राप्त आर्थिक सहाय

रू. ५०००/-

श्रीमती शकुन्तलाबेन पवनकुमार जैन, सोनगढ

रू. २५००/-

श्री नियम भव्येश पारेख, वडोदरा

रू. २१००/-

श्रीमती दीपिकाबेन गंगावत, उदेपुर

रू. २०००/-

श्रीमती मिनाक्षीबेन जैन, उदयपुर

श्री रंगलालजी, कुरावड

रू. १५००/-

श्री ललिताबेन व्रजलाल शाह, जलगांव

रू. ११००/-

श्री तसारी नरसिंहपुर कनोद

रू. १००१/-

श्री सज्जनलालजी बंडी, उदयपुर

श्री अविरल अपेक्षा, प्रतापगढ

ह. शर्मिष्ठा प्रकाश

श्री क्षायिक जैन, उदेपुर

श्रीमती वीणाबेन कमलेशभाई जैन, उदयपुर

श्री वीणा/अर्पित जैन, उदयपुर

श्री विशाल प्रकाशभाई जैन, खंडवा

ह. पंचरत्न परिवार

ब्र. वीणाबेन, ब्र. सुबोधबेन, सोनगढ

श्री मोतीलालजी जैन, खंडवा ह. कुसुमबेन

श्री धरमकुमारजी जैन, जबलपुर

ह. कुमुदबेन

श्रीमती मानुबेन, उदयपुर

श्रीमती विमलाबेन शांतिलाल, खंडवा

ह. राजश्रीबेन

श्री शांतिभाई रतनचंदजी जैन

ह. ब्र. सुमनबेन, सागर

श्रीमती मीनाबेन अनिलकुमार जैन,

ह. ब्र. कुंतीबेन, मंडला

श्री निर्मलाबेन कवरचंद जैन

श्रीमती शीलबेन सुरेन्द्र जैन,

ह. सौरभ, इन्दोर

श्रीमती सुचिताबेन तरुणकुमार खंडवा

श्रीमती सरोजबेन नेमिचंद, खंडवा

ह. राजकुमार, जयकुमार, खंडवा

श्रीमती मानकबाई रावसाहेब खंडवा

ह. ब्र. चंद्राबेन

श्री आदिनाथ दिगम्बर जैन मंडल, खंडवा

श्री चंपाबेन उमरावप्रसाद जैन

ह. ब्र. आशाबेन

श्रीमती ममताबेन आनंदकुमार परिवार

श्रीमती शशीबेन लक्ष्मीचंद जैन,

ह. जिनेन्द्र, जितेन्द्र, मेघा, सोनगढ

श्रीमती विद्याबेन राजेन्द्रकुमार जैन

ह. सिद्धेश, दुर्ग

श्रीमती कुसुमबेन ज्ञानचंदजी जैन, सोनगढ

श्रीमती चंद्राबेन निरंजनजी जैन, उदयपुर

ह. निकी

श्री लक्ष्मीलालजी बंडी, उदयपुर

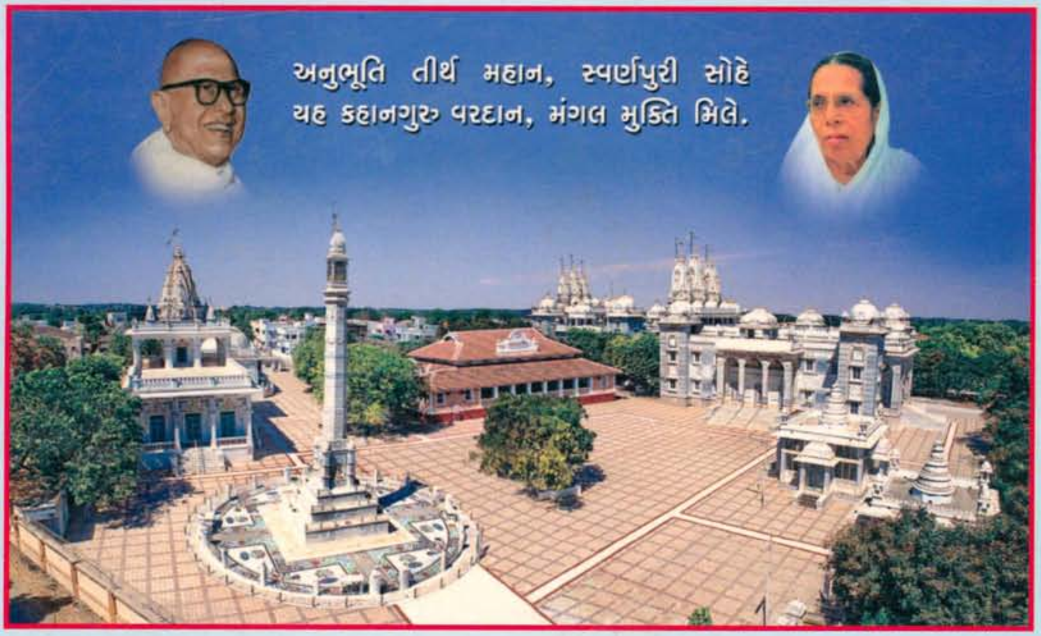

અનુભૂતિ તીર્થ મહાન, સ્વર્ણપુરી સોહે
યહ કહાનગુરુ વરદાન, મંગલ મુક્તિ મિલે.